आधुनिक हिन्दी काव्य में गाँधीवादी चेतना
(द्विवेदी युग से प्रयोगवाद तक)

शोध-संक्षिप्तिका

NORTH-EASTERN HILL UNIVERSITY LIBRARY
Date..................

शोध-निर्देशक
डॉ. सुशील कुमार शर्मा
उपाचार्य, हिन्दी विभाग

अनुसंधित्सु
राजीव कुमार

हिन्दी विभाग
मानविकी संकाय
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलाँग - 793022

Thesis

NEMU LIBRARY
104009
10-1-11

आधुनिक हिन्दी काव्य में गाँधीवादी चेतना
(द्विवेदी युग से प्रयोगवाद तक)

अनुसंधित्सु
राजीव कुमार

द्वारा
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग, के हिन्दी विभाग में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पी-एच.डी.) उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग

घोषणा

मैं राजीव कुमार एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि इस शोध-प्रबंध की विषय-सामग्री मेरे द्वारा किए गए कार्यों का परिणाम है। इस शोध-सामग्री के आधार पर न तो मुझे, और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी अन्य को पहले उपाधि प्रदान की गयी है और न ही यह शोध-प्रबंध मेरे द्वारा कोई अन्य शोध-उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय/संस्थान में प्रस्तुत किया गया है ।

इसे पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग के सम्मुख हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पी-एच. डी.) की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है ।

2.8.10

अध्यक्ष/Head
हिन्दी विभाग/Hindi Deptt
पू.प.वि.वि, शिलांग- 22
N.E.H.U, Shillong- 22

निर्देशक
(डॉ. सुशील कुमार शर्मा)

Rajeev Kumar
अनुसंधित्सु

शोध संक्षिप्तिका

महात्मा गाँधी (1869-1948) बीसवीं शताब्दी के महानतम व्यक्तियों में गिने जाते हैं । वे सच्चे अर्थों में युग पुरुष थे । वे संत, महात्मा, राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक ही नहीं, ऋषि परम्परा के महामानव भी थे । उनका मार्ग आध्यात्मवादी था । विश्व के किसी भी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक महापुरुष ने हर समस्या के लिए जीवन के हर क्षेत्र में आध्यात्मिकता का इतना व्यापक स्तर पर इतनी सफलता के साथ प्रयोग नहीं किया, जितना महात्मा गाँधी ने । उन्होंने मानव जीवन को विभिन्न खण्डों में नहीं वरन् अखण्डपूर्ण अथवा सुसम्बद्ध रूप में देखा । आश्रमों की स्थापना कर नये जीवन का रास्ता दिखाने वाले वे अकेले महापुरुष थे ।

देशकाल की आवश्यकताएँ महापुरुषों को जन्म देती आई हैं । जिस समय भारतवर्ष को स्वतंत्रता संग्राम में जूझने के लिए सबल नेतृत्व की आवश्यकता थी, ठीक उसी समय राष्ट्रात्मा के रूप में महात्मा गाँधी का अवतरण हुआ । कमलापति त्रिपाठी के अनुसार – ''ऐसे समय जब राष्ट्र अपनी वेदना और असंतोष को व्यक्त करना चाहता था, भारतीय अंतरिक्ष सहसा किसी एक व्यक्ति के स्वर से गूँज उठा । वह स्वर यद्यपि मधुर था किन्तु उसमें गंभीरता और दृढ़ता थी । उस ध्वनि में विक्षोभ का भैरव गर्जन भले ही न रहा हो, पर उन्मादिनी पशु-शक्ति को ललकारने वाला राग अवश्य था ।'' भारतीय इतिहास में गाँधी जी ने एक नये युग 'गाँधी युग' को जन्म ही नहीं दिया बल्कि अपनी अभूतपूर्व साधना से मानवता के इतिहास में नये अध्याय का श्रीगणेश भी किया है ।

बीसवीं शताब्दी की भारतीय विचारधारा पर गाँधी जी का प्रभाव इतना व्यापक है कि किसी न किसी रूप में प्रत्येक भारतवासी उनके विचारों तथा महान व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ है। फरवरी 1916 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के उद्घाटन समारोह में दिए गए उनके ऐतिहासिक भाषण ने अद्भुत रीति से भारतीय जनता का ध्यान अपनी ओर

आकर्षित कर लिया था – ''महात्मा गाँधी ने भारतीय संस्कृति में इतनी अधिक दिशाओं में प्रकाश डाला कि उनके समस्त अवदान का सम्यक् मूल्य निर्धारित करना अभी किसी के लिए संभव नहीं दिखता ।'' उन्होंने अज्ञानावस्था में पड़े हुए उस देश में ज्ञान के कोटिशः दीप प्रज्ज्वलित किए, जिनके आलोक में देश ने नयी दिशाएँ देखीं। वे भारत की सहस्त्राब्दियों की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक गति के उज्ज्वल प्रतीक हैं। भारत ने अपने दीर्घ जीवनावधि में प्रारम्भ से अब तक जो कुछ अर्जन किया है, उन सबका प्रतिनिधित्व करने के लिए ही मानो बापू का अवतार हुआ था । गाँधी जी का जीवन, उनके सिद्धान्त, उनका दर्शन एवं उनके विचार जिसको कोटिशः जनता ने बेहिचक अपनाया । वही साहित्य में 'वाद' बन गया और गाँधी युग 'गाँधीवाद' के नाम से जाना जाने लगा ।

अपनी पवित्र विचार-धारा से सारे संसार में महान क्रांति की गंगा बहाने वाले बापू का प्रभाव ज्ञान के समस्त क्षेत्रों पर पड़ा । साहित्य ने उनके सिद्धान्तों को सिर माथे लगाया। समूचे राष्ट्र ने उन्हें अपना नायक माना । देश के कोने-कोने में गाँधी जी के सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रसार हुआ । गाँधी जी के व्यापक प्रभाव को विलोक कर गाँधी विचारधारा के अनुयायी पट्टाभिसीता रमैय्या ने लिखा है – ''गाँधी जी की शिक्षा से नशेबाज ने नाशा छोड़ दिया, उनके आशीष से वैश्या गृह की वैश्या लक्ष्मी बन गई । .... उनकी जिह्वा के एक अक्षर ने दलितों को उबार लिया । उनकी साँस ने नारी को जो घरेलू चल संपत्ति समझी जाती थी, समाज के विवेकमय और उत्तरदायी सदस्य के रूप में परिवर्तित कर दिया । वे ग्रामों में पुनर्जीवन चाहते थे, पर सभ्यता को आदिम अवस्था की ओर नहीं लौटाना चाहते थे।''

समूचे विश्व ने गाँधी जी को महामानव के रूप में स्वीकार किया । हिन्दी कवियों ने विश्व नायक रूप के साथ ही भारत-भाग्य विधाता एवं राष्ट्र नायक के रूप में गाँधी जी को देखा । कवियों ने उनके सिद्धान्तों को अपनाकर अपनी कविता में उनकी विचारधारा की

आराधना की । हिन्दी के कवियों ने अनुभव किया कि बापू का चरित आधुनिक युग का रामचरित है, उनकी वाणी धर्म वाणी है तथा उनका संदेश शाश्वत जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति है। हिन्दी काव्य गाँधीवाद का विकसित स्वरूप है। कविता में वर्णित ये ऐसे विचार हैं – जिन्हें समान्य से समान्य जन ने भी अपने जीवन में उतारा है। जिसने सुर-भारती के इन गायकों को अमर बनाया ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध ''आधुनिक हिन्दी काव्य में गाँधीवादी चेतना (द्विवेदी युग से प्रयोगवाद तक)'' को छह अध्यायों में विभक्त किया गया है ।

शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय में 'महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व' को प्रस्तुत किया गया है । गाँधी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व में धार्मिक निष्ठा और भक्ति की पराकाष्ठा पाई जाती है । गाँधी जी के व्यक्तित्व में मुख्यतः आध्यात्मिक, मानवतावादी तथा बुद्धि तत्त्व का समन्वय है । उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व में अविभाज्य अंग के रूप में व्याप्त धर्म-भावना में एक ओर सामाजिक क्षेत्र में नयी चेतना उत्पन्न की है, तो दूसरी ओर राजनीतिक क्षेत्र में, पवित्रता की गंगा बहायी । धार्मिक क्षेत्र को विशाल दृष्टि दी है तो प्रशान क्षेत्र में हृदय शुद्धि का अमृत बहाया है। वे जहाँ गए, वहाँ धर्म की पताका फहराई। उनका जीवन धर्म एवं धर्म उनके जीवन के भीतर छिपा था । उनकी दृष्टि में राजनीति धर्म से हीन नहीं हो सकती । राजनीति को सदैव धर्म की अधीनता में रहना चाहिए । उनकी व्यापक दृष्टि को लक्ष्य कर अमेरीका के पादरी होम्स ने कहा है – ''जब मैं रोलां का ख्याल करता हूँ, तब मुझे टाल्सटाय का ध्यान आता है । जब मैं लेनिन की बात सोचता हूँ, तो मुझे नेपोलियन का ख्याल आता है, पर जब मैं गाँधी का ध्यान करता हूँ तो मुझे क्राइस्ट का ध्यान आता है ।'' गाँधी जी की लेखनी से निःसृत प्रत्येक शब्द उनके हृदय का भाव था। 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' उनकी अमर देन है । 'सत्य का प्रयोग' संसार की प्रसिद्ध आत्मकथाओं में से एक है, जो गाँधी के व्यक्तित्व को दर्शाती है ।

'मंगलप्रभात', 'सर्वोदय', 'हिन्द स्वराज' आदि उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं, जो उनके जीवन-दर्शन को दर्शाती हैं ।

द्वितीय अध्याय में गाँधीवादी चेतना के स्वरूप को विवेचित किया गया है। यह अध्याय सैद्धान्तिक पीठिका के रूप में है। इसमें गाँधीवादी चेतना की अवधारणा, मूल तत्त्व, मुख्य सिद्धांत तथा रचनात्मक सूत्रों को समग्र रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। गाँधीवाद मूलतः दो शब्दों से बना है – एक गाँधी और दूसरा वाद । गाँधी शब्द स्पष्ट है और वाद का अर्थ है – किसी लक्ष्य या तत्त्व के निर्णय के लिए होने वाला तर्क । लेकिन यहाँ वाद का यह अर्थ अपेक्षित नहीं है । वाद का अर्थ है – किसी बात का बौद्धिक निरूपण । इसलिए गाँधी विचारधारा से तात्पर्य – उन सभी सिद्धान्तों से है, जिनका गाँधी जी ने समर्थन एवं प्रयोग किया है । *गाँधीवादी चेतना मानसिक चिन्तन की वह सतत् प्रवाहमान धारा है*, जो मताग्रहों एवं रूढ़ियों से निरपेक्ष नूतन सर्जनात्मक संकल्पना द्वारा संचरित होती है । यह एक गतिशील प्रक्रिया है, जो जीवन को विकास की ओर उन्मुख करने के लिए प्रेरित करती है ।

गाँधीवादी चेतना के मूल तत्त्व सत्य एवं अहिंसा हैं । सत्य ईश्वर का पर्याय है । वही जड़ और चेतन में सूक्ष्म एवं समग्र रूप में विद्यमान है। सत्य के साक्षात्कार से सम्यक् दृष्टि और सद् बुद्धि प्राप्त होती है। सद् बुद्धि से अहिंसा का आविर्भाव होता है । अतः सत्य और अहिंसा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। ''सत्य वह शाश्वत सिद्धान्त है – जो विश्व की संरचना को शासित करता है और इसके समस्त घटना-चक्र के पीछे विराजमान है ।'' ''गाँधी जी के लिए अहिंसा विश्व व्यापी नियम है।'' गाँधीवादी चेतना के मुख्य सिद्धान्तों (वर्ग-सहयोग, विकेन्द्रीकरण, ट्रस्टीशिप, हृदय- परिवर्तन, सत्याग्रह) में गाँधी जी का चिंतन है। गाँधी जी ने केवल चिंतन ही नहीं किया, उसे व्यवहारिक रूप भी प्रदान किया ।

गाँधीवादी चेतना के अठारह रचनात्मक सूत्र हैं– साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, मद्य-निषेध, खादी, ग्रामोद्योग, गाँवों की सफाई, बुनियादी तालीम, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्रियों

की उन्नति, स्वास्थ्य एवं सफाई की शिक्षा, मातृभाषा प्रेम, राष्ट्रभाषा प्रेम, आर्थिक समानता, किसानों का संगठन, मजदूरों का संगठन, विद्यार्थियों का संगठन, आदिवासियों की सेवा तथा कोढ़ियों की सेवा । गाँधी जी वर्तमान समाज व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं थे। उनका अठारह सूत्रीय रचनात्मक कार्यक्रम इस तथ्य का सूचक है कि वर्तमान दोष पूर्ण समाज व्यवस्था में सुधार तथा उसका पुनर्निर्माण करने के लिए अत्यंत उत्सुक हैं, इस कार्यक्रम को उन्होंने सत्याग्रह का आवश्यक अंग माना । सत्याग्रही के लिए रचनात्मक कार्यक्रम का उतना ही महत्त्व है, जितना एक सैनिक के लिए कवायद तथा अस्त्र चलाना सीखने का । गाँधी जी के अनुसार – "रचनात्मक कार्यक्रम को पूर्ण स्वराज्य का निर्माण कहना अधिक उपयुक्त होगा, जिसे सत्य एवं अहिंसा के माध्यमों से क्रियान्वित किया जा सकता है ।" डॉ. पट्टाभिसीता रमैय्या ने गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम को गाँधीवाद की सम्पूर्ण तकनीक का प्रकट रूप या क्रिया रूप में परिणत अहिंसा कहा है ।"

तृतीय अध्याय में 'द्विवेदी युग में गाँधीवादी चेतना' के अन्तर्गत् गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख कवि, काव्य एवं गाँधीवादी चेतना की अभिव्यक्ति का विवेचनात्मक शैली में वर्णन किया गया है। आधुनिक काव्य-धारा का द्वितीय उत्थान द्विवेदी युग (1900-1918) के नाम से जाना जाता है। यह युग भारतीय समाज और जन-शक्ति के जागरण का युग था । इस युग को गाँधीवाद का बाल्यकाल कहा जा सकता है । इस युग में महात्मा गाँधी के कर्म-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर काव्य-रचना प्रारम्भ हो गई थी । डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है – "यों तो गाँधी-दर्शन का प्रभाव इस युग में एक सर्वव्यापी प्रभाव है । .... हिन्दी का कदाचित ही कोई लेखक इससे अछूता रहा हो । यह वास्तव में हमारा युग-दर्शन है ।"

द्विवेदी युग के प्रमुख कवि एवं काव्य हैं – मैथिलीशरण गुप्त साकेत, यशोधरा, द्वापर, जयभारत, विष्णुप्रिया) ; अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (प्रिय प्रवास, वैदेही वनवास, चुभते चौपदे, रस कलस, प्रेम प्रपंच) ; सियारामशरण गुप्त (बापू, पाथेय, मृणमयी, उन्मुक्त,

नोआखाली) ; महावीर प्रसाद द्विवेदी (देवी स्तुती शतक, कान्य-कुब्ज-अबला-विलाप, काव्य मंजुषा, सुमन, द्विवेदी काव्य माला) ; रामनरेश त्रिपाठी (मिलन, पथिक, मानसी, स्वप्न) ; द्विवेदी-युग के कवि श्रृंगारिकता से राष्ट्रीयता, जड़ता से प्रगति एवं रूढ़ि से स्वच्छन्द विचार अपनाने लगे । महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सम्पूर्ण देश में राजनीतिक चेतना व्याप्त थी। इस युग के कवियों का काव्य राजनैतिक चेतना एवं राष्ट्रीय भावना से सम्पन्न हुआ । मैथिलीशरण गुप्त 'सत्य' का वर्णन करते हुए कहते हैं –

सत्य से ही स्थिर है संसार,
सत्य ही सब धर्मों का सार।
राज्य ही नहीं प्राण-परिवार,
सत्य पर सकता हूँ सब वार।

गाँधीवादी 'अहिंसा' की पूर्ण प्रतिष्ठा सियारामशरण गुप्त के काव्य में हुई है :

हिंसानल से शान्त नहीं होता हिंसानल,
जो सबका है वही हमारा भी है मंगल ।
मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर,
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।

ट्रस्टीशिप, हृदय परिवर्तन, सत्याग्रह, साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, मद्य निषेध, खादी, स्त्रियों की उन्नति आदि गाँधीवादी सिद्धांतों एवं रचनात्मक सूत्रों की अभिव्यक्ति द्विवेदी युगीन काव्य में हुई है ।

चतुर्थ अध्याय में 'छायावादी युग में गाँधीवादी चेतना' के अन्तर्गत् गाँधीवादी से प्रभावित प्रमुख कवि, काव्य एवं गाँधीवादी चेतना की अभिव्यक्ति का विश्लेषणात्मक शैली में निरूपण किया गया है । राजनीति में जिन प्रवृत्तियों ने गाँधीवाद को जन्म दिया, करीब-करीब वैसी ही प्रवृत्तियों द्वारा साहित्य में छायावाद (1918-1936) का प्रादुर्भाव हुआ। दोनों की मूल

वर्तिनी में भावना एक है – स्थूल के विरूद्ध सूक्ष्म की प्रतिक्रिया अर्थात् स्थूल से हटकर सूक्ष्म की ओर बढ़ने और उसको प्राप्त करने का प्रयत्न, गाँधी जी के साथ आत्म की वस्तु बनकर यह प्रवृत्ति आध्यात्मिक बन गई। छायावाद युग के प्रमुख कवि एवं उनके काव्य हैं – जयशंकर प्रसाद (कानन कुसुम, इन्दु, प्रेमपथिक, झरना, कामायनी) ; सुमित्रानंदन पंत (वीणा, पल्लव, गुंजन, युगान्त, युगवाणी) ; सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला (अनामिका, प्रेयसी, रेखा, सरोज स्मृति, राम की शक्ति पूजा) ; महादेवी वर्मा (नीहार, रश्मि,नीरजा, सान्ध्या गीत, दीप शिखा) ; सुभद्रा कुमारी चौहान (त्रिधारा, मुकुल, झाँसी की रानी) ।

गाँधीवादी विचारधारा के व्यापक प्रभाव के फलस्वरूप छायावाद युग में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति विश्व मानवतावाद की भूमिका पर हुई । गाँधीवाद के प्रभाव से छायावाद आध्यात्मिक बना । कठोरता के प्रति कोमलता की प्रतिक्रिया वाली भावना गाँधीवाद से ही छायावाद को मिली। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है – ''छायावाद के जन्म में गाँधीवाद का अत्याधिक प्रभाव है और छायावाद को गाँधीवाद ने सर्वाधिक प्रेरणा प्रदान की है।'' पुनर्जागरण के वातावरण में इस युग के कवियों ने पलायनवादिता और नैराश्य को छोड़ व्यक्ति, जाति और मानव मात्र के जीवन का भावात्मक पक्ष भी लिया । साम्प्रदायिक एकता को दृढ़ करते हुए पंत कहते हैं :

तो अच्छा छोड़ दें अगर
हम हिन्दू मुस्लिम और ईसाई कहलाना
मानव होकर रहें धरा पर
जाति वर्ण धर्मो से ऊपर
व्यापक-मनुष्यत्व में बँधकर।

वर्ग-भेद को मिटाते हुए डॉ. राम कुमार वर्मा लिखते हैं –

जाति भेद नहीं, वर्ग भेद भी नहीं,

शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी हैं ।

गाँव की सफाई, बुनियादी तालीम, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्रियों की उन्नति, स्वास्थ्य एवं सफाई की शिक्षा आदि का वर्णन हुआ है । इस प्रकार छायावाद गाँधी-युग का ही प्रतिरूप है।

पंचम अध्याय में 'प्रगतिवादी युग में गाँधीवादी चेतना' के अन्तर्गत् गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख कवि, उनके काव्य एवं गाँधीवादी चेतना की अभिव्यक्ति का विवेचनात्मक शैली में वर्णन किया गया है । सन् 1936 के आस पास की अवधि में निर्मित सामाजिक चेतना और यथार्थवादी प्रवृत्ति के कारण यह युग प्रगतिवादी युग कहलाया । इस समय भारतीय राजनीति में यदि एक तरफ गाँधीवाद जोर पकड़ रहा था, तो दूसरी ओर कांग्रेस आन्दोलनों का प्रभाव था । कांग्रेस द्वारा चलाए जा रहे आंदोलन हिंसात्मक होने पर स्थगित किए जा रहे थे । इनकी प्रतिक्रिया जनता में भी हो रही थी । राजनीतिक दासता के बीच एक ओर पूँजीवादी शक्ति बढ़ रही थी, तो दूसरी ओर गरीबी, अशिक्षा, युद्ध, बेकारी, आर्थिक विषमता और अकाल से संत्रस्त जनता पर कम्यूनिज्म का प्रभाव पड़ रहा था । इस परिस्थिति में प्रगतिवादी साहित्य जनता में एक नया दृष्टिकोण लेकर आया । उसने सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को ही रचना का उद्देश्य माना और सौन्दर्य को नये दृष्टिकोण से देखा। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार – "यह नाम उस काव्यधारा का है जो मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भाव-बोध को अपना लक्ष्य बनाकर चली।"

प्रगतिवादी युग के प्रमुख कवि एवं उनके काव्य हैं – रामधारी सिंह दिनकर (कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, उर्वशी, नीलकुसुम, रसवन्ती) ; भवानी प्रसाद मिश्र (सतपुड़ा के जंगल, सन्नाटा, गीत फरोश, कमल के फूल, वाणी की दीनता) ; शिवमंगल सिंह सुमन (क्रान्ति, जीवन के गान, प्रलय सृजन, आज देश की मिट्टी बोल उठी है, मेरा देश जल रहा) ; त्रिलोचन (धरती, गुलाब और बुलबुल, दिगत, गीत गंगा) ; सोहनलाल द्विवेदी (पूजा गीत,

विषपान, युगाधार, वासन्ती, चित्रा) ; इस युग की कविता अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना, मिथ्या धार्मिक उपचार पर प्रहार एवं वर्ग-रहित समाज की परिकल्पना से मण्डित है । समाज की आर्थिक एवं सामाजिक दशा के प्रति गाँधी जी के समान ही ये कवि भी संवेदनशील रहे । भारतवासियों के आत्मसम्मान को जगाने में जितना सक्रिय हाथ गाँधी जी का रहा, उतना ही सक्रिय इन कवियों का । गाँधी की वर्ग रहित दृष्टि का संदेश 'दिनकर' जी इस प्रकार देते हैं –

शान्ति नहीं तब तक जब तक
सुख भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी को कम हो ।

मातृ भाषा प्रेम, राष्ट्र भाषा प्रेम, आर्थिक समानता, किसानों का संगठन, मजदूरों का संगठन आदि गाँधीवादी रचनात्मक सूत्रों की अभिव्यक्ति प्रगतिवादी युगीन काव्य में हुई है ।

षष्ठ अध्याय में 'प्रयोगवादी युग में गाँधीवादी चेतना' के अन्तर्गत् गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख कवि, काव्य एवं गाँधीवादी चेतना का वर्णनात्मक शैली में चित्रण किया गया है । प्रयोगवादी (1943-1950) कवियों ने प्रयोगों को साधन के रूप में स्वीकार कर, कहीं भाव में, तो कहीं रस में, कहीं वाद विशेष के प्रतिपादन में, तो कहीं अभिव्यंजना और कहीं शैली में नये प्रयोगों के द्वारा वैचित्र्य उत्पन्न किया है । छायावाद की अतिकाल्पनिकता, एकान्तिक कोमलता आदि की प्रतिक्रिया यदि प्रगतिवाद में हुई तो प्रगतिवाद की इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया प्रयोगवाद में हुई । डॉ. नगेन्द्र के अनुसार – "प्रयोगवादी कवि बौद्धिकता को स्वीकार करते हैं । ये कवि मध्यवर्गीय व्यक्ति जीवन की सभी जड़ता, कुण्ठा, अनास्था, पराजय और मानसिक संघर्ष के सत्य को बड़ी बौद्धिकता के साथ उद्घाटित करते हैं ।"

प्रयोगवाद युग के प्रमुख कवि एवं उनके काव्य हैं – अज्ञेय (भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम, हरी घास पर क्षण भर, बाबरी अहेरी, समुद्रमुद्रा) ; भारत भूषण अग्रवाल (कवि के बंधन, जागते रहो, मुक्तिमार्ग, अप्रस्तुत मंत्र, अनुपस्थित लोग, किसने फूल खिलाये) ; शमशेर बहादुर सिंह (कुछ कविताएँ, कुछ और कविताएँ) ; गिरिजा कुमार माथुर (मंजरी, नाश और निर्माण, धूप के धान, जो बंध नहीं सका) आदि प्रयोगवादी कवियों ने गाँधीवाद के सभी विषयों पर लेखनी चलाई है – सत्य, अहिंसा, साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, ग्रामोद्योग विद्यार्थियों का संगठन, आदिवासियों की सेवा, कोढ़ियों की सेवा आदि । कुण्ठा एवं हीन भावना से ग्रसित होने पर भी इन कवियों ने मानवीय चेतना नहीं त्यागी। इनकी अन्तरात्मा पर युग पुरुष गाँधी के विचारों की छाप स्पष्ट है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने हरिजन की दशा का ह्रदय स्पर्शी वर्णन इस प्रकार किया है :

यह हरिजन था, इसे जिन्दा जला दिया गया,
यह अनपढ़ गरीब था,
इसे देवी की बलि चढ़ा दिया गया,
यह आस्थावान धर्म गुरुओं की कोठियों में मरा,
यह अनजानी ऊँचाइयाँ छूना चाहता था,
छत की कड़ी से झूल गया ।

भारत ने आजादी की लड़ाई गाँधीवादी जीवन मूल्यों के आधार पर लड़कर स्वतंत्रता प्राप्त की । भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के महानायक गाँधी ने रामराज्य का सपना देखा था - जिसमें स्वतंत्र भारत में कोई भी दु:खी एवं पीड़ित नहीं होगा । परस्पर आस्था एवं विश्वास, सर्वधर्म समभाव, नैतिकता, सांस्कृतिक एकता एवं मानवीय मूल्यों के आधार पर देश आगे बढ़ेगा । किन्तु हमने आज गाँधी द्वारा बताए गए जीवन मूल्यों को छोड़ दिया है । देश में अलगाववादी शक्तियाँ सिर उठाने लगी हैं । धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर उठने वाले

विवादों तथा बदलते मूल्यों ने इस संकट को और भी गहरा दिया है । ऐसी स्थिति में गाँधीवादी चेतना सर्वाधिक उपयोगी एवं प्रासंगिक है ।

शोध-प्रबंध के उपसंहार में छहों अध्यायों के सार को प्रस्तुत किया गया है। संदर्भ ग्रंथ-सूची में उपजीव्य ग्रंथ, उपस्कारक ग्रंथ, कोश एवं पत्रिकाओं को सूचीबद्ध किया गया है।

U LIBRARY
104009
10.1.11

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम	:	राजीव कुमार
शिक्षा	:	एम. ए. (हिन्दी)
विभाग	:	हिन्दी
शोध-प्रबंध का शीर्षक	:	आधुनिक हिन्दी काव्य में गाँधीवादी चेतना (द्विवेदी युग से प्रयोगवाद तक)
प्रवेश शुल्क का भुगतान की तिथि	:	28 अगस्त, 2003
शोध प्रस्ताव की संस्तुति	:	
(i) बी. पी. जी. एस	:	8.10.2003
(ii) स्कूल बोर्ड पंजीयन संख्या एवं तिथि	:	777 16.10.2003

अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलाँग

आधुनिक हिन्दी काव्य में गाँधीवादी चेतना
(द्विवेदी युग से प्रयोगवाद तक)

North-Eastern Hill University Library
Date..............

शोध-निर्देशक
डॉ. सुशील कुमार शर्मा
उपाचार्य, हिन्दी विभाग

अनुसंधित्सु
राजीव कुमार

हिन्दी विभाग
मानविकी संकाय
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलाँग - 793022

Thesis

LIBRARY 104009
dm
10-1-11
Sub
Ent

आधुनिक हिन्दी काव्य में गाँधीवादी चेतना
(द्विवेदी युग से प्रयोगवाद तक)

अनुसंधित्सु
राजीव कुमार

द्वारा
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग, के हिन्दी विभाग में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पी-एच.डी.) उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग

घोषणा

मैं राजीव कुमार एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि इस शोध-प्रबंध की विषय-सामग्री मेरे द्वारा किए गए कार्यों का परिणाम है। इस शोध-सामग्री के आधार पर न तो मुझे, और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी अन्य को पहले उपाधि प्रदान की गयी है और न ही यह शोध-प्रबंध मेरे द्वारा कोई अन्य शोध-उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय/संस्थान में प्रस्तुत किया गया है ।

इसे पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग के सम्मुख हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पी-एच. डी.) की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है ।

2-8-10

अध्यक्ष Head
हिन्दी विभाग Hindi Deptt
पू.प.वि.वि. शिलांग- 22
N.E.H.U. Shillong- 22

निर्देशक
(डॉ. सुशील कुमार शर्मा)

Rajeev Kumar
अनुसंधित्सु

प्राक्कथन

गाँधी मर एकता है पर गाँधीवाद अमर रहेगा। 25 मार्च, 1931 में होने वाले कांग्रेस के करॉची अधिवेशन के अवसर पर गाँधी ने यह उन लोगों के लिए कहा था जो उनके कार्यक्रम का विरोध करने खड़े हुए थे। इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि स्वयं गाँधी जी अपने सिद्धान्त को'वाद' के रूप में स्वीकार करते थे। लेकिन यह बात भी उतनी ही सत्य है कि वे 'गाँधीवाद' जैसी कोई चीज नहीं मानते थे। मार्च 1936 में सॉवली में गाँधी-सेवा संघ के सदस्यों के सामने गाँधी जी ने स्पष्ट कहा था – ''गाँधीवाद नाम की कोई वस्तु है ही नहीं और न मैं अपने पीछे कोई सम्प्रदाय छोड़ जाना चाहता हूँ। मेरा यह दावा भी नहीं है कि मैंने कोई नये तत्व या सिद्धान्त का आविष्कार किया है। मैंने तो केवल जो शाश्वत सत्य है उसको अपने नित्य के जीवन और प्रश्नों पर अपने ढंग से उतारने का प्रयास किया है। मुझे दुनिया को कोई नई चीज नहीं सिखाती है। सत्य और अहिंसा अनादि काल सेचले आ रहे हैं। ऊपर मैंने जो कुछ कहा है, उसमें मेरा सारा तत्त्व ज्ञान यदि मेरे विचारों को इतना बड़ा नाम दिया जा सकता है तो समा जाता है। आप इसे 'गाँधीवाद' न कहिये, इसमें 'वाद' नाम की कोई वस्तु नहीं है।''

गाँधी जी का उक्त कथन यह प्रमाणित करता है कि वे 'वाद' के झगड़े से मुक्त रहना चाहते थे। इतना स्पष्ट होने पर भी गाँधी-दर्शन के मर्मज्ञों ने उनकी विचारधारा को 'याद' के रूप में समझने का प्रयत्न किया है। गाँधी जी ने सिद्धांत रूप में जिन विचारों को अभिव्यक्ति दी है, उन्हीं को 'गाँधीवाद' की संज्ञा मिली है। वस्तुतः गाँधी विचार-पद्धति का व्यापक नाम ही गाँधीवाद है। गाँधीवाद से तात्पर्य उन सिद्धांतों से है – जिनका गाँधी जी ने प्रयोग तथा समर्थन किया है। गाँधी-युग के पूर्व हिन्दी कविता में सामन्तवादी संस्कृति की गंध मिलती है। मुक्ति की साँस टूट चुकी थी, शक्ति की कमर झुक गई थी, भक्ति का स्वर लुप्त हो गया था। वीरों के देश के व्यापारी अंग्रेजों ने दुर्बल बना दिया था । हाँ, भारतेन्दु युग में सारा

रहा था। उस काव्य में कसक थी, पर उसका इलाज नहीं था। गाँधीवाद ने यह औषधि प्रदान की।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध को विषय प्रतिपादनकी दृष्टि से छह अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत् उनके व्यक्तित्व (जन्म, शिक्षा-दीक्षा, गार्हस्थ जीवन, लन्दन में, दक्षिण अफ्रीका में, भारतीय राजनीति में प्रवेश और भूमिका, महाप्रयण) को सूचनात्मक शैली में तथा कृतित्व (सत्य के प्रयोग, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास, मंगल प्रभाता, सर्वोदय, हिन्द-स्वराज्य) को विश्लेषणात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है।

शोध-प्रबंध का द्वितीय अध्याय सैद्धांतिक पीठिका के रूप में है। इसमें गाँधीवादी चेतना की अवधारणा, मूल तत्त्व, मुख्य सिद्धांत तथा रचनात्मक सूत्रों को समग्र रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

शोध-प्रबंध के तृतीय अध्याय में 'द्विवेदी युग में गाँधीवादी चेतना' के अन्तर्गत् गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख कवि, काव्य एवं गाँधीवादी चेतना की अभिव्यक्ति का विवेचनात्मक शैली में वर्णन किया गया है।

शोध-प्रबंध के चतुर्थ अध्याय में 'छायावादी युग में गाँधीवादी चेतना' के अन्तर्गत् गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख कवि, काव्य एंव गाँधीवादी चेतना की अभिव्यक्ति का विश्लेषणात्मक शैली में निरूपण किया गया है।

शोध-प्रबंध के पंचम अध्याय में 'प्रगतिवादी युग में गाँधीवादी चेतना' के अन्तर्गत् गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख कार्य, काव्य एवं गाँधीवादी चेतना की अभिव्यक्ति का विवेचनात्मक शैली में वर्णन किया गया है।

शोध-प्रबंध के षष्ठ अध्याय में 'प्रयोगवादी युग में गाँधीवादी चेतना' के अन्तर्गत् गाँधीवादी चेतना का वर्णनात्मक शैली में चित्रण किया गया है।

शोध-प्रबंध के उपसंहार के अन्तर्गत् उपर्युक्त अध्यायों से प्राप्त निष्कर्षों का समाहार एवं समाकलन किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध पूज्य गुरुवर डॉ. सुशील कुमार शर्मा उपाचार्य, हिन्दी विभाग पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, के सफल निर्देशन में पूर्ण हुआ है। उन्होंने मुझे समय-समय पर जो सुझाव दिये इसके लिए मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। मैं डॉ. दिनेश कुमार चौबे, डॉ. माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय एवं श्री भरत प्रसाद त्रिपाठी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मुझे प्रेरित कर मेरा मनोबल वढ़ाया। मैं अपनी माता जी श्रीमती बच्ची देवी एवं पिता जी श्री सुन्देश्वर प्रसाद सिंह को सादर नमन करता हूँ, जिन्होंने मुझे इस योग्य बनाया। अन्त में, मैं अपने सभी मित्र, परिवारी जन एवं शुभचिन्तकों का भी आभारी हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मुझे सहयोग प्रदान किया है।

अनुसंधित्सु

राजीव कुमार

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन I - III

प्रथम अध्याय : महात्मा गाँधी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 1 - 38

1. क. (i) जन्म
1. क. (ii) शिक्षा-दीक्षा
1. क. (iii) गार्हस्थ्य जीवन
1. क. (iv) लन्दन में
1. क. (v) दक्षिण अफ्रीका में
1. क. (vi) भारतीय राजनीति में प्रवेश और भूमिका
1. क. (vii) महाप्रयाण

1. ख. महात्मा गाँधी का कृतित्व
1. ख. (i) सत्य के प्रयोग
1. ख. (ii) दक्षिण अफीका के सत्याग्रह का इतिहास
1. ख. (iii) मंगल प्रभात
1. ख. (iv) सर्वोदय
1. ख. (v) हिन्द स्वराज्य

द्वितीय अध्याय : गाँधीवादी चेतना : स्वरूप विवेचन 39 - 100

2. क. गाँधीवादी चेतना की अवधारणा
2. ख. गाँधीवादी चेतना के मूल तत्त्व
2. ख. (i) सत्य 2. ख. (ii) अहिंसा
2. ग. गाँधीवादी चेतना के मुख्य सिद्धांत
1. ग. (i) वर्ग-सहयोग
1. ग. (ii) विकेन्द्रीकरण
1. ग. (iii) ट्रस्टीशिप
1. ग. (iv) हृदय-परिवर्तन
1. ग. (v) सत्याग्रह
2. घ. गाँधीवादी चेतना के रचनात्मक सूत्र
1. घ. (i) साम्प्रदायिक एकता
1. घ. (ii) अस्पृश्यता निर्वारण
1. घ. (iii) मद्य-निषेध
1. घ. (iv) खादी
1. घ. (v) ग्रामोद्योग

1. घ. (vi) गाँवों की सफाई
1. घ. (vii) बुनियादी तालीम
1. घ. (viii) प्रौढ़ शिक्षा
1. घ. (ix) स्त्रियों की उन्नति
1. घ. (x) स्वास्थ्य एवं सफाई की शिक्षा
1. घ. (xi) मातृभाषा प्रेम
1. घ. (xii) राष्ट्रभाषा प्रेम
1. घ. (xiii) आर्थिक समानता
1. घ. (xiv) किसानों का संगठन
1. घ. (xv) मजदूरों का संगठन
1. घ. (xvi) विद्यार्थियों का संगठन
1. घ. (xvii) आदिवासियों की सेवा
1. घ. (xviii) कोढ़ियों की सेवा

तृतीय अध्याय : द्विवेदी युग में गाँधीवादी चेतना 101-158

3. क. गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख कवि
3. ख. गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख काव्य
3. ग. गाँधीवादी चेतना की अभिव्यक्ति

चतुर्थ अध्याय : छायावादी युग में गाँधीवादी चेतना 159-229

4. क. गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख कवि
4. ख. गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख काव्य
4. ग. गाँधीवादी चेतना की अभिव्यक्ति

पंचम अध्याय : प्रगतिवादी युग में गाँधीवादी चेतना 230-296

5. क. गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख कवि
5. ख. गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख काव्य
5. ग. गाँधीवादी चेतना की अभिव्यक्ति

षष्ठ अध्याय : प्रयोगवादी युग में गाँधीवादी चेतना 297-337

6. क. गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख कवि
6. ख. गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख काव्य
6. ग. गाँधीवादी चेतना की अभिव्यक्ति

उपसंहार 338-347

संदर्भ ग्रंथ-सूची 348-350

प्रथम अध्याय

महात्मा गाँधी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रथम अध्याय

महात्मा गाँधी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1. क महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व :

असाधरण व्यक्तित्व के धनी महात्मा गाँधी सही मायने में युग पुरुष थे । वे आधुनिक युग के महापुरुष एवं राष्ट्रीय अखण्डता के शक्ति स्तम्भ थे । महात्मा गाँधी ने भारतीय संस्कृति में इतनी अधिक दिशाओं में प्रकाश डाला है कि उनके समस्त अवदान का सम्यक् मूल्य निर्धारित करना अभी किसी के लिए संभव नहीं दिखता । खान-पान, रहन-सहन, भाव-विचार, भाषा-शैली, परिधान, काव्य और चित्रकारी, दर्शन और सामाजिक व्यवहार, धर्म, कर्म, राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता, भारत में आज जो भी आचार-विचार प्रचलित हैं, उनमें से प्रत्येक पर कहीं न कहीं गाँधी जी की छाप है।[1] महात्मा गाँधी की वाणी तथा कर्म ने समस्त साहित्यकारों को अपनी ओर सहज ही आकृष्ट कर लिया था। गाँधी जी की बहुमुखी प्रतिभा, विराट् व्यक्तित्व एवं उनकी विचारधारा ने आधुनिक हिन्दी काव्य पर अमिट छाप छोड़ी है।

महात्मा गाँधी दो पीढ़ियों तक भारतीय राष्ट्र भक्तों को प्रेरणा देते रहे। इसी अवधि में उन्होंने स्व साम्राज्य की जड़ें हिला दीं और क्रान्ति की वह अग्नि शिखा प्रज्वलित की, जिसने आगे चल कर एशिया और अफ्रीका का नक्शा ही बदल दिया। अपने कोटि-कोटि देशवासियों के लिए वे महात्मा थे – ऐसे महात्मा जिनका दर्शन ही परम पुण्य था। जातिगत भेद-भाव और साम्राज्यवाद के विरूद्ध जब उन्होंने पहली बार विद्रोह का झण्डा खड़ा किया, तो कुछ लोग ने उन्हें सन्देह की दृष्टि से देखा, उनकी खिल्ली उड़ाई थी और उनका विरोध भी किया था, लेकिन सन् 1947 के अन्त तक वे इन सब सन्देहों विरोधों से अधिकांशतः मुक्ति पा चुके थे। अटपटे और अव्यवहारिक कहकर कभी उनके विचारों की लोग उपेक्षा किया करते थे, वे विचार अब संसार के सर्वश्रेष्ठ मनस्वियों के उदय में झंकृत होने लगे थे। उनकी

अभूतपूर्व क्षमता को विलोक कर, महान दार्शनिक आइंस्टाइन ने कहा था – "भावी पीढ़ियों को विश्वास ही न होगा कि वास्तव में हाड़-माँस का कोई ऐसा भी प्राणी इस धरती पर कभी जन्मा था।"[2]

फ्रांसीसी मनीषी रोमांरोला ने गांधी जी के सम्बंध में लिखा है – "ये ही हैं वे व्यक्ति जिन्होंने तीस करोड़ जनों को जगा दिया है, कँपा दिया है, बिट्रिश सामाज्य को और आरंभ किया है मानव राजनीति का एक ऐसा सशक्त आंदोलन जिसकी तुलना दो हजार वर्षों के इतिहास में नहीं है।"[3]

1. क. i जन्म :

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर, सन् 1869 को भारत के पश्चिमी तट पर स्थित गुजरात राज्य के पोरबन्दर नामक स्थान में हुआ था।[4] उनके दादाजी श्री उत्तमचन्द गाँधी एवं पिता श्री करमचन्द गाँधी पोरबन्दर रियासत के दीवान के उच्च पद पर थे। दोनों ही कुशल प्रशासक होने के साथ-साथ सच्चे और प्रतिष्ठित व्यक्ति भी थे। तत्कालीन पोरबन्दर रियासत पर ब्रिट्रिश सत्ता के निरंकुश, प्रतिनिधि राजा का दबदबा था। हितकर सलाह देने एवं साहस के साथ निरंकुश राजा के विरोध करने के कारण शासक की सेना ने उत्तमचन्द के घर को घेर लिया और उन पर जमकर पथराव किया। पुत्र कमरचन्द ने भी अपने सिद्धांतों पर अटल रहकर पोरबन्दर से जाने का निश्चय किया। अतः अट्ठाइस वर्ष तक पोरबन्दर की दीवानगीरी करने के बाद वे राजस्थान के कोर्ट के सदस्य बने। बाद में राजकोट में और कुछ समय के लिए बीकानेर में दीवान रहे, मृत्यु के समय वे राजकोट दरबार के पेंशनर थे।

करमचन्द गाँधी ने एक के बाद एक चार विवाह किए। पहले दो से दो कन्याएँ थीं, अन्तिम पत्नी पुतलीबाई से एक पुत्री तथा तीन पुत्र थे। उनमें अन्तिम पुत्र स्वयं मोहनदास करमचन्द गांधी थे ।[5] गाँधी जी के पिता स्वगोत्र प्रेमी, सत्यवादी, वीर और उदार

व्यक्तित्व से पूर्ण थे। उनकी माता पुतलीबाई एक साध्वी, श्रद्धालु, व्यवहार कुशल एवं योग्य महिला थी। राजमहल की महिलाओं से मित्रता होने के कारण उनका प्रभाव राजदरबार के लोगों पर भी था, लेकिन उन्हें अपने घर, परिवार के कामों में लगा रहना अच्छा लगता था। घर में कोई बीमार पड़ता तो वे उसकी सेवा सुश्रुषा में रात-दिन एक कर देतीं। सादा जीवन उच्च विचारों के कारण उन्हें चमकीले वस्त्रों एवं आभूषणों में कोई रुचि नहीं थी। उनका जीवन तो मानों उपवास एवं व्रतों की अटूट श्रृंखला थी। पढ़ी-लिखी न होने पर भी धर्म-ग्रंथों में उनकी विशेष जिज्ञासा थी, जिसे वे टूटी-फूटी गुजराती भाषा में पढ़ती थीं। धर्म सम्बंधी सम्पूर्ण ज्ञान उन्होंने घर पर ही कथा, वार्ता एवं सत्संगों द्वारा प्राप्त किया था। वे आस्तिक भी थीं और अन्धविश्वासी भी। घर के बालकों को वे अन्त्यजों से दूर रखा करती थीं। सूर्य ग्रहण तथा चंद्र ग्रहण भी नहीं देखने देती थीं।

माता की कर्त्तव्यपरायणता एवं धर्मपरायणता का सबसे अधिक प्रभाव मोहनदास पर पड़ा। माँ के अनन्त प्रेम, असीम तपोमय व्रतों और अटल इच्छा शक्ति की अमिट छाप भी उनके हृदय पर पड़ गई। दूसरे बच्चों की अपेक्षा मोहनदास अधिक जिज्ञासु थे। वे बड़े बेढ़वा प्रश्न पूछा करते थे - घर में भंगी को छूने से छूत कैसे लग जाती है ? ग्रहण को देखने से क्या होता है ? माता पुतलीबाई जो जवाब देतीं उनसे उनको संतोष नहीं होता था, फिर भी मोहनदास अपनी माँ के इतने निकट थे कि स्नेह के दृढ़ बंधन को जीवन भर अनुभव करते रहे।

अपनी माता के अनन्त गुण गाँधी जी के लिए प्रेरणा के अमर स्रोत बन गए। जिसे अपने भावी जीवन में संयम और आत्म-नियंत्रण के लिए सतत् संघर्ष करना था, और जिसकी सारी लड़ाइयाँ मनुष्य के दिलोदिमाग को जीतने के लिए लड़ी जानी थी। ''पुतलीबाई से प्रेरित नारी की जो प्रतिमा उनके हृदय में अंकित हुई वह प्रेम और बलिदान की प्रतिमा थी । मातृत्व की इस सहज स्नेह भावना का कुछ अंश गाँधी जी में भी था जो उनके उम्र के साथ निरंतर

विकसित होता गया और अन्तत/ परिवार और समुदाय की सीमाओं को तोड़ कर सारी मानवता में व्याप्त हो गया।''[6]

गाँधी जी के बचपन का वर्णन करते हुए प्रभुदास जी ने लिखा है – ''मोहन को किसी प्रकार के वाचन में दिलचस्पी नहीं थी। स्कूल की पढ़ाई में भी वह आलसी था। किन्तु पिता ने एक किताब खरीद दी थी 'श्रवण पितृभक्ति' उसे देखकर पढ़ने का शौक हुआ और बहुत रुचि पूर्वक उसे उसने पढ़ा। उसका गहरा प्रभाव मोहन पर पड़ा। आगे चलकर अन्य पुस्तकों का प्रभाव गाँधी जी के जीवन पर पड़ा, उसमें श्रवण की किताब ने श्रीगणेश किया। गाँव में एक नाटक कंपनी थी। 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र' का नाटक देखने की अनुमति मोहन को मिल गई। फिर तो मोहन को स्वप्न में भी हरिश्चन्द्र दिखाई दें और हरिश्चन्द्र के दुःखद जीवन के प्रसंगों का स्मरण कर वह बार-बार रोये। मोहन छोटा था तब बहुत डरपोक था। उसे प्रेम से संभालने वाली रंभाबाई ने उसे समझाया, डर की औषधि है – राम राम। इस बात का बीज मोहन के अंतःतल में जम गया परिणामस्वरूप राम नाम उनके जीवन की अमोध शक्ति बन गई।''[7]

1 क ii शिक्षा-दीक्षा :

महात्मा गाँधी की प्रारंभिक शिक्षा का बीजारोपण तो माता पुतलीबाई द्वारा सुनाई गई किस्सों, कहानियों से ही हो गया था, फिर भी अक्षर ज्ञान हेतु उनका दाखिला (प्रवेश) पोरबन्दर की पाठशाला में कराया गया। जब परिवार पोरबन्दर छोड़कर राजकोट आया तब उनका प्रवेश राजकोट की ग्राम पाठशाला में करवाया गया। उनका विद्यार्थी जीवन बहुत साधारण था। वे न तो पढ़ाई में तेज थे और न खेल में। स्वभाव से ही शांत, झेंप और एकान्त प्रिय इस लड़के के मुँह से लोगों के सामने बोली तक नहीं निकलती थी। औसत दर्जे का विद्यार्थी समझे जाने की उसे जरा भी फिक्र न थी, लेकिन अपनी प्रतिभा बनाये रखने के प्रति वह अतीव सतर्क था । उसे इस बात का गर्व था कि वह अपने शिक्षकों और सहपाठियों से

कभी झूठ नहीं बोलता था।"[8] अपने विद्यार्थी जीवन की अविस्मरणीय घटना का वर्णन करते हुए लिखा है – "हाई स्कूल के पहले वर्ष की परीक्षा के समय शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर 'जाइल्स' विद्यालय का निरीक्षण करने आये थे। उन्होंने पहली कक्षा के विद्यार्थियों को अंग्रेजी के पाँच शब्द लिखाये। उनमें एक शब्द कैट्ल (Cattle) था। मैंने उसके हिज्जे गलत लिखे थे। शिक्षक ने अपने बूट की नोक मार कर मुझे सावधान किया। लेकिन मैं क्यों सावधान होने लगा ? मुझे यह ख्याल ही नहीं हो सका कि शिक्षक मुझे पास वाले लड़के की पट्टी देखकर हिज्जे सुधार लेने को कहते हैं। मैंने यह माना कि शिक्षक तो यह देख रहे हैं कि हम एक दूसरे की पट्टी में देखकर चोरी न करें। सब लड़कों के पाँचों शब्द सही निकले और अकेला मैं बेवकूफ ठहरा। शिक्षक ने मुझे मेरी बेवकूफी बाद में समझायी ; लेकिन मेरे मन पर उनके समझाने का कोई असर नहीं हुआ। मैं दूसरे लड़कों की पट्टी देखकर चोरी करना कभी न सीख सका।"[9] उन्होंने सन् 1887 में बम्बई से मैट्रिक की परीक्षा पास की। जब वे मैट्रिक में पढ़ रहे थे तभी पिता कर्मचन्द गाँधी की मृत्यु हो गई, जिससे परिवार की आर्थिक दशा संतोषजनक नहीं रह गई थी। अध्ययन के प्रति लालसा देख परिवार को उनसे बहुत उम्मीद थी इसलिए उन्हें पढ़ने के लिए भावनगर भेजा गया था। इसे गाँधी का दुर्भाग्य ही कहें कि वहाँ पढ़ाई का माध्यम अंग्रेजी था और व्याख्यान उनकी समझ में नहीं आते थे। उनका मन पूर्णतः खिन्न हो चुका था तभी पारिवारिक मित्र मालवदेव ने सुझाव दिया कि उन्हें इंग्लैंड जाकर कानून की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।

विदेश जाने का विचार कर गाँधी का बाल मन खुशी से झूम उठा। उनके बड़े भाई को भी यह प्रस्ताव अच्छा लगा लेकिन खर्च कौन उठायेगा, यह सोच कर मन में निराशा छा गई। माता पुतलीबाई को भी कई अज्ञात चिन्ताओं ने घेर लिया। गाँधी जी मोढ़ बनिया जाति के थे उस जाति ने भी धमकी दी कि अगर मोहन विदेश गया तो उनके परिवार को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाएगा । मोहन की दृढ़ प्रतिज्ञा के सामने सभी आशंकाएँ तथा

धमकियाँ कमजोर पड़ गईं और सितम्बर 1888 में 18-19 साल की उम्र में वे समुद्री जहाज से इंग्लैंड के लिए रवाना हो गये। स्वदेश के जीवन एवं जहाज तथा लंदन के वातावरण में बहुत अंतर था। पश्चिमी खान-पान, वेश-भूषा तथा शिष्टाचार को अपनाना अतीव कष्टदायक था। क्योंकि विदेश गमन से पूर्व उन्होंने अपनी माता से प्रतिज्ञा की थी कि वे मद्य, माँस और नारी का स्पर्श नहीं करेंगे। अपने द्वारा की गई प्रतिज्ञाओं से उन्हें बहुत कष्ट भी उठाने पड़े। अपने को एक अजनबी वातावरण में ढालने में उन्हें बहुत समय लगा। कभी-कभी मन भटक भी जाता तो माँ के साथ की हुई प्रतिज्ञा याद आ जाती।

एक दिन लंदन में घूमते हुए 'फेरिंग्डन स्ट्रीट' में सहसा उन्हें एक शाकाहारी रेस्तरां मिल गया। इस रेस्तरां को देखकर उन्हें उतनी ही खुशी हुई जितनी अपनी मन पसंद चीज को देखकर किसी बच्चें को होती है। तीन महीनों तक फैशन की चकाचौंध में भटकने के बाद उनका अन्तर्मुखी मन पुनः सक्रिय हो गया। फिजूलखर्ची को छोड़ वह मितव्ययी बने। एक-एक पैसे का हिसाब रखने लगे। सस्ते किराये वाले कमरे में रहने लगे। नाश्ता एवं भोजन स्वयं बनाते तथा बस का किराया बचाने के लिए आठ-दस मील पैदल चला करते। परिवार के दायित्व का बोध भी उन्हें होने लगा, इसलिए खर्च के लिए भाई से बहुत ही कम पैसे मँगाते। सादगी ने उनके अन्तः एवं बाह्य शरीर दोनों को संतुलित कर दिया था। निरामिष भोजन, जो पहले उनके लिए परेशानी का कारण था, अब एक महत्त्वपूर्ण गुण बन गया। वहाँ उन्होंने हेनरी एस. साल्ट की लिखी पुस्तक 'प्ली फार वेजीटेरियनिज्म' खरीदी। इसको पढ़ने के बाद शाकाहार के प्रति एक तर्क, आस्था एवं विश्वास की भावना उनमें प्रबल हुई। जिससे शाकाहार उनके जीवन का लक्ष्य बन गया, जिसने उनके जीवन की दशा एवं दिशा को बदल दिया।

लंदन में सबसे अधिक दिलचस्पी महात्मा गाँधी को शाकाहार, आनदोलन में हुई। वे लंदन के शाकाहारी संघ के सदस्य बन गये और जल्दी ही कार्यकारिणी के सदस्य बने। उत्साहपूर्वक ढंग से उन्होंने अपने मुहल्ले में 'वेजवाटर' में एक शाकाहारी क्लब की स्थापना

की। उसी समय उनका सम्पर्क प्रमुख शाकाहारी 'सर एडविन आर्नल्ड' से हुआ, जो 'लाइट ऑफ एशिया' एशिया की ज्योतिः बुद्धचरित और सांग सलेशियल' दिव्य संगीत तथा भगवद्गीता के अनुवाद के लेखक थे। उनका गाँधी पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। बुद्ध के जीवन एवं गीता के संदेश ने उन्हें नई प्रेरणा दी। लंदन के शाकाहारी रेस्तराओं में कई धार्मिक व्यक्तियों से वे मिले तथा उनका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर भी पड़ा। महात्मा ईशु के विचारों को भी उन्होंने सुना एवं पढ़ा। जिसने उनके हृदय को छू लिया। बाइबल, बुद्ध एवं श्यामल भट्ट की शिक्षाएँ गाँधी जी के हृदय में मिलकर एक हो गईं। घृणा के बदले प्रेम एवं बुराई के बदले भलाई करने की बातों ने उन्हें मंत्रमुग्ध कर दिया।[10] विद्यार्थी मोहन सादगी की राह पर चलते हुए सन् 1891 में बैरिस्टर बनकर भारत वापस आ गए।

1. क iii गार्हस्थ्य जीवन :

गाँधी जी का विवाह बाल्यावस्था में ही जब वे 13 साल के थे तब सन् 1883 में अपने से 6 मास बड़ी कस्तूरबाई के साथ हुआ था।[11] कस्तूरबाई गाँधी परिवार के मित्र और पोरबन्दर के एक प्रसिद्ध व्यापारी कोकलदास बनक की पुत्री थीं। विवाह शब्द से अनभिज्ञ गाँधी का बाल-विवाह तो हो गया जब कारण जानना चाहा तो पता चला कि जब वे छोटे थे, तभी उनकी एक के बाद एक तीन सगाई करनी पड़ी थीं क्योंकि जिन कन्याओं से गाँधी की सगाई हुई थी, वे एक के बाद एक मृत्यु को प्राप्त हो गई थी। अतः अंत में सात साल की उम्र में उनकी तीसरी सगाई कस्तूरबाई से की गई थी।

कस्तूरबाई स्वभाव से सीधी सादी कर्त्तव्यनिष्ठ महिला थी। विवाह के कुछ वर्षों में ही तीन-चार महीने में पुत्र को पत्नी के पास छोड़ गाँधी जी उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैंड चले गए थे। अतः तीन-चार वर्षो के पश्चात् जब वे भारत वापिस आये तो पुनः अपनी जीवन संगीनी एवं परिवार के सुखमय वातावरण में जीवन यापन करने लगे। कस्तूरबाई निरक्षर थीं, लेकिन सीधी तथा मेहनती होने के कारण उन्हें इसका मलाल (अफसोस) न था । गाँधी जी

उन्हें अक्षर ज्ञान करना चाहते थे, उसके लिए उन्होंने एक शिक्षक की व्यवस्था भी कर दी। कस्तूरबाई ने पत्र लिखना तथा साधारण गुजराती पढ़ना सिख लिया। तत्कालीन समाज में पर्दा प्रथा की बहुलता होने के कारण वे इससे अधिक न पढ़ सकीं। गाँधी जी अपनी पत्नी को आदर्श तो बनाना चाहते थे लेकिन उनकी अज्ञानता एवं सीधेपन के कारण वे उनसे खिन्न रहने लगे, जिससे उनके तथा कस्तूरबाई के सम्बंधों में दूरियाँ बढ़ने लगीं। फलस्वरूप कस्तूरबाई एक दो बार मायके जा कर भी रहीं। बाद में गाँधी जी को अपनी गलती का अहसास हुआ और पुनः कस्तूरबाई के साथ सुख पूर्वक जीवन यापन करने लगे।

गाँधी जी का परिवार एक संयुक्त परिवार था। उनके बड़े भाई को उनसे बहुत ही उम्मीदें थीं क्योंकि परिवार ने उनकी पढ़ाई पर बहुत पैसा खर्च किया था। बड़े भाई तो एक साथ धन, नाम और यश तीनों की बड़ी आशाएँ लगाये हुए थे। उस समय राजकोट के वकीलों को भारतीय कानून की जानकारी अधिक थी तथा वे फीस भी कम लेते थे जब यह जानकारी गाँधी जी को मिली तो उन्होंने सोचा राजकोट में वकालत करना अपनी खिल्ली उड़वाने जैसा होगा। अपने मित्रों की राय मानकर वे भारतीय कानून का अध्ययन करने तथा छोटे-मोटे मुकदमों को लड़ने के लिए मुम्बई चले गए। वहाँ भी कई कटु अनुभवों का सामना करना पड़ा। पहले मुकदमे के उन्हें तीस रुपये मिले थे उसे भी वे नहीं लड़ पाये। जिस वकालत की शिक्षा के लिए विदेश जाकर इतना पैसा खर्च किया उसका सही सदुपयोग न देख उन्हें अपना भविष्य अंधकारमय दिखाई पड़ने लगा। घर परिवार की चिंता भी सताने लगी कैसे सबकी जरूरतों की पूर्ति की जाएगी। उसी उधेड़बुन में वे 75 रुपये मासिक पर अध्यापक बनने को तैयार हो गए, लेकिन उनका आवेदन पत्र निरस्त कर दिया गया।

गाँधी जी आवेदन-पत्र तथा याचिकाएँ लिखने में बहुत कुशल थे। जब उन्हें अपनी कुशलता का भान हुआ तो वे बम्बई से राजकोट आ गए और आवेदन और अर्जीदावे लिखकर तीन सौ रुपये मासिक कमाने लगे। राजकोट कचहरी में भी आते-जाते रहे। 'बैरिस्टरी' शुरू

नहीं कर पाये क्योंकि कचहरी के 'पॉलिटिकल एजेंट' को उन्होंने नाराज कर दिया था। तीन सौ रुपये से घर परिवार का गुजारा चल जाता था। लेकिन गाँधी जी को उससे संतुष्टि नहीं हुई और जब दक्षिण अफ्रीका से नौकरी का प्रस्ताव आया तो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। दक्षिण अफ्रीका में आमदनी अच्छी होगी जिससे घर की आर्थिक स्थिति मजबूत होगी तथा बच्चों का भविष्य भी अच्छा होगा यह सोचकर गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका चले गए।

1. क iv लंदन में :

'बैरिस्टरी' की शिक्षा गाँधी जी ने इंग्लैंड से ही प्राप्त की थी। विद्यार्थी काल में बहुत सी परेशानियों का सामना उन्हें यहाँ करना पड़ा था, जिसके लिए वे तन, मन तथा धन से पूर्णतः असमर्थ थे फिर भी अपनी अन्तर्शक्तियों से उन्होंने असमर्थ को समर्थ कर बैरिस्टरी की शिक्षा पूर्ण कर, भारत वापिस आ गए थे। पुनः 29 अगस्त, 1931 को द्वितीय 'गोलमेज' सम्मेलन में भाग लेने के लिए उन्होंने 'राजपूताना' नामक समुद्री जहाज से इंग्लैंड के लिए प्रस्थान किया।[12] उन्हें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में भेजा गया था। उनके साथ जाने वाले प्रतिनिधियों में अधिकतर सरकार द्वारा मनोनीत थे। उनमें कुछ योग्य व्यक्ति, कुछ जमींदार तथा राजेरजबाड़े आदि थे। यह सम्मेलन ब्रिटिश सरकार द्वारा अपने स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए रखा गया था। वह अपने उद्देश्यों में पूर्णतः सफल हुई भी क्योंकि उन्होंने सम्मेलन का ध्यान मूल प्रश्नों से हटाकर अप्रधान विषयों एवं साम्प्रदायिक समस्याओं की तरफ उलझा दिया था। गाँधी जी ने अल्पसंख्यक तथा मुसलमानों की न्याय संगत शिकायतों को सामने रखा लेकिन उसका कुछ भी परिणाम न निकल सका। गाँधी जी की इच्छा थी कि भारत और इंग्लैंड के बीच प्रेम एवं भाईचारे का मजबूत सम्बंध बने लेकिन इसमें उनको सफलता नहीं मिली क्योंकि उन दिनों ब्रिटेन आर्थिक संकट से गुजर रहा था तथा इंग्लैंड की जनता भी कई तरह की समस्याओं से जूझ रही थी। भारतीय जनता की परेशानी एवं समस्याओं से उन्हें कोई मतलब नहीं था। इंग्लैंड भारत को परतंत्र ही रखना चाहता था।

उसी समय नये भारत सचिव 'सर सैम्युअल होर' ने गाँधी से कहा था कि ''मेरा यह निश्छल विश्वास है कि भारतीय पूर्ण स्वराज्य के अयोग्य हैं।''[13] गाँधी जी को लंदन जाने का मुख्य उद्देश्य था कि लंदन के लोगों से मिलना और उन्हें समझाना। वहाँ वे मजदूर बस्ती ईस्ट एंड के किंग्सले हाल में ठहरे हुए थे। प्रतिदिन लोगों से मिलना, उन्हें उनके कर्त्तव्यों का बोध कराना, अपने द्वारा धारण किए जाने वाले लुंगी चादर के विषय में बताना तथा बुराई का बदला भलाई से देना आदि बातें लोगों को सिखाते। वहाँ अपनी व्यवहार कुशलता से उन्होंने वहाँ के लोगों को अपना बना लिया था। लोग घर की शिकायतें लेकर उनके पास आते थे। उनके जन्म दिन को वहाँ के बच्चों ने धूमधाम से मनाया तथा उन्हें उपहार भी दिया।

लंदन प्रवास के दौरान वे लंकाशायर के सूती मिल में भी गये। वहाँ के मजदूर बड़े ही प्रेम और आदर के साथ उनसे भेंट करने आये। विदेशी वस्त्र बहिष्कार का कारण उन्हें समझाकर उन्हें सन्तुष्ट भी किया। वहाँ के लोग भी गाँधी जी से मिलकर प्रसन्न थे क्योंकि उससे पहले वहाँ के अखबार, गाँधी जी को लुंगी एवं बकरी के दूध के किस्सों से उनका मजाक उड़ाया करता था। अपनी स्नेहपूर्ण बोली से उन्होंने सबको आकर्षित कर लिया था। लोग उनके विचारों को क्रान्तिकारी विचार मानने लगे थे। वहाँ रहते हुए, उन्हें भारत के समाचार मिलते रहते थे। भारत की स्थिति ठीक नहीं थी। गाँधी जी के इंग्लैंड प्रस्थान से पूर्व कांग्रेस और सरकार के बीच जो समझौता हुआ था, वह टूट चुका था। वह शीघ्रातिशीघ्र स्वदेश लौटना चाहते थे। गाँधी जी 28 दिसम्बर, 1931 को पुनः बम्बई लौट आए।

1 क. v दक्षिण अफ्रीका में :

'बैरिस्टरी' पास करके गाँधी जी भारत तो लौट आए लेकिन उन्हें भारत में कोई ढंग का मुकदमा नहीं मिला। उसी समय डरबन में व्यापार करने वाले दादा अब्दुल्ला ने डरबन की कोर्ट में अपने पक्ष में मुकदमा लड़ने के लिए कहा, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। गाँधी जी सन् 1893 के मई महीने में डरबन पहुँचे । पहली बार जब वे डरबन की

कचहरी पहुँचे तो वहाँ उन्हें अपमान का घूँट पीना पड़ा। डरबन से पिक्टोरिया जाते समय मार्ग में भी उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया। उन्हें धक्का देकर रेल से ही निकाल दिया गया। उस ठिठरती रात में उन्हें बोध हुआ कि दक्षिण अफ्रीका में भारतीय कितनी अपमान जनक परिस्थितियों से गुजर रहे हैं। गाँधी जी ने स्वयं लिखा है – ''साधारण लोग भी उनसे द्वेष करते हैं, उन्हें कोसते हैं, उन पर थूकते हैं, और अक्सर उन्हें पैदल, गाड़ियों से बाहर ढकेल देते हैं। अखबारों को तो मानो उनकी निन्दा करने के लिए अच्छे से अच्छे अंग्रेजी कोश में भी काफी जोरदार शब्द ढूँढ़े नहीं मिलते । कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं : सच्चा सुने तो कलेजा ही खया जा रहा है। परजीवी मक्कार, मुए अर्द्ध बर्बर एशियाटिक', काली और दुबली कोई चीज निराली। अखबार इन्हें सही नामों से पुकारने से लगभग एक स्तर से इनकार करते हैं। उन्हें रामी सामी कहा जाता है, मि. सामी कहा जाता है मि. कुली और ब्लैक मैन (काला आदमी) कहकर पुकारा जाता है। ये संतोष कारक अपाधियाँ इतनी आम बन गई हैं कि उसका प्रयोग अदालत की पवित्र सीमा में भी किया जाता है – मानो कुली कोई कानूनी और व्यक्तिवाचक नाम है, जो किसी भी भारतीय को दिया जा सकता है।''[14]

गाँधी जी वहाँ इतने अपमानित हुए कि वह यह सोचने पर विवश हो गए, अब उन्हें दक्षिण अफ्रीका में रहना चाहिए या नहीं। रंग भेद के सम्बंध में वे लिखते हैं – ट्राम गाड़ियाँ भारतीयों के लिए नहीं हैं। रेलवे कर्मचारी भारतीयों के साथ जानवरों जैसा व्यवहार करते हैं। भारतीय चाहे कितने ही स्वच्छ क्यों न हो, उपनिवेश के प्रत्येक गौरे व्यक्ति को उन्हें देखकर ही संताप हो आता है और वह संताप इतना होता है कि वे थोड़ी देर के लिए भी भारतीयों के साथ रेलगाड़ी के एक ही डिब्बे में बैठना पसन्द नहीं करते । होटलों के दरवाजे भारतीयों के लिए बन्द हैं। सार्वजनिक स्नानगृह भी भारतीयों के लिए नहीं हैं। फिर वह भारतीय कोई भी क्यों न हो । .... आवास कानून गैर जरूरी और पर उत्पीड़न है। अक्सर यह प्रतिष्ठित भारतीयों को अड़चन में डाल देता है।''[15]

दक्षिण अफ्रीका में ही गाँधी जी को भारतीयों की एक और समस्या की जानकारी मिली, वह थी 'गिरमिट'। गिरमिट का अर्थ है - वह इकरार यानि 'एग्रीमेन्ट' जिसके अनुसार उन दिनों गरीब भारतीयों को पाँच साल की मजदूरी के लिए 'नेटाल' ले जाया जाता था। 'गिरमिट' 'एग्रीमेन्ट' का ही अपभ्रंश है और उसी से 'गिरमिटिया' शब्द बना है। इन मजदूरों के साथ दास जैसा व्यवहार किया जाता था तथा गोरे इन्हें कुली कहकर पुकारते थे। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों को मताधिकार प्राप्त नहीं था। इन लोगों को उनका सम्मान तथा मताधिकार दिलवाने के उद्देश्य से, गाँधी जी ने सन् 1893 के मई महीने के 22 तारीख को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के दौरान एक संगठन की स्थापना की जिसका नाम 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' रखा गया। यह संगठन जीवंत रूप से क्रिया शील रहा तथा इस संस्था ने वहाँ रह रहे भारतीयों के सामाजिक एवं नैतिक उत्थान का कार्य किया। इस संगठन के प्रयासों से अल्पसंख्यकों के राजनैतिक एवं आर्थिक अधिकारों की सुरक्षा का माध्यम ही नहीं, उनमें सुधार और एकता लाने का साधन भी बना। गाँधी जी के नेतृत्व में नेटाल के भारतीयों ने रंग भेद मूलक कानूनों तथा कष्टप्रद नियमों को रद्द कराने और भावी अत्याचार को रोकने की भरपूर कोशिशें की।

सन् 1896 में वे भारत लौटकर आये। दक्षिण अफ्रीका में उनके द्वारा किए गए कार्यों ने देश में भारी हलचल मचा दी थी। 'राजकोट' में उन्होंने प्रवासी भारतीयों के सम्बंध में एक पुस्तक लिखी और दस हजार प्रतियाँ छपवाकर बँटवाई । बम्बई में एक सार्वजनिक सभा में उस विषय पर भाषण दिया। पूना और मद्रास में भी सभाएँ हुईं। इसी दौरान वे महान राजनीतिज्ञ, 'गोपाल कृष्ण गोखले' और 'लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक' से मिले। लोकमान्य 'तिलक' उन्हें समुद्र की भाँति और 'गोखले' के दर्शन गंगा की तरह जान पड़े। गांधी जी ने बहुत ही सुन्दर ढंग से उन दोनों का विश्लेषण किया है – ''समुद्र में डूबने का भय रहता है, पर गंगा की गोद में खेल सकते हैं।''[16] इन्हीं गंगा समान 'गोपाल कृष्ण गोखले' को गाँधी जी

ने अपना राजनीतिक गुरु माना। गाँधी जी कलकत्ता, बम्बई आदि और भी बडे-बड़े शहरों में भी जाकर सभाएँ करना चाहते थे लेकिन इसी बीच डरबन से तुरन्त 'आओ' का तार आ पहुँचा। इस प्रकार छः महीने स्वदेश में रहने के पश्चात् वे पुनः 10 जनवरी, 1897 को अफ्रीका लौट गए। इस बार वे अपने परिवार को भी अपने साथ ले गए।

दक्षिण अफ्रीका में सन् 1899 में 'बोअर' युद्ध छिड़ गया। यह युद्ध सन् 1902 तक चला। यद्यपि इस युद्ध में गाँधी जी की सहानुभूति 'बोअर' लोगों के साथ थी, फिर भी उन्होंने अंग्रेजों का साथ दिया। उन्होंने घायलों की सेवा के लिए एक टुकड़ी तैयार की, जिसमें तीन सौ स्वतंत्र भारतीय और आठ सौ 'गिरमिटिये' मजदूर थे। गाँधी और उनकी सेना ने जो कार्य किया, उसकी जनता तथा सेना ने बहुत प्रसंशा की। इसी बीच गाँधी जी ने 'अन्टू दी लास्ट' की एक छोटी सी पुस्तक का अध्ययन किया, जिसका उनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसका सार था – "उस आखरी आदमी को याद करो जो बहुत गरीब है।" इन भावों से उनके जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। उनको लगा कि मुझे भी अपने पसीने की रोटी खानी चाहिए। खेत में काम करना चाहिए। अपनी बैरिस्टरी की कमाई पर अपना हक नहीं है। वह पैसा समाज के काम में लगाना चाहिए। इस विचार के परिणामस्वरूप गाँधी जी ने सन् 1904 में दक्षिण अफ्रीका में 'फिनिक्स' आश्रम की स्थापना की और पूरे परिवार के साथ वहाँ रहने लगे।"[17]

इसी बीच गाँधी जी द्वारा दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया जा चुका था। असंख्य निर्बल और दलितों के अधिकारों की रक्षा में वे लगे हुए थे। सन् 1908 में पंजीकरण कानून तोड़ने के अपराध में उन्हें भी गिरफ्तार किया गया। लोगों ने उनपर विश्वासघाती होने का आक्षेप भी लगाया फिर भी वे आन्दोलन करते रहे। गाँधी जी ने जोहान्सबर्ग से 21 मील दूर 1100 एकड़ जमीन पर 'टालस्टाय फार्म' के नाम से एक बस्ती भी बसाई जिसमें बहुत से मजदूरों को आश्रय दिया गया । गाँधी जी ने 'टालस्टाय फार्म' के

विषय में लिखा है – 'टालस्टाय फार्म' में आकर निर्बल लोग बलवान बन गये और परिश्रम सबके लिए शक्तिदायी सिद्ध हुआ।''[18] गोपाल कृष्ण गोखले भी दक्षिण अफ्रीका की यात्रा के दौरान इसी फार्म में ठहरे। उन्हें वहाँ का सुरम्य तथा शांतिमय वातावरण बहुत भाया।

सन् 1905 में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका सरकार के 'एशियाटिक रजिस्टेशन' के विरूद्ध सफलता पूर्वक सत्याग्रह किया। इसके विरूद्ध भी उन्हें जेल जाना पड़ा। इस संघर्ष में कारावास उनकी पत्नी कस्तूरबा गाँधी ने भी उनका सहयोग दिया। कारावास के दौरान उन्होंने टालस्टाय, रस्किन और अमरीकी विचारक थोरो के साहित्य का गहन अध्ययन किया। दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों को न्याय दिलवाकर तथा उन्हें सत्याग्रह का पाठ पढ़ाकर, गाँधी जी सन् 1914 में स्वदेश वापिस आ गए।

1. क vi भारतीय राजनीति में प्रवेश और भूमिका :

9 जनवरी, 1915 को गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका से बम्बई पहुँचे।[19] स्वदेश आगमन पर भारतीय जनता ने उनका भव्य स्वागत किया। इसी वर्ष उन्हें भारत सरकार की ओर से 'केसरे हिन्दी' स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका से आए थे, भारत की राजनीति को समझेंगे और यथासंभव स्वराज्य का प्रयास करेंगे। उदारवादी नेता श्री गोपाल कृष्ण गोखले गाँधी जी के राजनीतिक गुरु थे। उनकी सलाह पर कुछ दिनों तक निरपेक्ष रहकर, भारत में हो रही राजनीतिक गतिविधियों का अध्ययन किया। गोखले चाहते थे कि गाँधी जी 'सर्वेण्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी' के सदस्य बन जाएँ लेकिन वहाँ के कुछ लोगों को लगता था, ऐसा मुमकिन नहीं है। गाँधी जी अपने अस्थायी निवास के लिए शान्ति निकेतन चले गए, जहाँ रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विश्वविद्यालय था। गाँधी जी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर में गहरी आत्मीयता थी। 'लुई फिशर' के शब्दों में ''गाँधी जी गेंहूँ के खेत थे, रवीन्द्रनाथ गुलाब के फूल, गाँधी जी काम करने वाले हाथ थे, रवीन्द्रनाथ गाने वाली आवाज, गाँधी जी सेनापति थे, रवीन्द्रनाथ अग्रगामी दूत, गाँधी जी मुंड सिर और चेहरे वाले कृश

तपस्वी थे, रवीन्द्रनाथ विशालकाय लम्बे संफेद बाल और सफेद दाढ़ी वाले रईस-मनमस्ती जिनमें चेहरे पर उच्च कोटि का पितृ तुल्य सौंदर्य था, गाँधी जी युद्ध त्याग के उदाहरण थे, रवीन्द्रनाथ स्वतंत्रता के आलिंगन के आह्लाद के सहस्त्र बंधनों का अनुभव करते थे, परन्तु भारत और मानवता के लिए देश के कारण दोनों एक थे। गाँधी जी को 'महात्मा' की उपाधि रवीन्द्रनाथ ने ही और रवीन्द्रनाथ को गाँधी जी ने 'गुरुदेव' की संज्ञा से विभूषित किया।''[20]

गाँधी जी का भारतीय राजनीति में प्रवेश मानव इतिहास की अन्यतम घटना है।[21] वैसे दक्षिण अफ्रीका में ही सत्य के प्रति अहिंसा के साधक गाँधी जी का राजनीतिक जीवन आरंभ हो गया था। भारत लौटने पर कांग्रेस से बाहर रहकर भी कार्य करते रहे थे लेकिन परिस्थितियों से बाध्य होकर सन् 1914 में उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत की। इस सम्बंध में श्री पुखराज जैन ने लिखा है – परिस्थितियों से बाध्य होकर इस आध्यात्मिक संत ने न केवल राजनीतिक जीवन में 'प्रवेश किया, वरन् स्वतंत्रता के संग्राम में भारत की जनता का अत्यन्त सफलता पूर्वक नेतृत्व किया। लेकिन राजनीतिक जीवन में उतना सब कुछ होते हुए भी महात्मा गाँधी अपने मुख्य रूप में आध्यात्मिक संत बने रहे और उन्हीं आध्यात्मिक तथा नैतिक दृष्टिकोण के आधार पर ही विविध राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक समस्याओं का अध्ययन करते हुए अपेन विचार प्रकट किए।[22] सन् 1915 में उन्होंने सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की। अहमदाबाद के कोचख गाँव में, पच्चीस व्यक्तियों से इस आश्रम का शुभारंभ हुआ। बाद में इसे स्थानाभाव के कारण साबरमती में स्थापित करना पड़ा। इसी साबरमती आश्रम को उन्होंने आजीवन अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया।

सन् 1917 अप्रैल महीने में, वे बिहार के चम्पारन जिले में नील बगानों में कार्यरत ग्रामीणों की दशा का निरीक्षण करने गए। उन्होंने देखा कि नील की खेती करने वाले किसानों के साथ बड़ा अत्याचार हो रहा था। वे अपनी खेती के 3/20 हिस्से पर नील की खेती करने को बाध्य थे । अंग्रेजों के खिलाफ किसानों में असंतोष था । कृषकों के निमित्त पहली बार

104009

असहयोग की योजना गाँधी जी ने कार्यान्वित की और उन्हें इसमें सफलता भी प्राप्त हुई। चम्पारन के व्यापक सत्याग्रह ने बीस लाख किसानों को प्रभावित किया, जिससे एक शताब्दी से चले आ रहे, अन्याय का अहिंसक सत्याग्रह द्वारा निवारण हुआ। गाँधी जी के जीवन में खेड़ा सत्याग्रह का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। कृषकों की दयनीय अवस्था में उनकी सहायता करने तथा अन्यायी सरकार के विरूद्ध सिर उठाने के प्रयोजन से उन्होंने सत्याग्रह का रास्ता अपनाया। इस सत्याग्रह में उन्हें सफलता प्राप्त हुई और किसानों में भी जागरण तथा राजनीतिक शिक्षा का शिलान्यास हो गया।[23] यशपाल जैन के अनुसार – भारत में यह पहला किसान सत्याग्रह था, जिसका नेतृत्व गाँधी जी ने किया।[24] गाँधी जी ने अपनी प्रतिक्रिया इन शब्दों में व्यक्त की – खेड़ा की लड़ाई से गुजरात के किसान वर्ग की जागृति और उनकी राजनीतिक शिक्षा प्रारम्भ हुई।[25]

सन् 1919 में विश्वयुद्ध की समाप्ति हुई और भारतीयों को उनकी इच्छा के विरुद्ध अंग्रेजों को दी गई सहायता के बदले उपहार स्वरूप 'रोलेट-एक्ट' मिला। ऐसी निराशाजनक परिस्थितियों में चम्पारन, खेड़ा और अहमदाबाद के सत्याग्रहों का नेतृत्व करने वाले गाँधी जी ने सम्पूर्ण देश का नेतृत्व संभाला और उन्होंने अहिंसात्मक सत्याग्रह की घोषणा कर दी।''[26] गाँधी जी के पवित्र उपवास के साथ आन्दोलन आरम्भ हुआ और सम्पूर्ण देश उनके साथ होकर, राष्ट्रीयता की भावना में सराबोर होकर, बलिदान के मार्ग पर बढ़ने लगा। एकता की अपूर्व लहर देश के एक छोर से दूसरे छोर तक लहराने लगी। सरकार ने उन्हें मुकदमा चलाकर छः वर्ष के कारावास की सजा दी, जिसका जनता ने खूब विरोध किया। इस प्रकार गाँधी जी के नेतृत्व में भारतीय इतिहास का नया अध्याय आरम्भ हुआ। अभी 'रोलेट एक्ट' के विरोध में गूँजने वाले स्वर शांत भी नहीं हो पाये कि पंजाब में जलियाँ वाला बाग हत्याकांड हो गया। 13 अप्रैल, 1919 को अमृतसर के जलियाँ वाला बाग में एक विशाल सभा पर जनरल डायर ने निरपराध व्यक्तियों पर गोलियाँ चलवाई, जिनमें औरतें और मासूम

बच्चे भी शामिल थे। 1650 बार गोलियाँ चलीं और 1516 व्यक्ति मारे गए।

इस अमानुषिकता के नग्न ताण्डव ने भारत में सनसनी फैला दी। इसी घटना से गाँधी जी के सक्रिय राजनीतिक जीवन का आरम्भ हुआ। पंजाब में मोतीलाल नेहरू आदि नेताओं को जलियाँ वाला बाग के हत्याकांड के जाँच करने में गाँधी जी ने सहायता दी। रिपोर्ट का गाँधी जी ने ही तैयार किया था। सन् 1920 के राजनीतिक उतार-चढ़ाव में गाँधी जी ने देखा कि खिलाफत के प्रश्न पर भारत का मुसलमान वर्ग भी ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध था। अतः हिन्दू-मुस्लिम एकता में विश्वास करने वाले गाँधी जी ने इसे ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ करने का उपयुक्त अवसर समझा और उन्होंने खिलाफत के प्रश्न को असहयोग आन्दोलन के साथ मिलाकर ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया। असहयोग आन्दोलन ने भारतीय जनता को जागृत करने की दिशा में अभूतपूर्व कार्य किया। जिस दिन इसकी शुरुआत होनी थी, उसी दिन लोकमान्य तिलक जी का देहान्त हो गया। जिससे देश को भारी धक्का लगा। अब देश को मार्गदर्शन कराने की पूरी जिम्मेदारी गाँधी जी पर आ पड़ी और काँग्रेस की बागडोर भी उन्हें ही संभालनी पड़ी।

भारतीय जनता ने इस आन्दोलन में पूरा सहयोग दिया, फलस्वरूप लोगों ने स्कूलों, कॉलेजों, अदालतों और नौकरियों का बहिष्कार किया । विदेशी वस्तुओं की होली जलाई गई। पूरे देश में इस आन्दोलन ने उथल-पुथल मचा दी। असहयोग आन्दोलन के दिनों में ही सन् 1922 में चौरी-चौरा दुर्घटना हुई। सरकार ने गाँधी जी को पकड़कर छरः वर्ष की सजा सुना दी किन्तु अस्वस्थता की वजह से छः मास बाद ही मुक्त कर दिए गए।

सन् 1924 में वे कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उन्होंने सन् 1925 में अखिल भारतीय 'चरण स्पर्श' संगठन की स्थापना की। सन् 1927 में 'साइमन कमीशन' के आगमन पर उन्होंने कमीशन का बहिष्कार किया । सन् 1929 में लाहौर अधिवेशन में जवाहर लाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए तथा अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कांग्रेस का

लक्ष्यपूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति घोषित किया। गाँधी ने अपनी पूर्ण सहमति इस घोषणा को प्रदान की।"[27] 26 जनवरी 1930 को पूर्ण स्वाधीनता की प्रतिज्ञा ली गई। फरवरी 1930 में सविनय अवज्ञा करने हेतु, गाँधी जी को कांग्रेस का अधिनायक नियुक्त किया गया। गाँधी जी ने वायसराय को लिखे पत्र में कांग्रेस की माँग स्वीकार न करने पर 'नमक कानून' तोड़ने का निश्चय किया।[28]

साबरमती आश्रम से लगभग 200 मील पर स्थित 'दण्डी ग्राम' में 'नमक कानून' तोड़ने का निश्चय किया गया। लगभग 7500 किसानों ने आश्रम में एकत्रित होकर भारत की आजादी के लिए मर मिटने की प्रतिज्ञा की। 12 मार्च सन् 1930 को यह ऐतिहासिक यात्रा आरम्भ हुई और 16 अप्रैल, 1930 को जालियाँवाला बाग के शहीदों की स्मृति दिवस पर नमक कानून तोड़ा गया। गाँधी जी ने लोगों से देश पर मर मिटने को कहा, विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के लिए सत्याग्रह किया, धरना दिया। 3 मई, 1930 की रात्रि को दण्डी में उन्हें गिरफ्तार कर 'यरवदा' जेल में बंद किया गया। जिसके विरोध में देशव्यापी प्रदर्शन हुए। इस महान राष्ट्रीय घटना से पहले उसके साथ-साथ और बाद में जो दृश्य देखने में आये, वे इतने उत्साहपूर्ण, शानदार और जीवन फूकने वाले थे कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। इस महान अवसरों पर मनुष्यों के हृदयों में देश-प्रेम की इतनी प्रबल धारा बह रही थी, उतनी पहले कभी नहीं बही थी। यह एक महान आन्दोलन का प्रारम्भ था और निश्चय ही भारत की राष्ट्रीय स्वतंत्रता के इतिहास में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहेगा।"[29] इस सम्बंध में हरिभाऊ उपाध्याय ने लिखा है – "गाँधी जी के हाथों उस दिन 'नमक कानून' ही नहीं टूटा साम्राज्यवाद की जड़ पर बड़ी जोर का आघात हुआ।"[30] श्री ब्रजकृष्ण चाँदी वाला के अनुसार "स्त्रियाँ जो कभी परदे से बाहर नहीं निकलती थीं, उस आन्दोलन में सबसे अगे थीं।"[31]

26 जनवरी को वे बिना शर्त रिहा कर दिए गए और उन्होंने 1931 के 'गोलमेज'

सम्मेलन में भाग लेना स्वीकार किया। कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में वे लन्दन की गोलमेज परिषद् में सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन का कोई परिणाम नहीं निकला। सन् 1932 में एक समझौता हुआ जिसमें गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन को वापस लेना और गोलमेज परिषद् में हिस्सा लेना स्वीकार किया। सरकार ने भी कई शर्तो को स्वीकार कर लिया। उनमें प्रमुख थीं – राजनीतिक बन्दियों की मुक्ति 'आर्डिनेन्स' को वापस लेना, जब्त सम्पत्ति लौटाना, समुद्र के किनारे रहने वालों को बिना टैक्स नमक बनाने देना तथा नशाबन्दी का शक्तिपूर्ण विरोध की छूट देना। इस समझौते के पश्चात् वे गोलमेज परिषद् में सम्मिलित भी हुए पर कोई विशेष परिणाम न निकलने के कारण भारत लौटकर पुनः सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। गाँधी जी ने पूर्ण स्वतंत्रता को पुनः दोहराया। राष्ट्रीय नेता गिरफ्तार कर लिए गए। नये गर्वनर जनरल 'लार्ड विलिंग्डन' ने गाँधी जी पर दोषारोपण किया कि उन्होंने 'दूरवन' समझौता का उल्लंघन किया है। करीब एक लाख से अधिक लोगों से जेल भर दी गई।

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान सरकार ने सन् 1932 में 'कम्यूनल एवार्ड' की घोषणा की जिसके तहत हरिजनों को हिन्दुओं से अलग मानकर उनके लिए पृथक निर्वाचन का स्थान सुरक्षित कर दिया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा हिन्दू सम्प्रदाय में भी फूट डालने के कारण गाँधी जी क्षुब्ध हुए और उन्होंने आमरण अनशन प्रारम्भ किया, जो 21 दिन तक चला। हरिजनों के नेता डॉ. अम्बेडकर ने बीच बचाव किया तथा सरकार और गाँधी जी के बीच एक समझौता हुआ। यह समझौता 'पूना समझौता' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अन्तर्गत् हरिजनों को हिन्दुओं के अन्तर्गत् मान लिया गया और उनके लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र न रखकर केवल सुरक्षित स्थान रख दिए गए। गाँधी जी ने हिन्दू समाज को दो टुकड़ों में बँटने से बचा लिया। इस सम्बंध में उन्होंने कहा भी है – "हिन्दू जाति से अछूतों को जुदा करने वाले किसी भी प्रयत्न को मैं बरदाश्त नहीं करूँगा बल्कि मौका पड़ने पर उनके विरोध

में अपनी जान लगा दूँगा।''[32]

इंग्लैंड का मजदूर वर्ग भारत की स्वतंत्रता का समर्थक था। सब ओर से दबाव पड़ने पर 'चर्चिल' ने 'सर स्ट्रेपर्ड क्रिप्स' को एक प्रस्ताव का मसौदा देकर दिल्ली भेजा। 'क्रिप्स' भारत में अठारह दिन रहे। वे गाँधी जी, जिन्ना, लिनलियागो, रवीन्द्रनाथ, अम्बेडकर, मौलाना आजाद और नेहरू से मिले। पर उन्हें अपने मिशन में सफलता नहीं मिली। क्रिप्स वापस लौट गए। उन्होंने अपनी असफलता के लिए गाँधी जी को दोषी ठहराया। गाँधी जी ने 'क्रिप्स' के प्रस्ताव को ''दिवाला निकालती बैंक के नाम बाद की तारीख का चेक (पोस्टडेटेड चैन ऑन ए क्रैशिंग बैंक) कहा।[33]

अक्टूबर 1940 को ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करने का निर्णय कर लिया। मई में उन्होंने ब्रिटिश सरकार को भारत छोड़ने का आग्रह किया। 8 अगस्त, 1942 को गांधी जी ने बम्बई में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का श्रीगणेश किया। अहिंसक संग्राम छेड़ने के लिए इससे अधिक प्रतिकूल परिस्थिति कभी भारत में उत्पन्न न हुई थी। बहुत लोगों ने इसे पागलपन भी कहा लेकिन गाँधी अपने दृढ़ निश्चय से पीछे न हटे। उन्होंने कहा – ''सारी दुनिया के राष्ट्र मेरा विरोध करें और सारा भारत मुझे समझाये कि मैं गलती पर हूँ, तो भी मैं भारत के खातिर ही नहीं परन्तु सारे संसार के खातिर भी इस दिशा में आगे बढ़ूँगा।''[34]

इसी समय गाँधी जी ने 'करो या मरो' (Do or Die) का नारा दिया। 19 अगस्त, 1942 की सुबह ही गाँधी जी और कांग्रेस के प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी के बाद देश भर में आग लग गई। जिन्ना ने स्थिति का फायदा उठाते हुए राष्ट्र विभाजन की आग सुलगा दी और परिणामस्वरूप सारे राष्ट्र में साम्प्रदायिकता की आग फैल गई। नोआखाली, कलकत्ता, दिल्ली, तारापुर आदि स्थानों पर भयंकर दंगे हुए। गाँधी जी ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर इन दंगों को शान्त कराया। साम्प्रदायिक एकता के लिए उपवास किए । भीषण साम्प्रदायिकता से

त्रस्त इलाकों का दौरा किया और हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव स्थापित करने में कामयाब रहे। जिन्ना की हठधर्मिता के बावजूद साम्प्रादायिक समस्या का स्थायी हल नहीं निकाला जा सका। सन् 1946 को केबिनेट मिशन योजना के अनुसार भारत का नया संविधान बना और गाँधी जी के विरोध के बावजूद भारत का विभाजन हुआ। पूर्ण स्वराज्य का जो सपना सन् 1920 में देखा था वह 15 अगस्त, 1947 को पूर्ण हुआ। भारतीय जनता ने उन्हें 'राष्ट्रपिता' का प्यारा नाम दिया।[35] स्वतंत्र भारत में अपने राजनीतिक लाभ का कोई भी पद उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी अपनी सलाह और प्रेरणा, वे देशवासियों को देते रहे। उन्होंने अपना ध्यान नई कार्य-पद्धति खोजने की ओर लगाया। अब समय आ पहुँचा था, जबकि तीस वर्ष से अधिक समय तक भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई का संचालन करके जो अनुभव और प्रतिष्ठा उन्होंने प्राप्त की थी, उसी के बल पर वे अपना कार्य-क्षेत्र बढ़ायें। पहले से भी अधिक- अशुभ वातावरण तथा विरोधी परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण कार्यों का बीड़ा उठायें तथा इस तरह यह सिद्ध करें कि सर्वथा प्रतिकूल परिस्थितयों में भी 'अहिंसा' अपना चमत्कार दिखा सकती है।

1. क vii महाप्रयाण :

स्वतंत्र भारत में गाँधी जी नवीन कार्य योजनाओं को परिणत करने के साथ-साथ भगवान के नाम को सहारा मान, दीन-दुखियों की सेवा में लगे हुए थे। तभी साम्प्रदायिक वैमनस्य के विषैले प्रभाव में आकर 'नाथूराम गोडसे' नामक एक मराठी युवक ने 30 जनवरी, 1948 को शाम 5 बजकर 17 मिनट पर मानवता की सतत् सेवा करने वाले महामानव की प्रार्थना सभा में गोली मारकर हत्या कर दी। अपने अन्तिम शब्द 'हे राम' के साथ ही ज्योति पुँज हमेशा के लिए लीन हो गई। सम्पूर्ण देश में शोक की लहर छा गई। तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने 'ऑल इण्डिया रेडियों' दिल्ली से दिए गए भाषण में कहा –

"वह रोशनी कभी खत्म नहीं होगी जो उन्होंने देश में और दुनिया पर डाली। आज से हजार वर्ष बाद भी वह रोशनी चमकेगी । इस देश और दुनिया को भी चमकाएगी। आज से हजार वर्ष बाद भी वे याद किए जायेंगे कि एक जमाना था जब एक इंसान इतने ऊँचे दर्जे पर पहुँचा और उसने इस मुल्क को सही रास्ता दिखाया।"[36]

इसी संदर्भ में डॉ. रमेश चन्द्र शर्मा ने लिखा – "विश्व की महानतम विभूति अस्त हो गई, एक गरिमा चली गई। हमारे जीवन को उषा और आलोक देने वाला सूरज डूब गया।"[37] 125 वर्ष तक जीने की इच्छा रखने वाले बापू ने 78 वर्ष की आयु में ही निर्वाण प्राप्त कर लिया। उनकी मृत्यु पर प्रकाश डालते हुए डॉ. बी. आर. नंदा ने उनकी जीवनी में लिखा है – "इसे भाग्य की विडम्बना ही कहेंगे कि अहिंसा के पुजारी की ऐसी हिंसक मृत्यु हुई। लगा जैसे घृणा की अंध शक्तियाँ जीत गईं, लेकिन वह केवल क्षणिक विजय थी। गाँधी जी के हृदय को भेदने वाली उन गोलियों ने करोड़ों के हृदय भेद दिए। 31 जनवरी, 1948 की शाम को यमुना के किनारे जिन ज्वालाओं ने गाँधी जी के भौतिक शरीर को भस्मीभूत किया, वे भारत में और पाकिस्तान में अगस्त 1946 से धधक रही साम्प्रदायिक वैमनस्य की सत्यानाशी आग की अन्तिम ज्वालाएँ थीं। जब तक जिये गाँधी जी उस आग से बराबर लड़ते रहे। अन्त में उनकी मृत्यु से ही वह आग शान्त हुई।"[38]

इस विषय में यशपाल जैन ने लिखा है – "जो हुआ, उसने भारत को ही नहीं समूचे संसार को स्तब्ध कर दिया, करोड़ों नर-नारियों ने इस प्रकार शोक मनाया, मानो वह उनकी व्यक्तिगत क्षति हुई हो। यह स्वभाविक था। अपने हृदय की विशालता और प्रेम के कारण वह सबके बापू बन गये थे। उनके निधन पर जितनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गईं उतनी विश्व के इतिहास में शायद ही किसी के निधन पर की गई हों। गाँधी जी की भौतिक कथा का अन्त हो गया पर मानवता के इतिहास में इनका नाम सदा-सर्वदा के लिए अमर हो गया।"[39] वास्तव में यह सही है क्योंकि गाँधी जी के असामयिक निधन पर भारत के अधिकारियों को

विदेशों से 3441 संदेश प्राप्त हुए। अमेरीका के राज्य सचिव 'जनरल जार्ज मार्शल' ने कहा— "महात्मा गाँधी सारी मानव जाति की अन्तरात्मा के प्रवक्ता थे।"[40]

पोप दलाईलामा, आर्क विशप, इंग्लैण्ड के बादशाह, राष्ट्रपति ट्रमेन चांगशाई शैक, फ्राँस के समाजवादी आदि लगभग सभी देशों के राजनीतिक नेताओं ने गाँधी जी की मृत्यु पर शोक व्यक्त किया। फ्राँस के समाजवादी नेता 'कियोब्लम' ने लिखा है – "मैंने गाँधी को कभी नहीं देखा, मैं उसकी भाषा नहीं जानता फिर भी मुझे ऐसा महसूस हो रहा है, मानो मैंने कोई अपना और प्यारा खो दिया हो। उस असाधरण मनुष्य की मृत्यु से सारा संसार शोक में डूबा हुआ है।"[41] प्रो. एल्बर्ट आइन्सटाईन ने कहा था – "गाँधी ने सिद्ध कर दिया है कि केवल प्रचलित राजनीतिक चालबाजियों और धोखाधड़ियों की मक्कारी भरे, खेल से ही नहीं बल्कि जीवन के नैतिकता पूर्ण श्रेष्ठतम आचरण के प्रबल उदाहरण द्वारा भी मनुष्यों का बलशाली अनुगामी दल बनाया जा सकता है।"[42]

संयुक्त राष्ट्र संघ की 'सुरक्षा परिषद' ने अपनी बैठक की कार्यवाही रोक दी और दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित की। ब्रिटेन के प्रतिनिधि 'फिलिप नोएलबेकर' ने गाँधी जी को "सबसे गरीब, सबसे अलग और पथभ्रष्ट लोगों का हित चिन्तक बताया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपना झंडा झुका दिया। डॉ. स्टेलेजोन्स के विचार इन शब्दों में प्रकट हुए – "हत्यारे की गोलियाँ महात्मा गाँधी और उनके विचारों का अन्त करने के लिए चलाई गई किन्तु, उनका फल यह हुआ कि वे विचार स्वच्छन्द हो गए और मानव जाति की थाती बन गए। हत्यारे ने गाँधी की हत्या करके उन्हें अमर बना दिया। मृत्यु में वे अपने जीवन की अपेक्षा अधिक बलशाली हो गए।"[43] उपन्यास लेखिका पर्लबक ने लिखा है – "यह तो दूसरा ईसा क्रॉस पर चढ़ा दिया गया।"[44] जापान में मित्र राष्ट्रों के सेनापति 'जनरल डगलस मेकार्चर' ने लिखा है— "सभ्यता के विकास में यदि उसे जीवित रहना है तो सब लोगों को गाँधी का यह विश्वास

अपनाना ही होगा कि विवादास्पद मुद्दों के हल में बल के सामूहिक प्रयोग की प्रक्रिया बुनियादी तौर पर न केवल गलत है बल्कि उसी के भीतर आत्म विनाश के बीज विद्यमान है।''[45] सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने लिखा है – ''मैं किसी काल के और वास्तव में आधुनिक इतिहास के ऐसे किसी दूसरे मनुष्य को नहीं जानता जिसने भौतिक वस्तुओं पर आत्मा की शक्ति को इतने जोरदार और विश्वासपूर्ण तरीके से सिद्ध किया हो।''[46] गाँधी जी की सर्वश्रेष्ठ जीवनी लिखने वाले 'लुईस फिशर' ने उस दिन के बारे में लिखा है कि – ''दुनिया भर के करोड़ों लोगों ने गाँधी जी की मृत्यु को व्यक्तिगत क्षति मानकर उसका शोक मनाया।''[47] गाँधी जी की मृत्यु पर यह संसार व्यापी अभिव्यक्ति सिद्ध करती है कि उनके पार्थिव शरीर के अवशेष भले ही राजघाट में सुरक्षित है। लेकिन उनकी आत्मा हिमालय की तरह अजर-अमर है।

1. ख महात्मा गाँधी का कृतित्व :

महात्मा गाँधी ने भारतीय संस्कृति में इतनी अधिक दिशाओं में प्रकाश डाला है कि उनके सम्यक् मूल्य निर्धारित करना अभी किसी के लिए संभव नहीं दिखता। खान-पान, रहन-सहन, भाव-विचार, भाषा और शैली, परिच्छेद और परिधान, काव्य और चित्रकारी, दर्शन और सामाजिक व्यवहार एवं धर्म-कर्म, राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता, भारत में आज जो भी आचार या विचार प्रचलित है, उनमें से प्रत्येक पर कहीं न कहीं गाँधी जी की छाप है। यहाँ तक की उनके आलोचकों एवं विरोधियों में भी ऐसे अनेक लोग हैं, जिनकी पोशाक नहीं, तो खान-पान में, विचार नहीं तो सामाजिक आचार में महात्मा गाँधी का प्रभाव मौजूद है। आज का भारत गाँधी का भारत है और गाँधी नाम आज के भारत का पूरा पर्याय है, इसमें कोई संदेह नहीं।''[48] आत्माभिमुख गाँधी ने कई दृष्टियों से भारतीय परम्परा को आगे बढ़ाया है। वे सन्त, महात्मा, राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक ही नहीं ऋषि परंपरा के महामानव भी थे। उनका रास्ता आध्यात्मवादी था। विश्व के किसी भी ऐतिहासिक या पौराणिक महापुरुष ने हर समस्या के लिए जीवन के हर क्षेत्र में आध्यात्मिकता का इतने व्यापक स्तर प, इतनी सफलता के

साथ प्रयोग नहीं किया, जितना महात्मा गाँधी ने। उन्होंने मानव जीवन को विभिन्न खण्डों में नहीं वरन् अखण्ड पूर्ण या सुसम्बद्ध रूप में देखा।

गाँधी एक सफल साहित्यकार एवं पत्रकार भी थे। उन्होंने अंग्रेजी तथा गुजराती में कई ग्रंथों का प्रणयन किया है। हिन्दी में भी उन्होंने अपनी लेखनी चलाई। उनकी हिन्दी रचनाओं का संकलन है – ''गाँधी जी की हिन्दी कलम से'' इसका सम्पादन काका कालेलकर ने किया है। पत्रकार के रूप में इन्होंने कई पत्रों का सम्पादन किया है तथा गुजराती भाषा के कोश निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। वास्तविक अर्थ में भाषाविद् एवं साहित्य सर्जक न होते हुए भी उन्होंने भाषा एवं साहित्य-निर्माण में जो योगदान दिया है, वह अविस्मरणीय है। गाँधी जी ने कला की भाँति साहित्य में भी अन्तर के विकास का आविर्भाव माना है। इस विषय में उनका मानना था कि हमारी अन्तस्थ सुप्त भावनाओं को जागृत करने का सामर्थ्य जिसमें होता है, वह कवि है।''[49] गाँधी का प्रभाव गुजराती साहित्य पर इतना व्यापक है कि गुजराती साहित्य के आधुनिक युग को 'गाँधी-युग' का साहित्य नाम दिया गया है। जिस प्रकार गाँधी जी ने 'गुजराती' भाषा एवं साहित्य को प्रभावित किया है, उसी प्रकार उनके भाषा तथा साहित्य सम्बंधी विचारों ने हिन्दी भाषा एवं साहित्य को भी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित किया है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है – गाँधी जी स्वयं हिन्दीतर भाषी थे। उन्होंने हिन्दी सीखी और धीरे-धीरे हिन्दी भाषी लोगों से हिन्दी में पत्र व्यवहार आरम्भ किया। फिर सार्वजनिक सभाओं और कांग्रेस की परिषदों में भी वे हिन्दी के महत्त्व पर जोर देते थे। उन्होंने 'यंग इण्डिया' के बाद 'हरिजन' नामक साप्ताहिक प्रकाशित करना आरम्भ किया था। गाँधी जी के कारण अनेक व्यक्तियों ने हिन्दी सिखी। उनकी संकलित रचनाओं की संख्या बहुत बड़ी है किन्तु उनकी सबसे बड़ी देन यह थी कि उन्होंने राजनीति, शिक्षा और समाज को हिन्दी के अनुकूल बनाया और हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा' के उच्च पद पर आसीन किया। जब वे दुबारा अखिल भारतीय सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन के सभापति बने तब

उन्होंने कहा – ''हिन्दी को हम 'राष्ट्रभाषा' मानते हैं। वह राष्ट्र भाषा होने के लायक है। वही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है, जिसे अधिक संख्य लोग जानते-बोलते हों और जो बोलने में सुगम हो। ऐसी भाषा हिन्दी ही है .... अन्य प्रान्तों ने भी स्वीकार कर लिया है। गाँधी जी ने इस विचार का भारतीय राजनीति तथा राष्ट्रीयता की नवीन परिभाषा के द्वारा व्यापक प्रचार किया।''[50]

गाँधी जी की दृष्टि में जीवन सूर्य के समान है और कला, साहित्य, विज्ञान आदि उस सूर्य की अलग-अलग रंगीन किरणें हैं। गाँधी जी उच्च कोटि के साहित्यकार थे। उन्होंने साहित्य किस प्रकार का हो, इस सम्बंध में कुछ कहा नहीं स्वयं लिखकर उसे प्रकट किया। उन्होंने मध्ययुग के संतों की भाँति अपनी प्रान्तीय भाषा गुजराती को सरल बनाया और उसे जनसाधारण की समझ के अनुरुप, रूप प्रदान किया। उनकी दृष्टि में सच्चा साहित्य समाजलक्षी होता है । जिस प्रकार कला में उपयोगिता की प्रधानता है उसी प्रकार साहित्य की कसौटी ने भी उसी सिद्धांत को माना है। किस प्रकार का साहित्य शाश्वत रह सकता है उस सम्बंध में वे कहते हैं – ''वही काव्य और वही साहित्य चिरजीवी रहेगा, जिसे लोग सुगमता से पा सकेंगे, जिसे वे आसानी से पचा सकेंगे।''[51] कवि के विषय में उन्होंने लिखा है – ''हमारी अंतस्थ सुप्त भावनाएँ जागृत करने का सामर्थ्य जिसमें होता है, वह कवि है।''[52] ''कवि ग्रंथ की रचना करता है, उसके सब अर्थों की कल्पना नहीं कर लेता है। काव्य की यही खूबी है कि वह कवि से भी बढ़ जाता है। जिस सत्य का वह तन्मयता से उच्चारण करता है, वही सत्य उसके जीवन में अवसर नहीं पाता।''[53] डॉ. शिव गोविन्द द्विवेदी के अनुसार – ''निज का विकास करके, स्वार्थ को विस्तृत करके, जब साहित्यकार साहित्य में प्रवेश करता है, तब वह दानवत्व का क्षर करता हुआ, देवत्व की ओर अग्रसर होता है। इन क्षणों की ही अनुभूतियाँ जिस साहित्य को जन्म देती हैं, वही साहित्य 'शिवम्' से ओत-प्रोत रहता है।''[54] गाँधी जी की भी ऐसी ही मान्यता थी । साहित्य में सौन्दर्य को मानते हुए गाँधी जी आत्मिक

सौन्दर्य पर बल देते थे, वे कहते कि सत्य के उद्घाटन से जिस आत्मिक सौंदर्य का प्रयोग होता है, नैतिक होने से वह शिव भी होता है। अतः गाँधी जी साहित्य में सच्चे ज्ञान, सच्चे कर्म तथा सच्ची भक्ति की प्राण-प्रतिष्ठा 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम् द्वारा चाहते थे।''[55]

गाँधी जी ने जनता की हीन वृत्तियों को उत्तेजित करने वाले अश्लील साहित्य एवं कला को किसी भी प्रकार से साहित्य एवं कला नहीं माना।''[56] इस सम्बंध में गाँधी जी स्वयं कहते हैं – ''कोई देश और भाषा गंदे साहित्य से मुक्त नहीं है। जब तक स्वार्थी और व्याभिचारी लोग दुनिया में रहेंगे, तब तक गंदा साहित्य प्रकट करने वाले और पढ़ने वाले भी रहेंगे। लेकिन जब ऐसे साहित्य का प्रचार प्रतिष्ठित माने जाने वाले अखबारों द्वारा होता है, और उसका प्रचार कला या सेवा के नाम पर किया जाता है, तब वह भयंकर स्वरूप धारण करता है।''[57] गाँधी जी चाहते थे, भारत के प्रत्येक प्रान्त में अपनी मातृभाषा में संस्कारपूर्ण उत्तम साहित्य का सर्जन हो। वे साहित्य में नवीन प्रयोगों के पक्षधर थे। शर्त इतनी ही थी कि यह साहित्य मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने में सफल होना चाहिए। साहित्य सुरुचिपूर्ण एवं सुन्दर होना चाहिए। भाषा सरल और शैली स्पष्ट होनी चाहिए। संक्षेप में, गाँधी जी साहित्य में, कलाकार को कला पूर्ण रचना को महत्त्व देते हैं, फोटोग्राफर के चित्र को नहीं।

गाँधी जी ने जो कहा वह हिन्दी का बहुमूल्य साहित्य है। उनके लिखित साहित्य को तीन भागों में रखा गया है – ''(1) पत्र-पत्रिकाओं में उनकी सम्पादकीय तथा अन्य लेख (2) उनके पत्र तथा रचनाएँ (3) उनका प्रवचन साहित्य।''[58] गाँधी जी द्वारा लिखी पुस्तकें, लेख, नवजीवन, यंग इण्डिया और हरिजन में निकली, उनकी विचार धारा से भाषा पर, उनके जबरदस्त अधिकार का पता चलता है। वे न कवि थे, न कथाकार और न नाटककार, फिर भी उनकी साहित्य सेवा अमूल्य है। वास्तव में बापू नये मूल्य, नयी शब्दावली, नयी भाषा एवं नयी दृष्टि लेकर आए। उनकी सूक्ष्म दृष्टि में गाँव नक्शे पर अंकित बिन्दु मात्र नहीं थे बल्कि,

जीवित प्राणपुँज थे। उनके आगमन से जीवन एवं साहित्य में एक नये युग का आरंभ हुआ। उनकी लेखनी के प्रभाव से भाषा एवं शैली में नयापन प्रस्फुटित हुआ। यह उनकी विचारधारा का ही परिणाम था कि जनता अपने लेखकों में नया, औजस्वी जानदार तथा समस्याओं को समाधान प्रस्तुत करने वाला साहित्य माँगने लगी थी।

गाँधी जी ने बहुत कुछ लिखा, लेकिन पुस्तकाकार में प्राप्त पुस्तकों में प्रमुख हैं– सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास, मंगल प्रभात, सर्वोदय, हिन्दी स्वराज्य आदि। उन्होंने इन ग्रंथों का प्रणयन चाहे किसी भी भाषा में किया हो, आज हमें ये हिन्दी भाषा में सहज उपलब्ध हैं।

1. ख i सत्य के प्रयोग :

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा महात्मा गाँधी द्वारा अपनी 'आत्मकथा' के रूप में गुजराती भाषा में लिखी गयी थी। 'आत्मकथा' का लेखन लगातार न होकर रूक-रूक कर हुआ था। अनेक व्यक्तियों की विनती के फलस्वरूप महात्मा गांधी ने 'आत्मकथा' लिखने का निर्णय लिया था। लेकिन जब उन्हें बोध कराया गया कि 'आत्मकथा' लिखने का प्रचलन तो पश्चिम का प्रचलन है, तब उन्होंने यह निश्चय किया कि मैं आत्मकथा न लिखकर जीवन में प्रयोग किए गए सत्य का उद्घाटन करूँगा। इसलिए पुस्तक का नाम 'सत्य का प्रयोग' रखा गया। इसमें उनकी 'आत्मकथा' तो है ही, जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों का भी वर्णन है। इस पुस्तक को अंग्रेजी में भी लिखा गया था। बाद में देश की विभिन्न भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ। "मूल गुजराती 'आत्मकथा' का हिन्दी अनुवाद 'श्री काशीनाथ त्रिवेदी' ने किया है, जिन्हें साबरमती आश्रम में कुछ समय तक गाँधी जी की छाया में रहने का मौका मिला था और जो गाँधी जी के जीवन-काल में वर्षो तक 'हिन्दी नवजीवन' तथा 'हरिजन सेवक' के हिन्दी सम्पादन का कार्य कर चुके हैं। अनुवाद को अधिक से अधिक प्रमाणिक बनाने का तथा उसकी भाषा को भरसक सरल और सुबोध रखने का ध्यान रखा गया है।"[59]

इस पुस्तक में विषय का प्रतिपादन पाँच भागों में किया गया है। प्रथम भाग में जन्म, पालन-पोषण, विवाह तथा विलायत में शिण आदि शीर्षकों सहित पच्चीस शीर्षक हैं। खाने-पीने पर किए गए प्रयोग पर भी प्रकाश डाला गया है। जैसे-जैसे मैं जीवन की गहराई में उतरता गया वैसे-वैसे हमें बाहर और भीतर के आचरण में फेरफार करने की जरूरत मालूम होती गई। जिस गति से रहन-सहन और खर्च में फेरफार हुए, उसी गति से अथवा उससे भी अधिक वेग से मैंने खुराक में फेरफार करना शुरू किया। .... घर से मिठाई-मसाले वगैरा जो मँगाए थे सो लेने बंद कर दिए और मन ने दूसरा मोड़ पकड़ा। इस प्रकार मसालों का प्रेम कम हो गया, और जो सब्जी मसाले के अभाव में बेस्वाद मालूम होती थी, वह अब सिर्फ उबाली हुई स्वादिष्ट लगने लगी। ऐसे अनेक अनुभवों से मैंने सीखा कि स्वाद का सच्चा स्थान जीभ नहीं पर मन है।''[60]

द्वितीय भाग में विलयात से बैरिस्टर बनकर भारत लौटने से लेकर, दक्षिण अफ्रीका जाने, वहाँ रहने, इण्डियन कांग्रेस की स्थापना, पुनः भारत वापसी एवं बम्बई तथा पूना में सभा सहित कुल 29 शीर्षक हैं। इस भाग में अधिकतर दक्षिण अफ्रीका की ही चर्चा की गई है। वहाँ रहने वाले भारतीयों पर खुलकर अपनी लेखनी चलाई – ''आरेन्ज फ्री स्टेट में तो एक कानून बनाकर सन् 1888 में या उससे पहले हिन्दुस्तानियों के सब हक छीन लिए गए थे। वहाँ हिन्दुस्तानियों के लिए सिर्फ होटल वेटर के रूप में काम करने या ऐसी कोई दूसरी मजदूरी करने की ही गुंजाइश रह गई थी।''[61]

तीसरे भाग में कभी दक्षिण अफ्रीका तो सभी भारत गोखले के साथ बिताया गया समय आदि के साथ 23 शीर्षक हैं। चौथे भाग में सबसे अधिक शीर्षक हैं। इस भाग में दक्षिण अफ्रीका में बिताए गए समय एवं कार्यों का वर्णन है। पाँचवे भाग में 43 शीर्षक हैं। दक्षिण अफ्रीका से लौटकर उन्होंने भारत में क्या-क्या किया, किस प्रकार विभिन्न आन्दोलन में भाग लिया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का जन्म, लेखन आदि है । सत्य, अहिंसा, खादी, चरखा आदि

पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है। अन्तिम शीर्षक पूर्णाहुति के नाम से है। उसे इस ग्रंथ का उपसंहार भी माना जा सकता है। उसमें उन्होंने सत्य की महिमा का भी वर्णन किया है। ''व्यापक सत्य नारायण के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए जीव मात्र के प्रति आत्मवत प्रेम की परम आवश्यकता है और जो मनुष्य ऐसा करना चाहता है, वह जीवन के किसी क्षेत्र से बाहर नहीं रह सकता। यही कारण है कि सत्य की मेरी पूजा मुझे राजनीति में खींच लाई है।''[62] अन्त में सत्य के प्रयोग पर कहते हैं– सत्य के प्रयोग करते हुए, मैंने आनंद लूटा है और आज भी लूट रहा हूँ ।[63]

1. ख ii दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास :

गाँधी जी द्वारा लिखित पुस्तिकों में 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। इसे भी गाँधी जी की 'आत्मकथा' का एक अंश माना जा सकता है। ''यह इतिहास उन्होंने आत्मकथा की तरह 'मूल गुजराती' में ही लिखा था। इस ग्रंथ का केवल इतना ही महत्त्व नहीं है । इसमें गाँधी जी के चरित्र-निर्माण के सबसे महत्त्वपूर्ण समय तथा सत्याग्रह की, उनकी शोध के समय का इतिहास भी स्वयं उन्हीं की लेखनी से लिखा हुआ मिलता है। जब कभी गाँधी जी के जीवन में अपनी आत्मा की गहराई में उतरकर, सोचने समझने का अवसर आता था, तब वे अक्सर दक्षिण अफ्रीका के अपने जीवन काल की बातों और वहाँ के अनुभवों का स्मरण करते थे।''[64] सर्वप्रथम यह पुस्तक 'साप्ताहिक माला' के रूप से 'नवजीवन' में प्रकाशित हुई थी। 'मूल गुजराती' से इस पुस्तक का सर्वप्रथम अंग्रेजी में अनुवाद 'वालवजी भाई देसाई' ने किया था। हिन्दी अनुवाद 'सोमेश्वर पुरोहित' द्वारा किया गया। सर्वप्रथम सन् 1968 में, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद ने इसे प्रकाशित किया।

यह पुस्तक गाँधी जी ने क्यों लिखी, इस सम्बंध में गाँधी जी स्वयं लिखते हैं — ''दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों की सत्याग्रह की लड़ाई आठ वर्ष तक चली। 'सत्याग्रह' शब्द का शोध उसी लड़ाई के सिलसिले में हुआ और उसी लड़ाई के लिए इस शब्द का

प्रयोग किया गया था। बहुत समय से मेरी यह इच्छा थी कि इस, लड़ाई का इतिहास मैं अपने हाथ से लिखूँ। उसकी कुछ बातें तो केवल मैं ही लिख सकता हूँ। कौन सी बात किस हेतु से की गई थी, यह तो उस लडाई का संचालन करने वाला ही जान सकता है और राजनीतिक क्षेत्र में यह प्रयोग बड़े पैमाने पर दक्षिण अफ्रीका में पहला ही हुआ था, इसलिए उस 'सत्याग्रह' के सिद्धांत के विकास के बारे में लोग जाने यह किसी भी समय आवश्यक माना जाएगा।''[65]

इस पुस्तक में दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में 24 शीर्षकों में इतिहास दर्शित है। द्वितीय खण्ड में 26 शीर्षक हैं। गाँधी जी ने अंत में उपसंहार लिखा है। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए उन्होंने जो कुछ भी किया इससे वे सन्तुष्ट हैं। वे कहते हैं – यदि सत्याग्रह की, यह महान लड़ाई न लड़ी गई होती और अनेक हिन्दुस्तानियों ने जो बड़े-बड़े दुःख सहन किए वे न किए, होते तो, आज दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों का नाम निशान न रह जाता। इतना ही नहीं, दक्षिण अफ्रीका में जो विजय मिली, उसकी वजह से ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे उपनिवेशों में बसे हुए हिन्दुस्तानी भी कम या ज्यादा मात्रा में बच गए।''[66] उन्होंने इस सत्याग्रह को अमूल्य शस्त्र कहा, जिसमें निराशा या पराजय का कोई स्थान नहीं है। अतः उनका दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह अति सार्थक है, उसी की परिणति यह पुस्तक है।

1. ख iii मंगल प्रभात :

गाँधी जी द्वारा रचित जीवन-शोधन सम्बंधी पुस्तकों में 'मंगल प्रभात' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानव अपने जीवन को कैसे सार्थक करे ? वह स्वच्छ एवं उच्च कैसे बने आदि नीति-निर्धारक नियमों का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। गाँधी जी का मानना है, जब व्यक्ति-व्यक्ति सदाचारी बनेगा तभी देश उन्नति कर सकता है। ''अधिकांश लोग समाज, राष्ट्र और विश्व के उत्कर्ष की बात सोचते हैं, लेकिन वे प्रायः भूल जाते हैं कि किसी भी समुदाय की भले ही, वह समाज हो या राष्ट्र अथवा 'विश्व' आधार मूलक इकाई व्यक्ति होता है और

जब तक व्यक्ति का जीवन शुद्ध नहीं होगा, समष्टि का हि साधन कदापि नहीं हो सकता।''[67]

इस पुस्तक में सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय आदि सहित 15 नियमों का वर्णन है। सत्य गाँधी दर्शन की आधारशिला है, शायद इसलिए पुस्तकारम्भ सत्य से ही हुआ। इसे गाँधी जी ने 22 जुलाई, 1930 की प्रातःकाल की प्रार्थना के बाद लिखा था। सत्य के विषय में गाँधी जी लिखते हैं – ''सत्य शब्द 'सत्' से बना है। सत्य का अर्थ है – अस्ति सत्य अर्थात् अस्तित्व। सत्य के बिना दूसरी किसी चीज की हस्ती ही क्या है ? परमेश्वर का सच्चा नाम ही सत् अर्थात् सत्य है।''[68] गाँधी जी सत्य से इतने अभिभूत थे कि सत्य के लिए सर्वस्वार्पण करने को कहते हैं।

1. ख iv सर्वोदय :

महात्मा गाँधी ने अपने जीवन काल में अनगिनत पुस्तकों का अध्ययन किया। उनमें वर्णित विषयों पर उन्होंने चिंतन-मनन किया और उनकी शिक्षा को अपने जीवन में भी उतारा। अफ्रीका प्रवास के दौरान भी उन्होंने अध्ययन क्रम को नहीं तोड़ा। वहीं एक दिन जोहान्सबर्ग से नेटाल जाते समय उनके मित्र ने उन्हें यात्रा के दौरान पढ़ने के लिए 'रस्किन' की प्रसिद्ध पुस्तक 'अन्टु दि लास्ट' दी। चौबीस घंटे की यात्रा में पढ़ी गई इस पुस्तक का इतना व्यापक प्रभाव गाँधी पर पड़ा कि उसका सार 'सर्वोदय' के रूप में सामने आया। ''वास्तव में यह पुस्तक अत्यन्त मूल्यवान है, कारण कि इसमें उन नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन किया गया है, जिनके आधार पर गाँधी जी राम-राज्य की स्थापना करना चाहते थे।''[69]

गाँधी जी ने 'सर्वोदय' क्यों लिखी ? इस सम्बंध में वे स्वयं प्रस्तावना में लिखते हैं– दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की अवस्था बहुत ही करुणाजनक थी। हम धन के लिए विदेश जाते हैं। उसकी धुन में नीति को, ईश्वर को भूल जाते हैं। स्वार्थ में सन जाते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि हमें विदेश में रहने के बदले उलटे बहुत हानि होती है अथवा विदेश यात्रा का पूरा-पूरा लाभ नहीं मिलता । सभी धर्मों में नीति का अंश तो रहता ही है, पर

साधारण बुद्धि से देखा जाए तो नीति का पालन आवश्यक है। जॉन रस्किन ने सिद्ध किया है कि सुख इसी में है। उन्होंने पश्चिम वालों की आँखे खोल दी हैं और आज यूरोप तथा अमेरीका के भी कितने ही लोग उनकी शिक्षा के अनुसार चलते हैं। भारतीय जनता भी उनके विचारों से लाभ उठा सके, इस उद्देश्य से हमने उक्त पुस्तक का इस ढंग से सारांश देने का विचार किया है कि जिससे अंग्रेजी न जानने वाले भी उसे समझ ले।''[70] इसे 'सर्वोदय' नाम इसलिए दिया गया जिससे सबका कल्याण, उदय एवं उत्कर्ष हो।

'सर्वोदय' में सच्चाई की जड़, दौलत की नस, अदल इन्साफ, सत्य क्या है एवं सारांश पाँच शीर्षक हैं। 'सच्चाई की जड़' अन्यों की अपेक्षा एक दीर्घ पाठ है। इसमें व्यक्ति को सच्चाई की पहचान कराई गई है। कभी-कभी हम सच समझकर जो काम करते है, वह गलत भी हो सकता है, अनेक उदाहरणों द्वारा यह समझाने का प्रयत्न किया गया है। ''अर्थशास्त्री अनेक बार मान लेते हैं कि लोगों को तंगी में रखने से राष्ट्र का लाभ होता है। सब बराबर हों जाये, यह तो हो नहीं सकता, परन्तु अनुचित रूप से लोगों मे गरीबी पैदा करने से जनता दुःखी हो जाती है, उसका अपकार होता है।''[71]

1. ख v हिन्द स्वराज्य :

गाँधी जी की कृतियों में 'हिन्दी स्वराज्य' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस पुस्तक में संगृहित विचार सबसे पहले दक्षिण अफ्रीका से प्रकाशित साप्ताहिक पत्रिका 'इण्डियन ओपनीयन' में प्रकाशित हुई थी। गाँधी जी स्वयं लिखते हैं – अफ्रीका लौटते हुए जहाज पर हिन्दुस्तानियों के हिंसावादी पंथ को और उसी विचारधारा वाले दक्षिण अफ्रीका के एक वर्ग को दिए गए जवाब के रूप में यह लिखी गई थी। लंदन में रहने वाले हर एक नामी अराजकतावादी, हिन्दुस्तानी के सम्पर्क में आया था। उनकी शूर वीरता का असर मेरे मन पर पड़ा था, लेकिन मुझे लगा कि उनके जोश ने उलटी राह पकड़ ली है। मुझे लगा कि हिंसा हिन्दुस्तान के दुःखों का इलाज नहीं है और उसकी संस्कृति को देखते हुए, आत्म रक्षा के

लिए कोई अलग और उच्च प्रकार का शस्त्र काम में लाना चाहिए। दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह उस वक्त मुश्किल से दो साल का बच्चा था। लेकिन उसका विकास इतना हो चुका था कि उसके बारे में कुछ हद तक आत्म-विश्वास से लिखने की मैंने हिम्मत की थी। मेरी वह लेख माला पाठक वर्ग को इतनी पसंद आई कि किताब के रूप में प्रकाशित हो गई।''[72] यह मूल रूप में गुजराती में लिखी गई थी। इसे 'काका कालेलकर' ने 1 अगस्त 1959 में लिखा था। लंदन से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए गाँधी जी ने रास्ते में जो संवाद लिखा और 'हिन्द स्वराज्य' के नाम से छपाया उसे आज पचास बरस हो गये। गाँधी जी का कहना था कि भारत से केवल अंग्रेजों ओर उनके राज्य को हटाने से भारत को अपनी सच्ची सभ्यता का स्वराज्य नहीं मिलेगा। हम अंग्रेजों को हटा दें और उन्हीं की सभ्यता और उन्हीं को आदर्श को स्वीकार करें तो हमारा उद्धार नहीं होगा। हमें अपनी आत्मा को बचाना चाहिए।''[73]

'हिन्द स्वराज्य' का हिन्दी अनुवाद अमृतलाल नाणावटी ने किया है। इसमें बीस अध्याय हैं। एक-एक अध्याय में गहरा इतिहास छिपा हुआ है। प्रेम एवं सद्‌भावों से युक्त यह रचना सबके लिए है। गाँधी जी ने लिखा है – मेरी राय में यह किताब ऐसी है कि यह बालक के हाथ में भी दी जा सकती है। यह द्वेष धर्म की जगह प्रेम धर्म सिखाती है, हिंसा की जगह आत्म बलिदान को रखती है, पशु बल से टक्कर लेने के लिए आत्म बल को खड़ा करती है।''[74] भारत की सभ्यता के सम्बंध में गाँधी जी लिखते हैं – ''जो सभ्यता हिन्दुस्तान ने दिखाई है, उसको दुनिया में कोई नहीं पहुँचा सकता । जो बीज हमारे पुरखों ने बोये हैं, उनकी बराबरी कर सके, ऐसी कोई चीज देखने में नहीं आई। ग्रीस का सिर्फ नाम ही रह गया, मिश्र की बादशाही चली गयी, जापान पश्चिम के शिकंजे में फँस गया और चीन का कुछ भी कहा नहीं जा सकता। लेकिन गिरा टूटा जैसा भी हो हिन्दुस्तान आज भी अपनी बुनियाद में मजबूत है।''[75] स्वराज्य क्या है और हिन्दुस्तान कैसे आजाद हो ? इस विषय में वे लिखते हैं – ''इस स्वराज्य को आप अपने जैसा न माने । मन से मानकर बैठे रहने का भी यह

स्वराज्य नहीं है। यह तो ऐसा स्वराज्य है कि आपने अगर इसका स्वाद चख लिया हो तो दूसरों को इसका स्वाद चखने के लिए आप जिन्दगी भर कोशिश करेंगे।"[76]

शिक्षा, सत्याग्रह, आत्मबल, मशीन आदि पर भी गाँधी जी ने इस पुस्तक में लिखा है। उनका एक-एक प्रयोग और उपदेश प्रयोगात्मक है। विभिन्न परीक्षाओं की कसौटी में कसकर ही इसे सबके समझ प्रस्तुत किया गया है। यह गाँधी जी द्वारा भारत को दिया गया अनमोल रत्न (उपदेश) है, जिससे सभी लाभान्वित हो सकते हैं।

गाँधी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व में धार्मिक निष्ठा और भक्ति की पराकाष्ठा पाई जाती है । गाँधी जी के व्यक्तित्व में मुख्यतः आध्यात्मिक, मानवतावादी तथा बुद्धि तत्त्व का समन्वय है । उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व में अविभाज्य अंग के रूप में व्याप्त धर्म-भावना में एक ओर सामाजिक क्षेत्र में नयी चेतना उत्पन्न की है, तो दूसरी ओर राजनीतिक क्षेत्र में, पवित्रता की गंगा बहायी । धार्मिक क्षेत्र को विशाल दृष्टि दी है तो प्रशान क्षेत्र में हृदय शुद्धि का अमृत बहाया है। वे जहाँ गए, वहाँ धर्म की पताका फहराई। उनका जीवन धर्म एवं धर्म उनके जीवन के भीतर छिपा था । उनकी दृष्टि में राजनीति धर्म से हीन नहीं हो सकती। राजनीति को सदैव धर्म की अधीनता में रहना चाहिए ।

संदर्भ :

1. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ. 528
2. महात्मा गाँधी : एक जीवनी : बलराम नंदा, पृ. 1
3. महात्मा गाँधी : जीवन और दर्शन : अनु. प्रुफुल्ल चंद ओझा, पृ. 9
4. आत्मकथा : मोहनदास कर्मचन्द गाँधी, पृ. 5
5. सत्य के प्रयोग : मोहनदास कर्मचन्द गाँधी, पृ. 3
6. महात्मा गाँधी : एक जीवनी : बलराम नंदा, पृ. 4
7. संस्थाकुल / प्रभुदास,पृ. 15
8. महात्मा गाँधी - एक जीवनी : बलराम नंदा, पृ. 4
9. सत्य के प्रयोग : मोहनदास कर्मचन्द गाँधी, पृ. 4
10. महात्मा गाँधी : एक जीवनी : बलराम नंदा, पृ. 8
11. आत्मकथा : अनु. काशीनाथ त्रिवेदी, पृ. 22
12. महात्मा गाँधी : एक जीवनी : बलराम नंदा, पृ. 48
13. वही, पृ. 49
14. सम्पूर्ण गाँधी वाड्मय (भाग - 6) , पृ. 4
15. वही, पृ. 5
16. साबरमती का संत : यशपाल जैन, पृ. 18
17. सत्याग्रह मीमांसा, अक्टूबर, 1993
18. दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास : महात्मागाँधी, पृ. 271
19. महात्मा गाँधी : एक जीवनी : बलराम नंदा, पृ. 29
20. साबरमती का संत : यशपाल जैन, पृ. 28
21. गाँधी मार्ग : सं. मन्मथनाथ गुप्त, पृ. 12
22. प्रमुख राजनीतिक विचारक : पुखराज जैन, पृ. 46
23. कांग्रेस का इतिहास : पट्टाभिसीतारमैया, पृ. 115
24. साबरमती का संत : यशपाल जैन, पृ. 29
25. वही, पृ. 31
26. Gujrat and its literature : K. M. Mnshi, p. 306
27. राजाराम मोहन राय से गाँधी जी : मगन भाई देसाई, पृ. 39
28. कांग्रेस का इतिहास : डॉ. बी. पट्टाभिसीतारमैय्या, पृ. 378
29. वही, पृ. 390
30. बापू कथा : हरिभाऊ उपाध्याय, पृ. 99
31. मेरे बापू : ब्रजकृष्ण चाँदीवाला, पृ. 46
32. कांग्रेस का इतिहास : डॉ. बी. पट्टाभिसीतारमैय्या, पृ. 523

33. साबरमती का संत : यशपाल जैन, पृ. 42
34. महात्मा गाँधी : प्यारेलाल, पृ. 13
35. राजाराम मोहन राय से गाँधी जी : मगन भाई देसाई, पृ. 90
36. राष्ट्रपिता : जवाहरलाल नेहरू, पृ. 133
37. हिन्दी साहित्य में गाँधीवादी चेतना : डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा, पृ. 28
38. महात्मा गाँधी : एक जीवनी : बलराम नंदा, पृ. 523
39. साबरमती का संत : यशपाल जैन, पृ. 59
40. राजस्थान पत्रिका 29 जनवरी, 1995, पृ. 4
41. वही, पृ. 4
42. वही, पृ. 4
43. गाँधी मार्ग : सं. मन्मथनाथ गुप्ता, नवम्बर, 1984, पृ. 56
44. बापू कथा हरिभाऊ उपध्याय, पृ. 210
45. राजस्थान पत्रिका, जनवरी 1995, पृ. 4
46. वही, पृ. 4
47. वही, 13 अगस्त, 1994, पृ. 3
48. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ. 529
49. गाँधी जीवन दर्शन एवं साहित्य : डॉ. शिव गोविन्द द्विवेदी, पृ. 34
50. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 434
51. नवजीवन 21/11/1924, पृ. 120
52. आत्मकथा : मोहनदास कर्मचन्द गाँधी, पृ. 333 (1939)
53. हिन्दी नवजीवन, 15/10/1925, पृ. 69
54. गाँधी जीवन दर्शन एवं साहित्य : डॉ. शिव गोविन्द द्विवेदी, पृ. 35
55. वही, पृ. 54
56. गाँधी विचार दोहन : किशोरीलाल मशरूवाल, पृ. 184
57. हिन्दी नवजीवन : 6-3-1930, पृ. 228
58. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 434
59. सत्य के प्रयोग : मोहनदास कर्मचन्द गाँधी, पृ. 3
60. वही, पृ. 50
61. वही, पृ. 116
62. वही, पृ. 453
63. वही, पृ. 454
64. दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास : मोहनदास कर्मचन्द गाँधी, पृ. 3
65. वही, पृ. 7
66. वही, पृ. 376

67. मंगल प्रभात , पृ. 3
68. वही, पृ. 7
69. सर्वोदय, पृ. 3
70. वही, पृ. 5
71. वही, पृ. 22
72. हिन्द स्वराज्य : महात्मा गाँधी, पृ. 25
73. वही, पृ. 4
74. वही, पृ. 25
75. वही, पृ. 42
76. वही, पृ. 47

द्वितीय अध्याय
गाँधीवादी चेतना : स्वरूप विवेचन

द्वितीय अध्याय

गाँधीवादी चेतना : स्वरूप विवेचन

2. क गाँधीवादी चेतना की अवधारणा :

महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित जीवन-दर्शन या विचारधारा के लिए 'गाँधीवाद' शब्द अत्यन्त लोकप्रिय हुआ । इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग स्वयं गाँधी जी ने कराँची में 'इर्विन' समझौते के बाद, काँग्रेस अधिवेशन से पूर्व होने वाली एक सार्वजनिक सभा में करते हुए कहा था – "गाँधी मर सकता है लेकिन गाँधीवाद सदा जीवित रहेगा ।"[1] परन्तु गाँधी जी का अभिप्राय शास्त्रीय नियम से बद्ध, किसी संकीर्ण विचारधारा से नहीं था अपितु व्यापक रूप में सत्य और अहिंसा के दर्शन का प्रतिपादन ही मूलतः अभिप्रेत था, इसलिए मार्च 1936 में सावली में गाँधी सेवा सदन के सदस्यों के सामने भाषण देते हुए, गाँधी जी ने कहा था – "गाँधीवाद नाम की कोई चीज नहीं हैं, न ही अपने पीछे कोई ऐसा सम्प्रदाय छोड़ देना चाहता हूँ । मैं कदापि यह दावा नहीं करता कि मैंने किन्हीं नये सिद्धान्तों को जन्म दिया है, मैंने तो अपने निजी तरीके से शाश्वत सत्यों को अपने दैनिक जीवन और उसकी समस्याओं पर लागू करने का प्रयत्न मात्र किया है । मुझे दुनिया को, कोई चीज नहीं सिखानी है। सत्य और अहिंसा अनादि काल से चले आ रहे हैं । ऊपर मैंने जो कुछ कहा है, उसमें मेरा सारा तत्त्व ज्ञान है। मेरा दर्शन, जिसे आपने गाँधीवाद का नाम दिया है सत्य और अहिंसा में समा जाता है । आप इसे गाँधीवाद न कहिए, इसमें 'वाद' नाम की कोई वस्तु नहीं है ।"[2]

गाँधी जी का यह कथन इस बात की पुष्टि करता है कि, वे वाद के झगड़े से मुक्त रहना चाहते थे । सम्प्रदायवाद से भी उन्हें कोई मतलब नहीं था । वे कभी किसी के गुरु भी बनना नहीं चाहते थे । वे तो हमेशा कहते थे कि मैं स्वयं गुरु की खोज में हूँ । इतने स्पष्टीकरण के बाद भी गाँधी-दर्शन के मर्मज्ञों ने, गाँधी जी ने सिद्धान्त रूप में जिन विचारों

की अभिव्यक्ति दी है, उन्हीं को 'गाँधीवाद' का नाम दिया । गाँधीवाद शब्द मूलतः दो शब्दों से बना है – गाँधी एवं वाद । गाँधी का अर्थ स्पष्ट है और 'वाद' का अर्थ है – किसी तथ्य या तत्त्व के निर्णय के लिए होने वाला तर्क। लेकिन यहाँ वाद का अर्थ अपेक्षित नहीं है। वाद का अर्थ है – किसी बात का बौद्धिक निरूपण । इसलिए गाँधी विचार-पद्धति का नाम 'गाँधीवाद' है । गाँधी विचारधारा से तात्पर्य उन सभी सिद्धान्तों से है, जिनका गाँधी जी ने समर्थन एवं प्रयोग किया है ।

डॉ. बी. सीतापट्टाभिरमैय्या के अनुसार – "गाँधीवाद वस्तुतः भारत की उस विचार परक, आध्यात्मिक जीवन दृष्टि तथा सांस्कृतिक परम्परा का आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्धित एवं संशोधित संस्करण है, जो सहिष्णुता, अस्तेय, अपरिग्रह, आत्म संयम आदि नैतिक मूल्यों को, भौतिक जीवन - मूल्यों की अपेक्षा अधिक काम्य और वरेण्य मानती है।"[3]

गाँधीवाद की व्यापक व्याख्या करते हुए कमलापति त्रिपाठी ने लिखा है – "जिस जगत् व्यापिनी प्रवृत्ति और क्रिया का सक्रिय रूप भारत में व्यक्त हुआ, उसकी प्रतिक्रिया भी यहीं हो सकती है। यूरोप ने इस देश की समस्याओं और परिस्थितियों को जिस विकटता और उलझन में डाल दिया था, उसका प्रतिकार भी यही देश कर सकता था । जगत् की परिस्थिति यदि उपयुक्त समस्याओं के हल की माँग कर रही थी, तो भारत की दशा भी उसी माँग की अपेक्षा कर रही थी । गाँधी जी का उदयउ सी माँग का परिणाम है, जो सम्मुख हैं । उस परिस्थिति के गर्भ के जो स्वभावतः उपर्युक्त समस्याओं की विभीषिका से छुटकारा पाने की माँग कर रही थी । यही करण है कि परिस्थितियों के अनुकूल पथ और पद्धति लेकर, वे अवतरित हुए । वही पथ और पद्धति "गाँधीवाद" के नाम से जगत् के सामने उपस्थित है।"[4]

डॉ. सम्पूर्णानन्द के शब्दों में – "कोई भी गम्भीर सिद्धान्त हो, उसके अर्थ में अभिधार्थ से बढ़कर ध्वन्यार्थ और व्यंग्यार्थ में इतनी सूक्ष्मता होती है कि, उसे थोड़े शब्दों में

व्यक्त करना कठिन होता है । ''गाँधीवाद'' की सबसे बड़ी व्याख्या गाँधी जी का जीवन है।''[5] गाँधीवाद का अर्थ करते हुए रामनाथ सुमन ने लिखा है – ''गाँधीवाद का साधारण अर्थ व्यक्ति तथा समाज के हित का वह दर्शन एवं विज्ञान है, जिसके पुरस्कर्त्ता और प्रयोगकर्त्ता गाँधी जी हैं ।''[6] यह क्या है ? इस संबन्ध में वे कहते हैं – ''गाँधीवाद सत्य की साधना का विज्ञान है। उसकी समस्त प्रवृत्तियाँ, ब्रह्म में उसके दृढ़ विश्वास से उद्भूत हुई हैं । यह ब्रह्म सर्वद्रष्टा, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक है। जगत् उसी के कारण और उसी को लेकर है।''[7]

हिन्दी साहित्य कोश में गाँधीवाद की व्याख्या इस प्रकार की गई है – ''गाँधीवाद, महात्मा गाँधी (सन् 1869-1948) की विचार पद्धति का व्यापक नाम है । गाँधी जी के व्यक्तित्व के अनेक पक्ष थे । वे राजनेतायें, समाज सुधारक थे, अर्थवेत्ता थे, शिक्षाशास्त्री थे और धर्मोपदेशक भी थे । समाज और शासन के संघटन तथा जीवन के अन्य, अनेक पक्षों के बारे में उनके अपने विचार थे, जिसका प्रतिपादन उन्होंने अपने दैनिक साधना के मध्य से गुजरते हुए किया था । 'मार्क्सवाद' के समान कोई व्यवस्थित शास्त्रीय अध्ययन इसके पीछे नहीं है। इसी कारण उसमें किसी प्रकार की तर्क जन्य पद्धति का अभाव है । 'गाँधीवाद' का आधार तर्क नहीं, स्वानुभूति है। इस विचारधारा का प्रत्येक खण्ड आत्म-शक्ति को लेकर चलता है। इसी कारण उसमें एक प्रकार की आध्यात्मिकता और विचार स्वातन्त्र्य है ।''[8] इनके जीवन-दर्शन के लिए गाँधीवाद, गाँधीनीति, गाँधीय-मार्ग, गाँधी-पद्धति, गाँधी-दर्शन एवं सर्वोदय आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। लेकिन इनमें सर्वाधिक प्रचलित एवं सर्वमान्य शब्द 'गाँधीवाद' ही है ।

यह कोई नवीन दर्शन नहीं है, यह तो एक प्रकार से विचारों का संचय और संचित विचारों का कार्यान्वय है। इस 'वाद' अथवा 'विचारधारा' का संक्षिप्त अर्थ व्यक्ति तथा समाज के हित का वह दर्शन एवं विज्ञान है, जिसके प्रस्तोता एवं प्रयोगकर्ता गाँधी हैं । यह उनके जीवन का क्रियात्मक विज्ञान है, जो प्रतिक्षण, परीक्षण, परिष्करण, समन्वय और

साधना से पुष्ट है। यह मात्र राजनीति ही नहीं है । यह जीवन का स्वस्थ दृष्टिकोण है। इसका आधार तर्क नहीं, विश्वास और संस्कार है। जिसके स्रोत, वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, रामचरितमानस, जैन-बौद्ध ग्रंथ, मध्ययुगीन संतों की वाणियों के साथ बाइबल का पर्वत प्रवचन, टालस्टाय, जान रस्किन आदि की रचनाएँ हैं । गाँधीवाद की मूल चेतना में पूर्व एवं पश्चिम की संस्कृतियों का सुन्दरतम संगम है।

2. ख गाँधीवादी चेतना के मूल तत्त्व :

गाँधीवादी चेतना के मूल आधार दो तत्त्व हैं – सत्य और अहिंसा । सत्य ईश्वर का पर्याय है। वही जड़ और चेतन में सूक्ष्म एवं समग्र रूप में विद्यमान है । यही सत्य व्यष्टि और समष्टि की अन्तःचेतना है, आत्मा है । व्यक्तिगत रूप से सत्य और अहिंसा की साधना से मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। मानव जीवन का उद्देश्य सांसारिकता से मुक्ति पाकर आध्यात्मिक सुख को प्राप्त करना है । इसी उद्देश्य को दृष्टिगत कर 'गाँधीवादी चेतना' समाज की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक अव्यवस्था का संतुलित रूप तैयार करना चाहती है।

गाँधी जी का कार्यकाल (सन् 1915-1948) 30-35 वर्ष रहा । इस संक्षिप्त कालावधि में उन्होंने भारत में जो 'राम राज्य' की कल्पना की उसे मूर्त्त रूप देने के लिए एक विशेष पद्धति को अपनाया । ये पद्धतियाँ कभी-कभी तत्त्व के रूप में, कभी सिद्धान्तों के रूप में, तो कभी रचनात्मक सूत्रों के रूप में सामने आईं। गाँधी जी ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अहिंसा का मार्ग अपनाया । उससे पूर्व अहिंसा साधुओं की सम्पत्ति ही मानी जाती थी । गाँधी जी ने ही पहली बार राजनीति में इसका प्रवेश कराया । ''संसार की राजनीति में अहिंसा एक प्रमुख शक्ति बन गई । एक शक्तिशाली राष्ट्र के विरूद्ध इसके द्वारा युद्ध किया गया और युद्ध में जीत भी हुई । .... पुरानी खादी नये फैशन के रूप में सामने आई। अछूतोद्धार का प्रयास किया और राष्ट्र उनकी अद्‌भुत क्षमता को देखकर चकरा गया और भारत संसार के

लिए एक समस्या बन गया ।''[9] गाँधी जी के व्यापक प्रभाव को देखकर गाँधी विचारधारा के मर्मज्ञ इतिहासविद् डॉ. बी. पटाभिसीतारमैय्या ने लिखा है – ''गाँधी जी की शिक्षा से नशेबाज ने नशा छोड़ दिया । उनके आशीष से वैश्याग्रह की वैश्या लक्ष्मी बन गई । .... उनकी जिह्वा के एक अक्षर ने दलितों को उबार लिया । उनकी एक साँस ने नारी की जो घरेलू चल सम्पत्ति समझी जाती थी, समाज के विवेकमय और उत्तरदायी सदस्य के रूप में परिवर्तित कर दिया । वे ग्रामों में पुनर्जीवन चाहते थे, पर सभ्यता की आदिम अवस्था की ओर नहीं लौटना चाहते थे ।''[10]

गाँधी जी ने अज्ञानावस्था में सुप्त इस देश में ज्ञान के कोटिश : दीप प्रज्ज्वलित किए, जिनके आलोक में देश ने नई दिशाएँ देखीं । पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने भाषण में कहा था –''हिन्दुस्तान अपनी आजादी के लिए पीढ़ियों से जो लड़ाई लड़ता आया है, उसमें दु:ख भी उठाने पड़े और कामयाबी भी मिली । कितनी बार उसकी जीत हुई और कितनी ही बार उसे हार का सामना भी करना पड़ा । लेकिन राष्ट्रपिता बापू ने हमें जिस खूबी रास्ता दिखलाया, उससे वह दु:ख नहीं रह गया । उसने जनता को पवित्र और शुद्ध किया और हर हार उत्साह के साथ काम करने की प्रेरणा और जीत में बदल गई ।''[11] हार को जीत व निराशा को आशा में बदलने वाले उनके प्रमुख, 'तत्त्व' ही थे । इन 'तत्त्वों' का अनुशीलन आगे किया जा रहा है ।

2. ख i. सत्य :

गाँधीवाद के सैद्धान्तिक तत्त्वों में सत्य की प्रतिष्ठा आधारभूत स्तम्भ के रूप में की गई है । भारतीय धर्म एवं दर्शन में सत्य की अवधारणा प्राचीन युग से होती रही है। सत्य की विजय दिखाते हुए, कितने ही महाकाव्य, नाटक एवं धर्म ग्रंथ लिखे गए हैं । उपनिषदों में तो यहाँ तक कहा गया है कि सत्य का मार्ग वह पथ है, जिसका अनुगमन दैव अथवा विद्वान लोग करते हैं, क्योंकि यही मुक्ति का विधायक तत्व है ।[12]

इसी प्रकार अन्य धर्म ग्रंथों में 'ब्रह्म' को 'सनातन सत्य' के रूप में मान्यता दी गई है। महाभारत में 'सत्य' को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है, 'सत्य' से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं है क्योंकि सत्य ही धर्म का मूल है ।[13] रामायण में भी 'सत्य' को राजधर्म का अविस्मरणीय धर्म निर्दिष्ट किया गया है। मनुस्मृति में भी 'सत्य वाणी' को मनुष्य के सम्पूर्ण कार्यकलाप का नियंत्रक बताया है, क्योंकि सभी कार्य वाणी द्वारा नियंत्रित होते हैं। वाणी से उनकी उत्पत्ति होती है और जो मनुष्य वाणी से ईमानदार नहीं है, वह सभी मानों में बेईमान होता है ।[14]

गाँधी जी 'सत्य' के प्रबल पोषक थे, अतः गाँधीवाद में 'सत्य' को सर्वोपरि माना गया है। सत्य-पथ का व्यवहारिक आरोपण अहिंसा के अभाव में कठिन है ।[15] गाँधी सत्य के अन्वेषक एवं शुद्ध सत्य की खोज में दृढ़ संकल्प थे। अटूट आत्म-विश्वास और दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ उन्होंने 'सत्य' का अन्वेषण किया। उनके मतानुसार 'सत्य' शब्द 'सत्' से निष्पन्न है। 'सत्य' का अर्थ है – 'सत्य' अर्थात् 'अस्तित्व।[16] वे स्वयं लिखते है – "मैं केवल सत्य का शोधक हूँ। मेरा दावा है कि मैं सत्य को पाने का सतत् प्रयत्न कर रहा हूँ, परन्तु मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मुझे वह अभी तक मिला नहीं है। सत्य को पूरी तरह प्राप्त कर लेना, सम्पूर्ण हो जाना है। मुझे अपनी अपूर्णताओं को दुःख भान है और इसी में मेरा सारा बल समाया हुआ है, क्योंकि अपनी मर्यादाओं को जान लेना मनुष्य के लिए दुर्लभ वस्तु है।[17] उनका सत्य अनन्त की भाँति विस्तृत एवं अवर्णनयी है। सत्य एक विशाल वृक्ष है। ज्यों-ज्यों उसकी सेवा की जाती है, त्यों-त्यों उसमें अनें फल आते दिखाई देते है। उसका अन्त ही नहीं होता, ज्यों-ज्यों हम गहरे पैठते हैं, त्यों-त्यों उनमें से सत्य निकलते है, सेवा के अवसर हाथ आते रहते हैं।[18] गाँधी जी के अनुसार पृथ्वी के अस्तित्व का आधार भी 'सत्य' ही है। उन्होंने लिखा भी है – पृथ्वी सत्य के बल पर टिकी हुई है। असत, असत्य के मानी है 'नहीं' सत्,

सत्य अर्थात् 'है' । जहाँ असत् अर्थात् – अस्तित्व ही नहीं है, उसकी सफलता कैसे हो सकती है ? और जो सत् अर्थात् 'है' उसका नाश कौन कर सकता है । बस इसी में सत्याग्रह का समस्त शास्त्र समाविष्ट है।[19] सत्य की महिमा का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है – मेरा यह विश्वास दिन-दिन बढ़ता जाता है कि सृष्टि में एकमात्र सत्य की ही सत्ता है और उसके सिवा दूसरा कोई नहीं है । उन्होंने सत्य रूपी परमेश्वर की ही उपासना की है । उनके लिए ईश्वर ही सत्य है और सत्य ही ईश्वर है। उनका कहना है – "परमेश्वर की व्याख्याएँ अगणित हैं, क्योंकि उसकी विभूतियाँ भी अगणित हैं । विभूतियाँ मुझे आश्चर्यचकित तो करती हैं, मुझे क्षण भर के लिए मुग्ध भी करती हैं । पर मैं तो पुजारी हूँ सत्य-रूपी परमेश्वर का । मेरी दृष्टि में वही एक मात्र सत्य है, दूसरा सब कुछ मिथ्या है। पर यह सत्य अभी तक मेरे हाथ नहीं लगा है । अभी तक तो मैं उसका शोधक मात्र हूँ । हाँ, उसकी शोध के लिए मैं, अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु को भी छोड़ देने के लिए तैयार हूँ और इसी शोध रूपी यज्ञ में अपने शरीर को भी होम देने की तैयारी कर ली है।"[20]

सत्य गाँधी जी के जीवन और दर्शन का ध्रुवतारा है।[21] वह सत्य से इतने अभिभूत थे कि वह सत्य के लिए सर्वस्व अर्पण करने की राय देते हैं। उनकी मान्यता है कि "सत्य जहाँ ताप पहुँचाता है, सूर्य की भांति वहीं प्राण का सिंचन भी करता है। फलतः सत्यान्वेषी को वह परमशक्ति प्राप्त हो जाती है, जिसके आधार पर वह जो कुछ भी कहता है, वही सत्य हो जाता है ।[22] उनका विश्वास था कि अपर सत्य से पर सत्य की ओर अग्रसर तो हो सकते हैं, उसे पूर्णतया प्राप्त नहीं कर सकते । वे कहते हैं – सत्य का सम्पूर्ण दर्शन देह द्वारा नहीं हो सकता, असम्भव है। क्षण-भंगुर देह द्वारा शाश्वत धर्म का साक्षात्कार होना सम्भव नहीं ।"[23] शुद्ध सत्य की ओर अग्रसर होने के लिए यह आवश्यक है, कि मनुष्य की अन्तर्रात्मा जिसे सत्य समझती है, उसी आपेक्षिक सत्य के अनुसार जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न करे ।[24]

निरपेक्ष सत्य की अनुभूति का यही मार्ग है कि हम सत्य को परिस्थिति विशेष में जैसा जान सकें, उसी के अनुसार चलें । इस प्रकार जीवन शुद्ध होगा, भूलें सुधरेंगी, सत्य को पहचानने की शक्ति सुदृढ़ और परिष्कृत होगी जिससे पूर्ण शाश्वत सत्य के निकट पहुँचा जा सकता है। गाँधी जी का सत्य हितकारी है, क्योंकि ''जो सत्य है, वही दूर की दृष्टि से हितकर अथवा भला है, इसलिए सत् अथवा सत्य का अर्थ भला भी होता है ।''[25] लेकिन सत्य की प्रतीति सरल नहीं है । सत्य प्राप्ति का मार्ग खांडे की धार के समान, नुकीला और सकरा है, जिस पर चलने वाला सत्य-शोधार्थी, जरा-सा चूकते ही प्राणों सेहाथ धो सकता है। गाँधी जी के अनुसार-निरन्तर अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा ही सत्य रूपी कामधेनु और पारस मणि को प्राप्त किया जा सकता है।''[26]

गाँधी जी का विश्वास है कि आत्मा, जो ब्रह्म का अंश है, सत्य की आराधना करते हुए ही उस महान् में विसर्जित हो सकती है। उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य, ब्रह्म की साधना थी । अतः वे सत्य के एक निष्ठ उपासक थे । जीवन पर्यन्त प्रत्येक क्षेत्र में, हर समस्या के समाधानार्थ सत्य का उपयोग करते रहे । एक ही परम सत्य से अनुप्राणित होने के कारण प्राणिमात्र का समान अस्तित्व है। जब विश्व में केवल एक ही तत्त्व का अस्तित्त्व है, तो तत्त्व दृष्टि से ईश्वर और मानव में तथा मानव और अन्य जीवों में कोई मौलिक भेद नहीं है। इस सम्पूर्ण सृष्टि में आत्मा ही चरम तत्त्व है। गाँधी जी ने लिखा है – ''मैं ईश्वर और मानवता की नितांत एकता में विश्वास करता हूँ । मैं 'अद्वैत' में विश्वास करता हूँ। मैं मनुष्य और सभी जीवधारियों की परम आवश्यक एकता में विश्वास करता हूँ ।''[27] आत्मा की इस चरम एकता के सिद्धान्त से अपने दो मौलिक तत्त्वों की प्राप्ति होती है – एक प्राणिमात्र के प्रति समभाव ; दूसरे एक मनुष्य के जीवन का दूसरे प्राणियों के जीवन पर अनिवार्य प्रभाव । उन्होंने सत्य को अपने जीवन का पुरुषार्थ माना । ''मैं केवल सत्य का शोधक हूँ । मेरा दावा है कि मैं सत्य को पाने का सतत् प्रयत्न कर रहा हूँ, परन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे वह

अभी तक मिला नहीं है। सत्य को पूरी तरह प्राप्त कर लेना है, अर्थात् सम्पूर्ण हो जाना है।"[28] उन्होंने सत्य को अपने जीवन का आधार स्तम्भ मानते हुए लिखा है – "क्योंकि मैं मानता हूँ कि यह जीवन का आधार स्तम्भ है। बाकी सब कुछ इसी पर निर्भर है, सबसे पहले और सबसे बाद में, बल्कि सदा सर्वोपरि महत्त्व उसी का है और सभी बातों में सत्य को सबसे पहला स्थान देना सम्भव है। जहाँ तक मेरा सम्बंध है,मैंने सदा ऐसा करने की कोशिश की है। मेरी राजनीतिक आकांक्षाओं में असत्य और धोखाधड़ी का कोई स्थान नहीं है।"[29]

गाँधी जी सत्य के पुजारी थे । उनका जीवन सत्य की साधना था । उनका सत्य किसी विशेष धर्म अथवा सम्प्रदाय का पर्याय न होकर इतना व्यापक है कि उसमें संसार के समस्त धर्मों का समाहार हो जाता है। डॉ. बी. पट्टाभिसीतारमैय्या के शब्दों में – "सत्य वह शाश्वत सिद्धान्त है, जो विश्व की संरचना को शासित करता है और इसके समस्त घटना चक्र के पीछे विराजमान है ।"[30]

2. ख ii. अहिंसा :

गाँधी जी के नैतिक सिद्धान्तों में द्वितीय महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है – अहिंसा । सामान्यतः यह माना जाता है कि किसी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाना ही अहिंसा है, लेकिन गाँधी जी अहिंसा को व्यापक अर्थ में लेते हैं । उनका यह निश्चित मन्तव्य था कि अहिंसा व्यक्तिगत न होकर, सामाजिक गुण है और उस पर राष्ट्रव्यापी स्तर पर अमल किया जा सकता है, इसलिए उन्होंने व्यवहारिक अहिंसा के साथ-साथ मानसिक अहिंसा की साधना पर भी बल दिया । अहिंसा की सफलता पूर्वक साधना तभी हो सकती है, जब इस तथ्य की अनुभूति हो कि पूर्ण अहिंसा, सम्पूर्ण जीवधारियों के प्रति दुर्भावनाओं का सम्पूर्ण अभाव है, क्योंकि अहिंसा अपने सक्रिय रूप में सम्पूर्ण जीवन के प्रति सद्भावना और विशुद्ध प्रेम है।"[31]

उनके लिए सत्य और अहिंसा एक ही सनातन वस्तु के दो पहलुओं के समान

हैं। सत्य की भाँति अहिंसा भी सर्वशक्तिशाली और असीम है तथा ईश्वर के समानार्थक है।''[32] पूर्ण सत्य और पूर्ण अहिंसा में भेद नहीं है। उन्होंने लिखा है – अहिंसा मेरा ईश्वर है और सत्य मेरा ईश्वर है। जब मैं अहिंसा को खो जाता हूँ, तब सत्य कहता है, मेरे द्वारा अहिंसा का पता लगाओ । जब मैं सत्य का पता लगाना चाहता हूँ तब अहिंसा कहती है, मेरे द्वारा सत्य का पता लगाओ ।''[33] वस्तुतः सत्य के साक्षात्कार से सद्‌बुद्धि प्राप्त होती है और सद्‌बुद्धि से सबके प्रति अहिंसा का भाव उत्पन्न हो जाता है । अहिंसा सत्य का भाव पक्ष है।

गाँधी जी की अहिंसा का अर्थ केवल हिंसा अर्थात् व्यापक रूप में द्वेष का अभाव मात्र नहीं है । यह एक भावात्मक प्रक्रिया है, और क्रियात्मक शक्ति है – ऐसा प्रेम जो किसी प्रकार के राग, मोह अथवा स्वार्थ से रहित हो । गाँधी दर्शन में अहिंसा और प्रेम वस्तुतः एक ही अर्थ के द्योतक शब्द हैं ।[34] गाँधी जी स्वयं अहिंसा का विवेचन करते हुए लिखा है – अहिंसा का अर्थ जैसा मैं समझता हूँ, यही है कि मन, वचन और कर्म से किसी के दिल या शरीर हो चोट न पहुँचाई जाये । फिर भी इस सिद्धान्त के लिए इतना ही काफी नहीं है। अहिंसा के अनुयायी को सभी परिस्थितियों को बदलना पड़ता है ; जिनमें हिंसा होती हो या जिनमें हिंसा होना सम्भव हो । जब कोई व्यक्ति किसी की हिंसा को सह लेता है या उसमें सहायता देता है, तब मैं उसके कार्य को अहिंसा नहीं, निकृष्ट प्रकार की हिंसा कहता हूँ ।[35] उनकी दृष्टि में व्यक्तिगत रूप से सत्य और अहिंसा की साधना के द्वारा मनुष्य समाज में 'रामराज्य' की स्थापना हो सकती है।[36] निसंदेह सत्य, अहिंसा और रामराज्य की स्थापना गाँधी चिन्तन के आधार स्तम्भ हैं । उन्होंने कहा है – ''सत्यमय होने के लिए अहिंसा ही एक मार्ग है, अथवा सत्य रूपी सूर्य का सम्पूर्ण दर्शन सम्पूर्ण अहिंसा के बिना असंभव है ।[37] गाँधी जी का दर्शन युग धर्म की समझ पर आधारित है। विधायक रूप में अहिंसा अधिकतम प्रेम का दूसरा नाम है । रंगनाथ दिवाकर ने लिखा है – प्रेम, अहिंसा ही वह व्यावर्तक रेखा है, जो

गाँधी जी के सत्याचरण को हिटलर और मसोलिनी के तथाकथित 'सत्याचरण' से पृथक् करती है।[38] यह अहिंसा एक प्रवृत्ति है, जो उदारता, प्रेम तथा सर्वोदय की भावना से पोषित होती है। गाँधी जी के शब्दों में – ''अहिंसा सिर्फ एक व्यक्तिगत गुण नहीं है ; बल्कि एक सामाजिक गुण भी है, जिसे दूसरे गुणों की तरह विकसित करना चाहिए ।''[39]

गाँधी जी की अहिंसा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी व्यापकता है। उसका दर्शन विराट है। उनकी दृष्टि में केवल जीव हत्या ही हिंसा नहीं वरन् संसार के जितने जीवनमय प्राण, गतिमय प्राणी हैं, उनको शारीरिक या मानसिक क्लेश पहुँचाना भी हिंसा है। यदि कोई व्यक्ति आवश्यकता से अधिक वस्तु लेता है, तो यह भी हिंसा है। उनकी दृष्टि में अविनय भी हिंसा है। उनका मत था, नम्रता के बिना अहिंसा असम्भव है – अहिंसा और तिरस्कार स्वभावतः परस्पर विरोधी हैं। अहिंसा मानो पूर्ण निर्दोषता ही है । पूर्ण अहिंसा का अर्थ है, प्राणि मात्र के प्रति दुर्भाव का पूर्ण अभाव । .... अहिंसा एक पूर्व स्थिति है। सम्पूर्ण मनुष्य जाति इसी लक्ष्य की ओर स्वभावतः परन्तु अनजान में जा रहा है ।[40] उन्होंने सदैव इस बात पर बल दिया कि उनकी अहिंसा सैद्धान्तिक एवं पुस्तकीय वस्तु नहीं, नितान्त व्यवहारिक है। जीवन के हर क्रिया-कलाप में उसका व्यवहार होना आवश्यक है। उनका मानना था कि इस शरीर के रहते हुए हम अहिंसा का पालन नहीं कर सकते, केवल अनुभव मात्र ही कर सकते हैं । व्यक्ति साध्य सद्गुण के रूप में अहिंसा प्रचीनकाल से प्रचलित थी । गाँधी जी ने उसे व्यापक एवं सार्वजनिक रूप दिया ।

गाँधी जी ने अहिंसा के स्वरूप तथा क्षेत्र का विस्तार किया है । उनसे पूर्व अहिंसा का सम्बंध मुख्यतः भक्ष्याभक्ष्य से था और उसका अर्थ किसी जीव के प्राण न लेने तक सीमित था । अहिंसा को नया आयाम देते हुए उन्होंने लिखा है – ''जीव लेना सदा हिंसा नहीं है। अनेक अवसरो पर जीव न लेने में ही हिंसा होती है।''[41] अहिंसा की व्यापकता के सम्बंध में स्पष्ट है – ''हमें सत्य और अहिंसा को केवल व्यक्तियों की चीज नहीं बनाना है, बल्कि ऐसी

चीज बनाना है, जिस पर समूह, जातियाँ और राष्ट्र अमल कर सके । मैं इसी को सच्चा करने के लिए जीता हूँ और इसी की कोशिश करते हुए मरूँगा ।''[42] अहिंसा को विश्वव्यापी नियम भी बताया – ''अहिंसा हमारे व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का नियम है । .... मैं विश्वव्यापी अहिंसा का हिमायती हूँ ।''[43]

गाँधी जी ने सर्वकालीन और सर्वव्यापक अहिंसा का निरन्तर पालन आवश्यक माना ''जब हम अहिंसा को अपना जीवन-सिद्धान्त बना लें, तो वह हमारे सम्पूर्ण जीवन में व्याप्त होनी चाहिए । यों कभी-कभी उसे पकड़ने और छोड़ने से लाभ नहीं हो सकता ।''[44] उनका दृढ़ विश्वास था कि यदि हम एक बार भी अहिंसा में हिंसा का समावेश करते, तो हम मान लेते हैं कि अहिंसा अपर्याप्त है और इस प्रकार उनको नैतिक जीवन का नियम मानने से इंकार कर देते हैं। उनके अनुसारयदि हम अहिंसा कर लें तो दूसरी सब वस्तुएँ अपने आप हमें मिल जायेंगी ।''[45] उन्होंने अहिंसा को स्वराज्य से आगे माना : .... ''मेरे लिए अहिंसा स्वराज्य से पहले आती है .... जब तक अहिंसा स्वीकार की जाती है, उसको सबसे प्रथम स्थान देना चाहिए । तभी वह अजेय होती है।''[46]

गाँधी जी की अहिंसा का आधार धार्मिक एवं नैतिक है। उसके स्वरूप निर्माण में अद्वैत भावना का अत्यधिक प्रभाव है। वह हिंसा का अभाव या नॉन वायलैंस ही नहीं है। पहली नजर में अहिंसा निषेधात्मक प्रतीत होती है। उनके अनुसार – इस सर्वोच्च धर्म की निषेधात्मक परिभाषा का कारण यह है कि हिंसा शारीरिक जीवन की अपरिहार्य आवश्यकता है। जीव-हिंसा के बिना जीवन ही असंभव है। अतः अहिंसा का अर्थ है, जीवन के लिए आवश्यक हिंसा के परित्याग का प्रयत्न ।[47] फिर भी वे अहिंसा को केवल निषेधात्मक नहीं मानते । उन्होंने उसे आवश्यक रूप से विधायक और गत्यात्मक शक्ति माना है। इस रूप में अहिंसा का अर्थ है – जड़-चेतन सभी के लिए प्रेम । इस भावात्मक अहिंसा के चार मूल तत्त्व

हैं – प्रेम, धैर्य, अन्याय का विरोध और वीरता ।

अहिंसा का मूल आधार और प्राण तत्त्व प्रेम है। सत्य उसका कठोरतम पक्ष है तो प्रेम कोमलतर । वह शुद्ध प्रेम से भिन्न नहीं है। यह प्रेम ही करूणा पर दुःख कातरता तथा तितिक्षा को जन्म देता है। उन्होंने इसी प्रेममूलक अहिंसा को सचेतन दुःख कहा है। इस अहिंसा से प्रतिपक्षी पर विजय दिलाकर ह्रदय उदात्त बनाकर सभी से बंधुवत् व्यवहार बनाया जाता है। श्रेष्ठ विचारों और तत्त्वों का प्रस्फुटन होता है। अतः अपने विशुद्धतम रूप में अहिंसा का अर्थ है – अधिकतम प्रेम, अधिकतम उदारता ।

धैर्य अहिंसा का द्वितीय मूल तत्त्व है । धैर्य द्वारा निराशा का भय नहीं रहता । मानव दृढ़ विश्वासी होकर भीषण आपत्तियों का सामना करते हुए, 'स्व' पथ पर अग्रसर होता है। अहिंसा का तीसरा तत्त्व अन्याय का विरोध करना है। अन्याय को सहन करना अहिंसा है, अतः अन्याय का अनवरत प्रतिकार करते रहना चाहिए । अन्यायी के साथ विद्वेष भी नहीं रखना चाहिए । अहिंसा का चतुर्थ तत्त्व वीरता है। गाँधी जी के अनुसार अहिंसा शक्तिशाली, सशक्त, सबल, साहसी एवं वीर पुरुषों का गुण है, निर्बलों और कायरों का अस्त्र नहीं । कायरता और अहिंसा का परस्पर कोई सामंजस्य नहीं है। उनका मत है हिंसक तो किसी समय अहिंसक बन सकता है, परन्तु कायर कभी नहीं । अतः उन्होंने कायरों की भाँति आत्म समर्पण की अपेक्षा हिंसा को अधिक उचित मानते हुए लिखा है – यदि हमारे ह्रदय में हिंसा है तो नामर्दानगी पर अहिंसा का आवरण रखने की अपेक्षा हिंसा अधिक उच्छी है।[48] अहिंसा की सफलता के लिए गाँधी जी ने कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित है –

1. जहाँ तक मानवीय दृष्टि से संभव है वहाँ तक पूर्ण आत्म-शुद्धि अहिंसा के अन्दर निहित है ।
2. मनुष्य-मनुष्य के बीच मुकबला करे तो मालूम होगा कि अहिंसक मनुष्य में हिंसा करने की जितनी ही शक्ति होगी, उतनी ही मात्रा में उसकी अहिंसा का माप हो जायेगा ।

3. बिना अपवाद के अहिंसा हिंसा से श्रेष्ठ शक्ति है अर्थात् अहिंसक व्यक्ति में उसके हिंसक होने की दशा में जो शक्ति होती । उसके अहिंसक होने की दशा में सदा अधिक होती है।
4. अहिंसा में हार जैसी कोई चीज ही नहीं है । हिंसा के अन्त में तो निश्चित हार ही है।
5. अगर अहिंसा के संबंध में जाति शब्द का प्रयोग किया जा सके तो कहा जा सकता है कि अहिंसा का अन्तिम परिणाम निश्चित विजय ही है ।[49]

इसी प्रकार गाँधी जी की धारणा थी कि अहंकार जैसी कुछ भावनायें अहिंसा की विरोधी और उदारता जैसी भावनाएँ अहिंसा की पोषक हैं । अहिंसा की सफलता हेतु आवश्यक शर्तें भी रखीं। जैसे –

1. अहिंसा परम श्रेष्ठ मानव धर्म है। पशु बल से वह अनन्त गुणा महान और उच्च है।
2. अहिंसा अन्ततोगत्वा उन लोगों को कोई लाभ नहीं पहुँचा सकती जिनकी उन प्रेम-रूपी परमेश्वर में सच्ची श्रद्धा नहीं है ।
3. मनुष्य के स्वाभिमान और सम्मान भावना की वह सबसे बड़ी रक्षक है । हाँ, वह मनुष्य की चल-अचल सम्पत्ति की हमेशा रक्षा करने का आश्वासन नहीं देती ।
4. जो व्यक्ति और राष्ट्र अहिंसा का अवलम्बन करना चाहे, उन्हें आत्म-सम्मान के अतिरिक्त सर्वस्व गवाने के लिए तैयार रहना चाहिए । इसलिए वह आधुनिक साम्राज्यवाद से जो कि अपनी रक्षा के लिए पशु बल पर निर्भर रहता है, बिल्कुल मेल नहीं खा सकती ।
5. अहिंसा ऐसी शक्ति है, जिसका सहारा बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सब ले सकते हैं । वशर्ते कि उनकी उस करुणामय में तथा मनुष्य मात्र में सजीव श्रद्धा हो ।
6. यह समझना एक जबरदस्त भूल है कि अहिंसा केवल व्यक्तियों के लिए ही लाभदायक है, जन-समूह के लिए नहीं। जितना वह व्यक्ति के लिए धर्म है, उतना ही वह राष्ट्रों के लिए भी धर्म है।[50]

वस्तुतः गाँधी जी की अहिंसा बेजोड़ एवं अद्वितीय है। उनकी अहिंसा पर उपनिषद्, महाभारत, बौद्ध, जैन ग्रंथों, रामचरितमानस और बाइबल का प्रभाव दिखाई देता है। उन्होंने अहिंसा के परंपरागत तत्त्व-दर्शन का नव-संस्करण किया है। उनकी अहिंसा केवल आदर्श तक ही सीमित नहीं है । वे उसे लक्ष्य सिद्धि के लिए शक्तिमय साधन के रूप में प्रस्तुत करने और उसे अजेय तथा अमोध शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करने में गाँधी जी की प्रतिभा अपनी अभूतपूर्व अभिनवता प्रदर्शित करती है। इस प्रकार गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित अहिंसा की धारणा में व्यक्ति के आत्म कल्याण व आत्म शुद्धि के साथ-साथ लोक कल्याण की भावना भी पुष्प-गंधवत् विद्यमान है ।[51]

2. ग गाँधीवादी चेतना के मुख्य सिद्धान्त :

गाँधीवादी विचार-दर्शन में सत्य और अहिंसा आधारभूत तत्त्व हैं । इन्हीं के साथ वर्ग-सहयोग, विकेन्द्रीकरण, ट्रस्टीशिप, हृदय-परिवर्तन तथा सत्याग्रह गाँधीवादी चेतना के मुख्य सिद्धान्त हैं । इनमें प्रथम सिद्धान्त का सम्बंध समाज के विभिन्न वर्ग के पारस्परिक सहयोग से है। द्वितीय का सम्बंध विभिन्न क्षेत्रीय उद्योगों और संगठनों की शक्ति के विकेन्द्रीकरण से है । तृतीय का सम्बंध अर्थ-शक्ति के लोक कल्याणार्थ उपयोग से है। चतुर्थ का सम्बंध आध्यात्मिक शक्ति के विकास से है। पंचम सिद्धान्त का सम्बंध अहिंसात्मक प्रतिरोध से है।

2. ग i. वर्ग-सहयोग :

गाँधी जी का मन्तव्य था कि भारतीय नागरिक एवं ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था में वर्ग-सहयोग एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है और इसका आरोपण एवं स्वीकरण राष्ट्र कल्याण का निमायक है, अतः समाज के सभी वर्गों को अपने-अपने कार्यों का निर्वाह और अपने-अपने कर्तव्यों का पालन समुचित रूप से करना चाहिए । उनकी धारणा थी कि पारस्परिक सहयोग के द्वारा ही विभिन्न वर्ण, जातियों और वर्गों का उत्थान संभव है ।

समाज का हर वर्ग समान है। उन्होंने मानव द्वारा निर्मित ऊँच-नीच, अमीर-गरीब की रेखा का सर्वथा विरोध किया । वर्ग का विग्रह उन्हें मान्य नहीं था, इसलिए उन्होंने कहा – ''वर्ग-विग्रह का विचार मुझे अपील नहीं करता । भारत में वर्ग विग्रह न सिर्फ अनिवार्य है बल्कि वह अपरिहार्य है । जो वर्ग-विग्रह के अनिवार्य होने की बात करते हैं, अहिंसा के गूढ़ अर्थ नहीं समझे हैं या केवल उन्हें ऊपर से ही समझते हैं ।''[52] अर्थ व्यवस्था के समानीकरण के लिए भी गाँधी जी ने वर्ग-सहयोग को आवश्यक माना है – शोषण का निर्मूलन पूर्ण रूप से तभी संभव है, जब शोषक और शोषित वर्गों में सहयोग हो तथा पूँजी और श्रम में सामंजस्य हो, क्योंकि यदि पूँजी ताकत है तो श्रम भी ताकत है। दोनों ताकतों का विनाश या रचना के लिए उपयोग किया जा सकता है। दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं ।''[53] श्रम को पूँजी से श्रेष्ठ मानते हुए कहते हैं – ''श्रम के बिना सोना, चाँदी और ताँबे का कोई महत्त्व नहीं है। श्रमिक अपने महत्त्व को समझे और अपने भाग्य को न कोसे । हमारे देश में पैसे वाले और तथाकथित उच्च वर्ग के लोग शरीर श्रम को नीचा और हेय समझते हैं, यहाँ तक की उसके प्रति घृणा का भाव रखते हैं ।''[54]

उन्होंने वर्ग-विग्रह को भारतीय प्रकृति के विरूद्ध एवं विपरीत माना । उनका विचार था कि पश्चिम का समाजवाद तथा साम्यवाद आदि विचारधाराएँ भारत भूमि के लिए श्रेयस्कर नहीं हैं । उनका समाजवाद मजदूर, पूँजीपति, जमींदार और किसान आदि सभी वर्गों के पारस्परिक स्नेह सम्बंधों पर आधारित है । सत्य और अहिंसा उसकी जीवन शक्ति है एवं प्राण प्रेम हैं । उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समता एवं सहयोग की कामना पूरे मनोबल के साथ की । अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत् सहयोग और वर्ग-भावना के लिए उन्होंने आध्यात्मिकता पर बल दिया । सर्वोदय को ही सामाजिक आदर्श घोषित किया । सत्य और अहिंसा का आश्रय ले, पूँजीपति और श्रमिक वर्ग के मध्य सहयोग के लिए अपरिग्रह, आत्म त्याग का विधान किया । उनका विचार था कि पूँजीपति अपने को उस धन का 'ट्रस्टी' मात्र समझे और

उस धन को लोक कल्याण में ही व्यय करे । आर्थिक क्षेत्र में इसी समानता के लिए ग्रामोद्योग, खादी, स्वदेशी आदि का विधान कर, यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि कोई व्यक्ति धनवान न हो वरन् हर व्यक्ति परिश्रम करे और अपने परिश्रम के अनुसार पारिश्रमिक प्राप्त करे । जीवन की आवश्यकताएँ इस सीमा तक सीमित कर ले कि उसे अधिक धन की आवश्यकता ही न हो । अर्थ व्यवस्था के क्षेत्र में वर्ग-सहयोग का समर्थन करते हुए उनका विचार था – ''हम न केवल जो मिल सके उसे पाने का विचार छोड़ देगें, परन्तु जो सबको न मिल सके, उसे लेने से इंकार कर देंगे ।''[55] उनकी धारणा थी कि धनवान ही साम्राज्य में स्तम्भ हैं। धनोपार्जन के बजाय उन्होंने आजीविका के अधिकार को श्रेष्ठ बताया – प्रत्येक उद्यमी मनुष्य को आजीविका पाने का अधिकार है, मगर धनोपार्जन का अधिकार किसी को नहीं । सच कहें तो धनोपार्जन स्तेय है, चोरी है। जो आजीविका से अधिक धन लेता है, वह जान में या अनजान में दूसरों की आजीविका छीनता है ।''[56]

वर्ग-सहयोग हेतु उन्होंने श्रम की महत्ता का प्रतिपादन किया । श्रम के सम्बंध में उनके सूत्र अत्यन्त क्रांतिकारी हैं, जिनका सम्बंध रोटी के लिए मूल्य धारणा से है। दक्षिण अफ्रीका में प्रवास के दौरान उन्होंने श्रमिकों की कठिनाइयों एवं समस्याओं को निकट से अवलोका था । श्रम मानव जीवन का अनिवार्य अंग है । यदि समाज का प्रत्येक सदस्य श्रम द्वारा अपनी जीविका खोजने लगे तो समाज की विषमताओं की सीमाएँ स्वतः समाप्त हो जाएँगी । किसी प्रकार का श्रम हेय नहीं । इसके लिए श्रमिक-वर्ग में सद्भाव एवं सहयोग बनाये रखने के लिए अपने को भंगी, बुनकर, किसान आदि कहने में गौरवान्वित समझते थे। इस प्रकार श्रमिक, शरीर श्रम करने वाले हर व्यक्ति से सहयोग बनाये रखते थे । केवल उदर पूर्ति के लिए किए जाने वाले श्रम के सम्बंध में उनका विचार था कि वह स्वेच्छापूर्वक किया जाए, जिसमें बुद्धि का प्रयोग हो एवं मानव कल्याण के लिए किया जाए । श्रम के महत्त्व को सर्वोच्च मानते हुए कहा है कि कोई भी उद्योग छोटा व बड़ा नहीं और न उसको करने वाला

ही ऊँचा-नीचा होता है । उनका विश्वास था कि जब हर व्यक्ति अपने श्रम के महत्त्व को सामाजिक दृष्टि से देखने लगेगा और यह विचार करेगी कि उसके बिना संसार की क्या हानि होगी तो इस प्रकार से श्रमिक वर्ग-भावना का अन्त स्वमेव हो जायेगा ।

विश्व की अनेक सभ्यताओं ने श्रम की महत्ता को पूँजी के अधीन, अधीन पूँजीवादी व्यवस्था का सूत्रपात किया, जिसमें वह पूँजी जो श्रम की सहयोगिनी थी, श्रम की विरोधिनी शक्ति बन गई और इसने वर्ग-विग्रह को जन्म दिया । गाँधी जी ने श्रम और पूँजी की इस चिन्ताजनक अवस्था पर क्षोभ प्रकट करते हुए, मजदूरों की एक सभा में कहा था – "यदि पूँजी ताकत है तो श्रम भी ताकत है, दोनों ही ताकतों का विनाश या रचना के लिए उपयोग किया जा सकता है, दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं ।"[57] उनका विचार था कि शारीरिक श्रम के आधार पर ही संसार में समानता स्थापित की जा सकती है, क्योंकि श्रम द्वारा ही मानवता को एकता के सूत्र में बाँधा जा सकता है, ऊँच-नीच का भेद मिटाया जा सकता है एवं पूँजी और श्रम, निर्धन और धनी के मध्य शान्ति पूर्ण सम्बंध स्थापित किया जा सकता है। वर्ग-सहयोग द्वारा ही देश में समुचित व्यवस्था हो सकती है एवं परस्पर मैत्री भाव भी बढ़ता है । गाँधी जी ने वर्ग-सहयोग द्वारा देश में एकता की कल्पना की थी, जिसे वे साकार होते हुए देखना चाहते थे ।

2. ग ii. विकेन्द्रीकरण :

गाँधीवाद के मूल सिद्धान्तों में द्वितीय स्थान पर विकेन्द्रीकरण को रखा गया है। आधुनिक युग में एक स्थान पर केन्द्रीभूत पूँजी की शक्ति, शोषण की शक्ति बन जाती है। हमारा आधुनिक जीवन इतना जटिल हो गया है कि यदि हम परस्पर स्नेह और भाईचारे के सम्बंध को दृढ़ करना भी चाहे तो प्रायः नहीं कर पाते । आज के वैज्ञानिक युग में मानव का जीवन भी यंत्रवत हो गया है। मानव और पशु दोनों के जीवन का धीरे-धीरे विनाश होते जा रहा है। शोषण की प्रक्रिया सतत् क्रियाशील है । शोषित व्यक्ति एवं समाज से भला कैसे देश

की उन्नति हो सकती है, क्योंकि पूँजी का केन्द्रीकरण व्यक्ति के हाथ में हो तो बुरा ही होता है।

गाँधीवाद के अनुसार आधुनिक समाज विकेन्द्रित होगा तो प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति होगी । विकेन्द्रीकरण इसलिए आवश्यक है, क्योंकि केन्द्रीकरण में शक्ति कुछ थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में रहती है, जिससे शासक एवं शोषित वर्ग का जन्म होता है । केन्द्रीकरण से जीवन में जटिलता और भी अधिक बढ़ जाती है तथा विशेषज्ञों का महत्त्व बढ़ जाता है। वह स्वशासन के अवसर और अन्याय के प्रति विद्रोह करने की क्षमता को घटा देता है । मजदूर, मिल मालिक के हाथ की कठपुतली तथा किसान, जमींदार का मुँह ताकने वाला बन जाता है । सत्ता चाहे विशेष-व्यक्ति के हाथ में हो, चाहे वर्ग-विशेष के और चाहे राज्य के अधीन हो, शोषण की मात्रा उतनी ही रहती है। इसलिए विषमता के निराकरण के लिए पूँजी के धन का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। अतः गाँधी जी किसी प्रकार के केन्द्रीकरण के पक्ष में नहीं थे, फिर चाहे वह राज्याश्रित केन्द्रीकरण हो या व्यक्ति द्वारा हो । केन्द्रीकरण न हो पाये, इसके लिए वह व्यक्ति और समाज के बीच में आज धन का जो परिवर्तित महत्त्व है, उसे कम करना चाहते थे । गाँधी जी ने 1942 में लिखा था – ''केन्द्रीकरण समाज की अहिंसक व्यवस्था से मेल नहीं खाता ।''[58] सन् 1939 में भी कहा था – ''मेरा सुझाव है कि यदि भारत को अहिंसक रीति से विकास करना है तो उसे बहुत बातों का विकेन्द्रीकरण करना होगा । केन्द्रीकरण का संचालन और उसकी रक्षा बिना पर्याप्त शक्ति के नहीं हो सकती ।''[59]

भोजन वस्त्र एवं आवास मानव की आधारभूत आवश्यकता है। गाँधीवाद की विकेन्द्रीकरण की नीति से, ये तीनों आवश्यकताएँ सरलता से पूर्ण हो जाती हैं । गाँधी जी उद्योगों को विकेन्द्रीकृत करना चाहते थे जिससे गाँव में रहने वाले किसानों को बारह महीने, वहीं उत्तम भोजन मिल जाये । अन्यथा उसे वर्ष के वो दिन, महीने जब खेती का कोई काम नहीं होता, तब उसे पेट एवं परिवार पालन की चिन्ता सताती है और वह मजदूरी करने शहर की ओर जाता है । विकेन्द्रीकरण से व्यक्ति स्वावलम्बी बनता है तथा समाज में जो असमानता

की समस्या होती है, वह भी कुछ हद तक समाप्त हो जायेगी । गाँधी जी केवल उद्योग के क्षेत्र में ही नहीं, सत्ता में भी विकेन्द्रीकरण चाहते थे। उनके विकेन्द्रीकरण का यह सिद्धान्त, भारत के लिए ही नहीं वरन् समस्त विश्व के लिए उपयोगी है ।

2. ग iii. ट्रस्टशिप :

'ट्रस्टी' शब्द के लिए संस्कृत में 'न्यास' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसका जन प्रचलित अर्थ 'धरोहर' या थाती है। दादा धर्माधिकारी ने 'ट्रस्टीशिप' का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है – ''प्रप्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा'' कण्व शकुंतला को पतिगृह भेजते हुए कहते हैं– ''अब मैं स्वथ्य एवं शान्त हो गया हूँ । मेरे मन में बहुत समाधान है, क्योंकि जैसे किसी की धरोहर मेरे पास रही हो, उसे मैं लौटा रहा हूँ । ''अर्थो हि कन्या परकीय एव'' – दूसरे का धन मेरे पास रखा था, उसका प्रत्यार्पण कर दिया ।''[60]

'ट्रस्टीशिप' का अर्थ है – पूँजीपति अपने धन को 'ट्रस्ट' को सौंप दे, जिसका उपयोग समाज के कल्याण के लिए किया जाए । व्यक्ति धन संग्रह न करे केवल उसका रक्षक बनकर रहे । ट्रस्टीशिप के सम्बंध में आलोचक मानते हैं कि एक व्यक्ति द्वारा संग्रह की गई वस्तु को दूसरे लोग छीनना चाहते हैं। लेकिन यह धारणा निराधार है, क्योंकि 'ट्रस्टीशिप' से समाज का कल्याण होता है और लोगों में असमानता का भेद हटता है। गाँधी जी के सचिव प्यारे लाल ने अपनी पुस्तक ''द लास्ट फेस'' में 'ट्रस्टीशिप' के सूत्रों को उद्धृत किया है –

1. न्यास सिद्धान्त में समाज की वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था को बदलने का प्रावधान है । यह पूँजीवाद को कोई स्थान नहीं देता । बल्कि वर्तमान मालिक वर्ग को स्वयं को बदलने का मौका देता है। यह, इस तथ्य पर आधारित है कि मानव प्रकृति पाप मुक्ति के दायरे से बाहर नहीं होती ।
2. अपने कल्याण के लिए समाज द्वारा सम्पत्ति के अधिकार की अनुमति दी जाने की स्थिति को छोड़कर, यह सिद्धान्त सम्पत्ति के निजी स्वामित्व को मान्यता नहीं देता ।

3. स्वामित्व और सम्पत्ति के उपयोग का वैधानिक नियमन भी इसकी परिधि में आता है।

4. इस प्रकार नियंत्रित न्यास-सिद्धान्त के अन्तर्गत् कोई व्यक्ति सम्पत्ति को रखने और अपनी स्वार्थपरक तुष्टि के लिए अथवा समाज के हित की अनदेखी करके सम्पत्ति का उपयोग करने को स्वतंत्र नहीं होगा ।

5. इसमें जैसे एक अच्छी न्यूनतम मजदूरी की दर का प्रावधान किया गया है, ठीक उसी तरह समाज में किसी व्यक्ति को अधिकतम आय की अनुमति देने के लिए भी एक सीमा तय की जानी चाहिए, ताकि इस अंतर को दूर करने की प्रवृत्ति हो ।

6. गाँधी जी के अनुसार – आर्थिक व्यवस्था के अधीन उत्पादन चरित्र, सामाजिक आवश्कता में निर्दिष्ट होना चाहिए, न कि व्यक्तिगत धुन या लालच से ।''[61]

तत्त्व और सिद्धान्त रूप में गाँधी जी मानते थे कि जो भी धन, सम्पत्ति किसी के भी पास है, वह वस्तुतः समाज की है। धन का स्रोत और गन्तव्य दोनों समाज ही है। यदि प्रत्येक व्यक्ति यह समझ ले कि जो कुछ भी उसके पास है, सब समाज का है, वह तो रक्षक मात्र है तो बहुत सी समस्याएँ सुलझ सकती है। गाँधी जी विश्व में एक नवीन नैतिक दायित्व का वातावरण पैदा करना चाहते थे । उन्होंने लिखा है – ''जब तक मनुष्य अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के त्याग के लिए तैयार नहीं हैं, उन्हें सम्पत्ति की ओर अपनी रूख बदल लेना चाहिए और सम्पत्ति की स्वामी की तरह नहीं, उसके संरक्षक (ट्रस्टी) की तरह आचरण करना चाहिए और सम्पत्ति का उपयोग समाज के हित के लिए करना चाहिए ।''[62] उनका यह सिद्धान्त वेद एवं उपनिषदों की त्यागवृत्ति पर आधारित है, जहाँ लिखा है – ''तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।''[63]

जैनेन्द्र कुमार ने गाँधी जी के इस अपरिग्रह के विषय में लिखा है – ''करोड़ों रुपया लोगों का लेकर अपनी दुकानों में लगाने में उन्होंने आध्यात्म की क्षति नहीं देखी । बल्कि इसी में से सत्य रूप परमेश्वर की सच्ची उपासना का उन्होंने लाभ अनुभव किया ।

अपरिग्रह ही उन्हें करोड़ों काण्डों का संचालक बनने दे सका । ऐसे उन्होंने धन को धन्य किया और उन लाखों श्रमिकों के हक को उन तक पहुँचाया जो अपनी सब तपस्या भूलकर मान रहे थे कि वे दरिद्र हैं ।''[64] गाँधी जी का दृढ़ विश्वास था कि समाज की संरचना अहिंसात्मक ढंग से की जाये तो उनका 'ट्रस्टीशिप' का सिद्धान्त केवल उनके जीवन काल में ही नहीं, सदैव अजर-अमर रहेगा – ''मुझे विश्वास है कि वह मेरे अन्य सिद्धान्तों के बाद भी जीवित रहेगा । उसके पीछे दर्शन एवं धर्म की स्वीकृति है। यह बात कि सम्पत्तिवान ने उस सिद्धान्त के अनुसार आचरण नहीं किया, सिद्धान्त की असत्यता नहीं, धनवानों की कमजोरी साबित करती है और दूसरा सिद्धान्त अहिंसा से मेल नहीं खाता ।''[65]

इस प्रकार 'ट्रस्टीशिप' समाज में अर्थ-व्यवस्था लाने की सर्वोत्कृष्ट व्यवस्था है, जिसे लोकप्रिय बनाकर कोई भी राष्ट्र वर्ग हीन समाज की स्थापना कर सकता है और अहिंसक समाज ही, इस 'ट्रस्टीशिप' की व्यवस्था को सुचारू रूप से चला सकता है।

2. ग iv. हृदय-परिवर्तन :

हृदय परिवर्तन का सिद्धान्त सत्य और अहिंसा के समान ही गाँधी विचार-सरिणी का सुन्दर पुष्प है। गाँधी जी प्रतिपक्षी पर अपना प्रभाव हिंसा अथवा बल प्रयोग द्वारा नहीं वरन् हृदय-परिवर्तन द्वारा डालना चाहते थे। उन्हें ईसा मसीह के इस सिद्धांत पर पूरी आस्था एवं विश्वास था, जो उन्होंने पर्वत-धर्म-शिक्षण में कहा है – तुमने सुना है, यह कहा गया है कि आँख का बदलना आँख और दाँत का दाँत .... लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम बुराई का : हिंसा से : प्रतिरोध ही न करो, लेकिन जो कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारे, उसकी ओर बायाँ भी कर दो और अगर कोई तुम्हारे ऊपर मुकदमा चलाकर तुम्हारा कोट भी छीन ले तो उसको अपना लवादा भी दे दो और जो कोई तुमको एक मील चलने मजबूर करे, उसके साथ दो मील चले जाओ ।'' ऐसी अहिंसात्मक वृति अपनाकर, विरोधी का हृदय-परिवर्तित किया जा सकता है।

गाँधी जी प्रत्येक सत्याग्रही के लिए यह आवश्यक समझते थे कि वह अन्याय का विरोध करते समय अपार कष्ट सहकर प्रतिपक्षी के हृदय पर प्रभाव डाले और उसको अपने तथा उसके मत से परस्पर सहयोग स्थापित कर समझौते की चेष्टा करे । कष्ट सहन द्वारा विरोधी का हृदय-परिवर्तन किस प्रकार होता है इस सम्बन्ध में उनका विचार था कि सत्याग्रही अहिंसा का अवलम्ब ले स्वेच्छा से कष्ट सहता है, तब उसका पवित्र शुद्ध प्रेम शक्तिशाली बनता है अर्थात् उसकी आत्मा का विकास होता है। गाँधी जी के शब्दों में – ''जितना अधिक आप अहिंसा का अपने में विकास करते हैं, उतना ही वह संक्रामक हो जाती है, यहाँ तक कि वह आपके पास पड़ोस पर अधिकार कर लेती है और धीरे-धीरे संसार को हिला सकती है।''[66]

सत्याग्रह को स्थान विशेष में सम्मान देने के लिए एवं उसकी मर्यादा को बनाए रखने तथा बाह्य सहायता की उपेक्षा करने का एकमात्र कारण बताते हुए, गाँधी जी ने कहा– ''सत्याग्रह का मूलभूत विचार है, अन्यायी का हृदय परिवर्तन करना, उनमें न्याय भावना जगाना और अप्रत्यक्ष सहयोग से वह इच्छित अन्याय नहीं कर सकता । यदि लोग अपने हितों के लिए कष्ट सहने को तैयार नहीं है तो सत्याग्रह के रूप में किसी भी बाहरी सहायता से सम्भवतः सच्चा छुटकारा नहीं मिल सकता ।''[67] इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि गाँधी जी हृदय-परिवर्तन को ही अन्याय से मुक्ति का एक मात्र साधन माना करते थे । अन्याय से पीड़ित व्यक्ति के सम्बन्ध में उनका विचार था कि वह असहयोग का आश्रय ले तथा कष्ट सहन द्वारा अन्यायी के हृदय और मस्तिष्क पर प्रभाव डाले । इस प्रकार वह उसे अपनी भूल समझने और उसमें सुधार करने की चेष्टा करे । उन्होंने कभी यह स्वीकार ही नहीं किया कि शोषकों का हृदय परिवर्तन संभव नहीं, उनका विचार था, शोषक चाहे किसी वर्ग का हो, पूँजीपति हो, जमींदार अथवा धर्मान्ध व्यक्ति हो, वह अन्त में एक मनुष्य ही है और उसका मुख्य केन्द्रीय तथ्य आत्मा है तथा उसकी इस विशेषता का अंत संभव नहीं । उसका हृदय-

परिवर्तन नितान्त संभव है। हिंसा प्रतिहिंसा को बढ़ाती है। अतः ऐसे स्थान पर प्रेम की शक्ति ही अन्यायी को अन्याय से विमुख कर सकती है। अहिंसा को वे बल प्रयोग की विधि न मानकर हृदय-परिवर्तन की विधि स्वीकार करते थे । उनका विचार था – ''अहिंसा कभी बल प्रयोग की विधि नहीं है, वह हृदय-परिवर्तन, की विधि है।''[68] ''सत्याग्रही का उद्देश्य है, अन्यायी का हृदय-परिवर्तन न कि उसके साथ बल प्रयोग ।''[69]

हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त को व्यवहारिक बनाने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी प्रेम-शक्ति और आत्म शक्ति का विकास करे तथा अपने विरोधी के लिए भी अपने आत्मीय जन के समान ही प्रेम भाव रखे । गाँधी जी हृदय-परिवर्तन द्वारा ही पूँजीपति का हृदय परिवर्तन कर उसे केवल उसकी सम्पत्ति का संरक्षक मात्र नियुक्त करना चाहते थे । वे धर्मान्ध व्यक्ति का मत परिवर्तन भी, हृदय पर प्रभाव डालकर ही संभव मानते थे। गाँधी जी राजनीतिक क्षेत्र में भी हृदय-परिवर्तन का आश्रय लिया।

2. ग v. सत्याग्रह :

महात्मा गाँधी ने राजनीतिक क्षेत्र में अहिंसा के सिद्धान्त को साकार रूप देने के लिए जिस कार्य-पद्धति का प्रयोग किया, वह सत्याग्रह है। उन्होंने, इस शब्द को दक्षिण अफ्रीका में, वहाँ की सरकार के विरूद्ध भारतवासियों के अहिंसक प्रतिरोध का परिचय देने के लिए गढ़ा था । सत्याग्रह एक ऐसा साधना है, जिसके द्वारा सत्य धर्म की रक्षा हेतु आग्रह किया जाता है। गाँधी जी की विचारधारानुसार, इसकी परिभाषा होगी, सत्याग्रह एक ऐसी अहिंसात्मक वैज्ञानिक साधना है, जो स्वपक्ष और परपक्ष दोनों की आत्म शुद्धि करती हुई उन्हें सत्यमार्गी बनाती है और सत्य के आधार पर समाजोन्नति में योग देती है। किशोरलाल मशरूवाला के विचारानुसार सत्याग्रह गाँधी दर्शन का प्रसिद्ध प्रयोग है। जिसका अर्थ – ''सत्यादि धर्मों का स्वयं पालन करने का आग्रह और अधर्म का सत्यादि साधनों के द्वारा ही विरोध ।''[70]

गाँधी जी के अनुसार – "सत्याग्रह सत्य पर डटे रहना है। इसलिए इसका अर्थ है सत्य शक्ति । पर सत्य आत्मा है, इसलिए वह आत्मशक्ति भी है।"[71] डॉ. बी पट्टाभिरमैय्या ने शारीरिक बल के स्थान पर आत्म बल और अहिंसा को ही सत्याग्रह का सार माना है – "केवल हिंसा से परे रहना ही नहीं, अपितु अपने विरोधी के प्रति किसी प्रकार का द्वेष-भाव और वैमनस्य न रखना और उसको निरन्तर प्रेम और आत्म पीड़न द्वारा जीतने का प्रयत्न करना, सत्याग्रह का सार है।"[72] गाँधी जी ने इस आत्म बल को अंग्रेजी के 'पेसिव रिजिस्टैंस' का पर्याय माना है।[73]

सत्याग्रह व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक दोनों प्रकार का हो सकता है। प्रथमतः यह एक आध्यात्मिक साधना है, द्वितीय रूप में सामाजिक कल्याण का साधन है । व्यक्तिगत सत्याग्रह की आवश्यकता उस समय होती है, जब सामुदायिक हित साधना के हेतु सामुदायिक सत्याग्रह चलाने में बाधाएँ आ जाती हैं। सन् 1942 में 'करो या मरो' का घोष देते हुए, गाँधी जी ने व्यक्तिगत रूप से ही सत्याग्रह जारी रखने का आदेश, अपनी गिरफ्तारी से पूर्व दिया था। यह घटना जन-हिताय, व्यक्तिगत सत्याग्रह का ऐतिहासिक उदाहरण है। गाँधी जी ने सत्याग्रह की पद्धति को सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी बहुत बार अपनाया । सत्याग्रह को उन्होंने सामूहिक झगड़ों से निबटाने की आदर्श पद्धति बना दिया । हिन्द स्वराज्य में गाँधी जी ने लिखा है – "सत्याग्रह एक ऐसी तलवार है, जिसके सब ओर धार है। उसे जैसे चाहो, वैसे काम में लगाया जा सकता है। उसे काम में लाने वाला और जिस पर वह काम में लाई जाती है, दोनों सुखी होते हैं । खून न बहाकर भी वह बड़ी कारगर होती है। उस पर न तो कभी जंग लगता है और न कोई उसे चुरा ही सकता है।"[74]

गाँधी जी के अनुसार सत्याग्रह का यह शस्त्र विभिन्न समय एवं परिस्थितियों में अलग-अलग रूप ग्रहण कर सकता है। सत्याग्रह के विभिन्न रूप निम्न हैं –

1. असहयोग : गाँधी जी का विचार था कि किसी भी शासन द्वारा जनता के सहयोग से ही

शोषण एवं अत्याचार किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में यदि जनता शासन के साथ सहयोग करने से इंकार कर दे तो शासन द्वारा कार्य नहीं किया जा सकेगा । सन् 1919-1920 में भारत में ब्रिटिश शासन का विरोध करने के लिए असहयोग के मार्ग को ही अपनाया गया । उन्होंने असहयोग के बारे में लिखा – "मैं तो असहयोग को इतना शक्ति सम्पन्न और पवित्र अस्त्र समझता हूँ कि यदि ईमानदारी और सच्चाई के साथ इसका प्रयोग किया जाये तो ईश्वर के साम्राज्य को खोजने के समान होगा और फिर अन्य बातें स्वभावतः इसका अनुसरण करेगी । उस समय लोग, इसकी वास्तविक शक्ति का अनुभव करेंगे । वे अनुशासन, आत्म नियंत्रण, सह-कार्य, अहिंसा, संघटन और उन सभी बातों का महत्त्व समझेंगे, जिनसे राष्ट्र केवल महान् ही नहीं, महान के साथ दिव्य भी बनता है।'[75]

असहयोग का अर्थ है खुद अलग होकर अन्याय से सहयोग न करना । उदाहरणार्थ, यदि कोई सरकार पूरी तरह अन्यायी हो तो उसे किसी भी प्रकार का शारीरिक और नैतिक बल न देना । यदि सरकार कोई अन्याय पूर्ण काम करे तो उसके उस काम में मदद न देना । इससे राजनीतिक व्यवस्था पर व्यापक असर पड़ता है। इस सम्बंध में उनके विचार थे – "अधिकतम निरंकुश शासन भी जनता की अनुमति के बिना नहीं चल सकता, और यह अनुमति प्रायः निरंकुश शासन बलपूर्वक प्राप्त करता है। जैसे ही जनता स्वेच्छाचारी सत्ता से डरना छोड़ देती है, उस सत्ता की शक्ति जाती रहती है ।"[76]

2. सविनय अवज्ञा : सत्याग्रह का असहयोग से अधिक प्रभावपूर्ण रूप सविनय अवज्ञा है। गाँधी जी ने इसे "सशस्त्र क्रान्ति का पूर्ण कारगर और रक्तहीन स्थानापन्न"[77] कहा था । सविनय का अर्थ है, किसी विशेष कानून की प्रकट एवं अहिंसक अवज्ञा । सविनय अवज्ञा के दो रूप है ; प्रथमतः – यदि नये लादे हुए, किसी भद्दे कानून का प्रतिकार करना पड़ा तो यह रक्षात्मक सविनय अवज्ञा है । द्वितीय, यदि अहिंसक प्रतिकार के समय स्थापित सरकार के विरूद्ध किये जाने वाले विद्रोह के प्रतीक के रूप में किन्हीं कानूनों को भंग किया जाये तो उसे

आक्रामक सविनय अवज्ञा कहेंगे ।

गाँधी जी ने स्पष्टतः लिखा है – "मेरी यह दृढ़ धारणा है कि सविनय कानून भंग, वैधानिक आन्दोलन का शुद्धतम रूप है। बेशक उसमें विनय और अहिंसा की जिस विशिष्टता का दावा किया जाता है, वह यदि दूसरों को धोखा देने के लिए ओढ़ लिया गया, झूठा आवरण मात्र हो, तो वह लोगों को गिराता है और निन्दनीय बन जाता है ।"[78] उन्होंने इसके शुद्ध रूप के विषय में लिखा है – "कानून की अवज्ञा सच्चे भाव से एवं आदरपूर्वक की जाए, उसमें किसी प्रकार की उद्दण्डता न हो और वह किसी ठोस सिद्धान्त पर आधारित हो तथा उसके पीछे द्वेष या तिरस्कार का लेश भी न हो, यह आखरी कसौटी सबसे ज्यादा महत्त्व की है तो ही उसे शुद्ध सत्याग्रह कहा जा सकता है।"[79] सविनय अवज्ञा कैसे की जाए, इसके सम्बंध में उन्होंने लिखा है –"कानून की सविनय अवज्ञा में केवल वे लोग ही हिस्सा ले सकते हैं, जो राज्य द्वारा लादे गए कष्टप्रद कानूनों का अगर वे उनकी धर्म-बुद्धि या अन्तःकरण को चोट पहुँचाते हों, तो स्वेच्छापूर्वक पालन करते हैं और जो इस तरह की गई अवज्ञा का दण्ड भी उतनी ही खुशी से भोगने के लिए तैयार हों । कानून की अवज्ञा सविनय तभी कही जा सकती है, जब वह पूरी तरह अहिंसक हो । सविनय अवज्ञा के पीछे सिद्धान्त यह है कि प्रतिवादी को खुद कष्ट सहकर यानी प्रेम के द्वारा जीता जाय ।"[80] सविनय अवज्ञा नागरिक का जन्म सिद्ध अधिकार है। वह अपने इस अधिकार को, अपना मनुष्यत्व खोकर ही छोड़ सकता है । सविनय अवज्ञा का परिणाम कभी भी अराजकता में नहीं आ सकता । दृष्ट हेतु से की जाने वाली अवज्ञा को हर एक राज्य बलपूर्वक अवश्य दबायेगा। यदि, वह उसे नहीं दबाएगा तो खुद नष्ट हो जाएगा । सविनय अवज्ञा को दबाने का अर्थ तो अन्तरात्मा को दबाने की कोशिश करना है ।"[81]

3. हिजरत : सत्याग्रह का एक रूप हिजरत है, जिसका अर्थ है – अपनी इच्छा से सरकारी पद छोड़ना । अपने सब हित सम्बंधो को छोड़कर सरकारी हद में से निकल जाना । ऐसे

व्यक्ति जो अपने आपको पीड़ित अनुभव करते हैं, आत्म-सम्मान रखते हुए, उस स्थान में नहीं रह सकते हों और अपनी रक्षा के लिए अहिंसक शक्ति नहीं रखते हो, उनके द्वारा हिजरत का प्रयोग किया जा सकता है। गोपीनाथ धवन ने हिजरत के कुछ दृष्टांत दिए हैं – ''रोम के पैट्रीशियन्स' से अधिकार प्राप्त करने के लिए 'प्लेवियन्स' का नगर त्याग, इजरायल के निवासियों की हिजरत, मोहम्मद साहब की 'मक्का' से मदीना को की गई हिजरत, इंग्लैंड के 'प्योरिक्सका' और रूस के 'दूरवोबार्स' का विदेश गमन । लेकिन ये सभी दृष्टान्त अहिंसक हिजरत नहीं हैं। सन् 1950 में, गुजरात में बारडोली, बोरसद और जम्बूसर की जनता ने सामूहिक हिजरत की पद्धति का प्रयोग सरकार के अमानुषिक अत्याचार के विरोध में किया था। ये सत्याग्रही किसान बम्बई प्रांत छोड़कर पड़ोस के बड़ौदा राज्य में जा बसे थे।''[82]

4. अनशन : गाँधी जी अनशन को अत्यधिक उग्र अस्त्र समझते थे और उनका विचार था कि इसे अपनाने में अत्यधिक सावधानी बरती जानी चाहिए । अनशन केवल कुछ विशेष अवसरों पर आत्म-शुद्धि या अत्याचारी के हृदय-परिवर्तन के लिए ही किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त इस अस्त्र का प्रयोग हर किसी व्यक्ति के द्वारा नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि इसके सफल प्रयोग के लिए मानसिक शुद्धता, अनुशासन और नैतिक मूल्यों में आस्था की अत्यधिक आवश्यकता होती है। अनशन का रूप एक है, आमरण अनशन अर्थात् स्वेच्छा से मृत्युपर्यन्त अन्न छोड़ देना । आमरण अनशन कभी भी बिना शर्त नहीं होता, वह सशर्त ही होना चाहिए, नहीं तो उसे आत्महत्या कहा जाएगा । आमरण अनशन को अन्तिम अस्त्र मानकर ही प्रयोग करना चाहिए और उसका अवलम्बन करने से पूर्व, जीवन बिल्कुल असहाय हो जाना चाहिए । आमरण अनशन आत्म शुद्धि के लिए किए गये उपवासों से भिन्न होता है।

5. हड़ताल : सत्याग्रह का एक रूप हड़ताल है । गाँधी जी के अनुसार हड़ताल करने वाले व्यक्ति की माँगें नितान्त स्पष्ट और उचित होनी चाहिए। हड़ताल का उन्होंने उसी स्थिति में समर्थन किया है, जब उसका उचित कारण हो । हड़तालियों के बीच मतैक्य हो, वे हिंसा का

सहारा नहीं लेते हैं। दुराचार नहीं करते हों और उसके द्वारा अपरिवर्तनीय न्यूनतम माँग रखी गई हों, जिनकी घोषणा हड़ताल से पूर्व हो चुकी हो । हड़ताल का अर्थ है, विरोध प्रदर्शन के लिए व्यवसाय का कुछ काल के लिए बन्द कर देना । हड़ताल का उद्देश्य है – जनता और सरकार के मन को प्रभावित करना । लेकिन हड़ताल बार-बार न हो, अन्यथा यह लाभप्रद नहीं होती । यह पूर्ण रूप से ऐच्छिक होनी चाहिए तथा कार्य रोकने के लिए प्रचार के अहिंसात्मक साधनों का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। गाँधी जी के अनुसार – हड़ताल में आत्मशुद्धता के हेतु आत्म-तप एवं आत्म-त्याग की आवश्यकता होती है। हड़ताल के समय मानसिक शुद्ध भावनाओं एवं ईश्वरीय प्रार्थनाओं का विशेष योग उन्होंने माना है।

6. उपवास : उपवास के विषय में गाँधी जी ने लिखा है – "उपवास, सत्याग्रह के शास्त्रागार का एक अत्यंत शक्तिशाली अस्त्र है । इसे हर कोई नहीं कर सकता । केवल शारीरिक योग्यता, इसके लिए कोई योग्यता नहीं है । ईश्वर में जीती-जागती श्रद्धा न हो, तो दूसरी योग्यताएँ निरूपयोगी हैं। वह निरायांत्रिक प्रयत्न या अनुकरण कभी नहीं होना चाहिए। उसकी प्रेरणा अपनी अन्तरात्मा की गहराई से आनी चाहिए । इसलिए वह बहुत विरल होता है।"[83] उपवास व्यक्तिगत, सामाजिक दोनों प्रकार का हो सकता है। उपवास में आत्म शुद्धि की भावना प्रबल रहती है। उपवास के लिए समय एवं पात्रता का विचार करते हुए, गाँधी जी ने लिखा है – "सत्याग्रही को उपवास अन्तिम उदेश्य के तौर पर ही करना चाहिए, यानी तब, जबकि अपनी शिकायत दूर करवाने के और सब उपाय विफल हो गए हों । उपवास में अनुकरण के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। जिसमें आन्तरिक शक्ति न हो, उसे उपवास का विचार भी नहीं करना चाहिए । उपवास सफलता की आसक्ति रखकर कभी न किया जाये। x x x शुद्ध उपवास में स्वार्थ, क्रोध, अविश्वास या अधीरता के लिए कोई जगह नहीं हो सकती । इसलिए जिसने यम-नियमादि का पालन करके अपना जीवन शुद्ध न कर लिया हो, उसे सत्याग्रह के हेतु से किया जाने वाला उपवास नहीं करना चाहिए ।"[84] उपवास से क्या

होता है, इस सम्बंध में गाँधी जी लिखा है – उपवास किसी शरीर पर असर डालने के लिए नहीं किया जाता । वह तो दिल को छूता है, इसीलिए उसका सम्बंध आत्मा से है। उपवास करने वाले में इसके लिए नैतिक योग्यता है या नहीं यह जुदा बात है।''[85]

गाँधी जी द्वारा किए गए उपवासों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है– क. विशुद्ध शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से किए गए उपवास । ख. विशुद्ध प्रायश्चित परक उपवास । ग. हृदय परिवर्तन निमित्त किए गए उपवास । गाँधी जी का विरोधी की सुषुप्त सूक्ष्म भावनाओं को जागृत करने के अभिप्राय से किया गया उपवास 10 फरवरी, 1943 को हुआ था । उन्होंने अपने उपवासों से अस्पृश्यता तथा साम्प्रदायिकता की समस्याओं का सराहनीय समाधान किया था । इस प्रकार सत्याग्रह मर्म भेदी-शस्त्र है। इन शस्त्रों का प्रयोग अधिकारी ही कर सकते हैं। गाँधी जी प्रत्येक सत्याग्रही से कुछ मूलभूत गुणों की अपेक्षा करते हैं। सत्याग्रहियों को प्रशिक्षित और संगठित करने के लिए गाँधी जी ने अनेक सत्याग्रही आश्रमों की स्थापना की। इनमें दक्षिण अफ्रीका की फिनिक्स संस्था, जोहन्सवर्ग का टालस्टाय फार्म, अहमदाबाद का सत्याग्रह आश्रम और सेवा गाँव का 'सेवाग्राम' सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। अतः गाँधी जी ने न केवल सत्याग्रह के विविध रूप बतलाए, अपितु उन्हें व्यवहारिक रूप देने के भी स्तुत्य प्रयास किए । युद्ध और क्रांति के विकल्प के रूप में, राजनीतिक क्षेत्र में, सत्याग्रह के साधन का आविष्कार, गाँधी जी की महान देन है। इनका यह अस्त्र अनेक समस्याओं के समाधान, आत्याचार के विरोध तथा उचित मार्गों की प्राप्ति का एक प्रभावशाली साधन है ।

2. घ गाँधीवादी चेतना के रचनात्मक सूत्र :

महात्मा गाँधी जानते थे कि भारतीय समाज में अनेक न्यूनताँ ; विषमताएँ तथा बुराइयाँ हैं, जिनका निराकरण अत्यन्त आवश्यक है। वे जानते थे कि जब तक भारतीय समाज की बुराइयों का निराकरण नहीं हो जाता, तब तक भारतवासियों के लिए स्वराज्य प्राप्ति कोई महत्त्व नहीं रखती । वे प्रायः कहा करते थे ''मनुष्य की मूलभूत एकता आध्यात्मिकता पर

आधारित है – आध्यात्मिक दृष्टि से एक मनुष्य को भी लाभ हो, तो सारा संसार उसके साथ लाभान्वित होगा, और यदि एक भी मनुष्य गिरे, तो उस हद तक सारा संसार गिरता है।"[86] सम्पूर्ण भारत के सुधार हेतु, उन्होंने विविध कदम उठाए, जिन्हें गाँधीवादी चेतना के रचनात्मक सूत्रान्तर्गत् रखा गया । इन सूत्रों में प्रमुख हैं – साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, मद्य-निषेध, खादी, ग्रामोद्योग, गाँवों की सफाई, बुनियादी तालीम, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्रियों की उन्नति, स्वास्थ्य एवं सफाई की शिक्षा, मातृभाषा-प्रेम, राष्ट्रभाषा-प्रेम, आर्थिक समानता, किसानों का संगठन, मजदूरों का संगठन, विद्यार्थियों का संगठन, आदिवासियों की सेवा, कोढ़ियों की सेवा आदि । वर्त्तमान युग में जीवन का पर्यवेक्षण करने पर, गाँधी जी के इन सूत्रों से सम्बन्धित विचारों और कार्यक्रम का महत्त्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है ।

2. घ i. साम्प्रदायिक एकता :

गाँधीवाद के विभिन्न रचनात्मक सूत्रों के अन्तर्गत् साम्प्रदायिक एकता का विशेष महत्त्व है । गाँधी जी ने भारत की कल्पना एक ऐसे पक्षी के समान की थी, जिसके दोनों पंखों के रूप में हिन्दू और मुसलमान थे । उनकी धारणा थी कि ये दोनों ही जातियाँ अपनी वैचारिक संकुचितता के कारण हठधर्मीता पर अड़ी हुई हैं और अनेक प्रकार के दुखार्थो से ग्रस्त हैं। उन्होंने दोनों को ही फटकारते हुए कहा था कि – "हिन्दुओं को यह आशा करना कि इस्लाम, ईसाई, सिक्ख और पारसी धर्म हिन्दुस्तान से निकाल दिये जा सकेंगे एक निरर्थक स्वप्न है। इसी तरह मुसलमानों की भी यह उम्मीद करना कि किसी दिन अकेले उनके कल्याणगत इस्लाम का राज्य सारी दुनिया में हो जायेगा कोरा ख्वाब है। पर अगर इस्लाम के लिए एक ही खुदा को तथा उसके पैगम्बरों की अनन्त परम्परा को मानना काफी हो तो हम सब मुसलमान हैं, इसी तरह हम सब हिन्दू और ईसाई भी हैं ।"[87]

साम्प्रदायिक मतभेद कैसे हुए, इस विषय में कहा गया है कि "साम्प्रदायिक समस्या भारत के कट्टरपंथियों और मध्यवर्गीय लोगों के साथ मिलकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद,

जिन प्रतिक्रियावादी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता था, उनकी उत्पन्न की हुई चीज थी''[88] गाँधी जी का यह विश्वास अक्षरशः सत्य था कि जब तक देश के भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय एकता के पवित्र सूत्र में बंध नहीं जाते, तब तक स्वराज्य प्राप्त करना और उसे टिकाये रखना नितान्त असम्भव है। उन्होंने इस वैमनस्य को मिटाने का भरसक प्रयत्न किया। वे चाहते थे कि सभी जातियों के बीच रोटी-बेटी का व्यवहार हो और विभिन्न धर्म, संस्कृतियों के मध्य भेद-भाव मिट जाए। उन्होंने सभी जातियों को सदैव समान दृष्टि से देखा। उनके अनुसार– हिन्दू-मुसलमान दोनों ही भारत के समान अधिकारी और दोनों सहोदर भाई के समान है। उन्हें दुःख इस बात का था कि दोनों के मध्य, धर्म के नाम पर मतभेद है। हिन्दू मुस्लिम एकता से उनका तात्पर्य कदापि यह नहीं था कि दोनों अपना धर्म का प्रचार न करें। इस सम्बंध में उन्होंने स्पष्ट लिखा है – ''यदि अपने अन्दर का आदेश मानकर कोई 'आर्य समाजी' प्रचारक अपने धर्म और मुसलमान अपने धर्म का उपदेश करते हैं और उससे हिन्दू-मुस्लिम एकता खतरे में पड़ जाती है तो कहना चाहिए कि यह एकता बिल्कुल ऊपरी है।''[89]

साम्प्रदायिक एकता का अर्थ स्पष्ट करते हुए, बारडोली काँग्रेस अधिवेशन के अवसर पर उन्होंने कहा था – ''साम्प्रदायिक एकता की स्थापना की पहली शर्त यह है कि प्रत्येक काँग्रेस जन चाहे, वह किसी धर्म का क्यों न हो, अपने आप में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई यहूदी आदि का यानी एक शब्द में प्रत्येक हिन्दू और गैर-हिन्दू का प्रतिनिधित्व करे । इसके लिए प्रत्येक काँग्रेस जन को दूसरे धर्म के व्यक्तियों के साथ मित्रता कायम करनी और बढ़ानी चाहिए । दूसरे धर्मों के प्रति इतना ही आदर रखना चाहिए जितना कि अपने धर्म के प्रति''[90] उनके सामने स्पष्ट था कि देश, समाज और जनता का कल्याण साम्प्रदायिक एकता में निहित है ।

2. घ ii. अस्पृश्यता निवारण :

महात्मा गाँधी ने अछूतपन की हिन्दू रूढ़ि को कभी स्वीकार नहीं किया । उनके

अनुसार – अस्पृश्यता जाति व्यवस्था की ऊपज नहीं है । वह उस ऊँच-नीच की भावना का परिणाम है, जो हिन्दू धर्म में घुस आई है और उसे भीतर ही भीतर कुतर रही है। वे वर्ण व्यवस्था के समर्थक थे परन्तु उन्हें वर्ण व्यवस्था के आधार पर ऊँच-नीच का भेद मान्य नहीं था। उन्होंने लिखा है – "वर्ण का नियम आदमियों की अपनी स्वभाविक सीमाएँ तो मानता है, लेकिन वह उनमें ऊँचे और नीचे का भेद नहीं मानता।"[91] प्रत्येक व्यक्ति में चारों वर्ण होने चाहिए । इसलिए वे एक शूद्र के कार्य को उतना ही महत्त्वपूर्ण मानते थे, जितना कि ब्राह्मण या पुरोहित के कार्य को । उनके आश्रम में भंगी को ही नहीं, सभी को सफाई का काम करना पड़ता था । उनका विचार था, सामाजिक व्यवस्था की श्रेष्ठता के लिए आवश्यक है कि राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में प्रत्येक मनुष्य को समान अधिकार दिए जाएँ । केवल वर्ण के आधार पर किसी व्यक्ति को अधिक श्रेष्ठ समझना अनुचित है। उसी प्रकार किसी व्यक्ति को उसका वंशानुगत व्यवसाय अपनाने के लिए विवश करने का कोई प्रश्न नहीं उठता । वे अस्पृश्यता पर आक्रमण करके जातीय प्रथा को शुद्ध करना और सच्चे वर्णाश्रम धर्म को पुनर्जीवित करना चाहते थे । उन्होंने लिखा है – "ज्यों ही अस्पृश्यता नष्ट होगी, जाति व्यवस्था स्वयं शुद्ध हो जाएगी ; यानि मेरे सपनों के अनुसार वह चार वर्ण व्यवस्था का रूप ले लेगी । ये चारों वर्ण एक-दूसरे के पूरक और सहायक होंगे ; उनमें से कोई किसी से छोटा-बड़ा नहीं होगा ; प्रत्येक वर्ण हिन्दू धर्म के शरीर के पोषण के लिए समान रूप से आवश्यक होगा ।"[92] अस्पृश्यता नामक कुरीति को समाप्त करने के लिए वे विभिन्न जातियों में मेल-जोल तो बढ़ाना चाहते थे पर जोर जबरदस्ती के पक्ष में नहीं थे । उन्होंने लिखा है – "वर्णाश्रम में अन्तर्जातीय विवाहों या खान-पान का निषेध नहीं है, लेकिन इसमें कोई जोर-जबरदस्ती भी नहीं हो सकती । व्यक्ति को इस बात का निश्चय करने की पूरी छूट मिलनी चाहिए कि वह कहाँ शादी करेगा और कहाँ खायेगा ।"[93]

वर्ण व्यवस्था के भेद-भाव की तरह जातीय भेद-भाव की भी आलोचना की है –

''जात-पाँत के बारे में मैंने बहुत बार कहा है कि आज के अर्थ में, मैं जात-पाँत को नहीं मानता । यह समाज का फालतू अंग है और तरक्की के रास्ते में रूकावट जैसा है। इसी तरह आदमी-आदमी के बीच ऊँच-नीच का भेद भी मैं नहीं मानता । हम सब पूरी तरह बराबर हैं।''[94] इस वर्ण भेद के कारण हिन्दू धर्म की बहुत क्षति हुई है– ''इस कारण, जाति, कौम, धर्म इत्यादि भेदों की दृष्टि से किया गया चौका-भेद और पंक्ति-भेद धर्म का लक्षण नहीं है । इस भेद की भावना से हिन्दू धर्म की हानि हुई है ।''[95]

गाँधी जी अहिंसक समाज की स्थापना चाहते थे । उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता समाज में परिव्याप्त हिंसा का ही एक रूप थी । वे इस अमानवीय, अधार्मिक, अशास्त्रीय, पापपूर्ण एवं घृणित प्रथा को हिन्दू समाज का अंग नहीं मानते थे । उनका मत था – अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग नहीं है, बल्कि उसमें घुसी हुई सड़न है, बहम है, पाप है और उसको दूर करना हर एक हिन्दू का धर्म है, उसका परम कर्तव्य है। यदि यह अस्पृश्यता समय रहते नष्ट न की गई तो हिन्दू समाज और हिन्दू धर्म का अस्तित्व ही संकट में पड़ जायेगा ।''[96]

अस्पृश्यता के निवारण के लिए उन्होंने हरिजनोद्धार को प्राथमिकता दी । उनके अनुसार – 'हरिजन' का अर्थ है (हरि का जन), ''भारत में चार करोड़ अथवा उससे भी ज्यादा भारतीय हिन्दुओं से अधिक अनाथ, असहाय तथा निर्बल और कौन हो सकता है, जिन्हें 'अस्पृश्य' माना जाता है ? अतः यदि किसी को सचमुच 'हरि का जन' कहा जा सकता है तो निश्चय में असहाय, अनाथ तथा धिक्कारे गए लोग ही हैं।''[97] उन्होंने विस्तृत अर्थ में हरि की कृपा के पात्र व्यक्ति को ही हरिजन कहा है। उन्होंने लिखा है – ''जब सवर्ण हिन्दू अपने आन्तरिक विश्वास के कारण अपनी मर्जी से अस्पृश्यता से छूटकारा पा सकेंगे, तब हम सब लोग हरिजन कहलाएँगे। क्योंकि मेरी तुच्छ राय में तब सवर्ण ईश्वर की कृपा के पात्र हो जायेंगे और तब वे सचमुच 'प्रभु के जन' कहे जा सकेंगे ।''[98] उनके मन में अस्पृश्यों के प्रति

प्रगाढ़ प्रेम था । वे पुनर्जन्म में हरिजन बनने के आकांक्षी थे – यदि मुझे फिर से जन्म ग्रहण करना पड़े तो मुझे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र के रूप में नहीं प्रत्युत अति शूद्र के रूप में जन्म मिलना चाहिए ।[99] उन्होंने स्पष्ट घोषणा की थी कि अस्पृश्यता धर्म का अंग है तो वह धर्म ही परित्याज्य है । ऐसे धर्म का विनाश ही अच्छा है – "यदि हिन्दू धर्म ने अस्पृश्यता को नहीं त्यागा तो उसका मर जाना ही श्रेयस्कर है ।"[100] इस अस्पृश्यता की भावना से अछूतों का मन्दिरों, स्कूलों आदि सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश निषेध था । इस अमानुषिक व्यवहार के फलस्वरूप उनमें जो वैमनस्य उत्पन्न हो रहा था, उसका लाभ समाज और देश के शत्रुओं को हो रहा था । सन् 1932 में भारत का संविधान बनाते समय, ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने निर्वाचन के लिए अछूतों को हिन्दुओं से पृथक् करने का कुचक्र रचा । गाँधी जी ने 21 दिन का उपवास रखकर अपने प्रणों की चिन्ता न करते हुए 'पुना समझौता' द्वारा अंग्रेजों के कुचक्र को विफल किया । सार्वजनिक सभा को उद्‌बोधित करते हुए कहा – "हम में से प्रत्येक को अपने हृदय से अस्पृश्यता के पाप को धो डालना चाहिए । इसका मतलब यह है कि हमें ऊँच-नीच के सारे भेदभाव भुला देने चाहिए । हम सब एक ही परम पिता की सन्तान हैं और इसलिए हमारे बीच ऊँच-नीच का भेद नहीं हो सकता । हरिजन को वही अधिकार और सुविधाएँ होनी चाहिए जो अन्य हिन्दुओं को ।"[101] हरिजनोद्धार के कार्य को वे उपकार की जगह कर्त्तव्य समझने पर बल देते थे – "हमें हरिजनों के पास प्रायश्चित या कर्जदार की भावना से पहुँचना चाहिए, न कि अपात्रों के प्रति उदारता दिखाने वाले उनके आश्रयदाता या साहूकार बनकर ।"[102]

गाँधी जी को पूर्ण विश्वास था कि यदि सवर्णों के हृदय से अस्पृश्यता का विष निकल गया तो हरिजनों का उत्थान स्वयंमेव होने लगेगा – "उन्नति मार्ग में बाधक अस्पृश्यता का कृत्रिम अंगार दूर होते ही उसी क्षण हरिजनों की आर्थिक, नैतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक अवस्था उन्नत हो जायेगी ।"[103]

2. घ iii. मद्य-निषेध :

गाँधी जी की जीवन-पद्धति अनुशासन को विशेष महत्त्व देती है। इसलिए उन्होंने शराब, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू आदि मादक वस्तुओं के प्रयोग का निषेध किया । वे शराब को देश के विकास के लिए एक बहुत बड़ा रोड़ा और नैतिक दृष्टि से भयंकर पाप मानते थे। इस सामाजिक एवं नैतिक बुराई के सम्बंध में उनका विचार था कि – ''शराब की आदत मनुष्य की आत्मा का नाश कर देती है और उसे धीरे-धीरे पशु बना डालती है, जो माँ और बहन में भेद करना भूल जाता है।''[104] शराब को एक भयंकर बुराई मानते हुए कहा है– ''शराब और नशीले द्रव्य शैतान के दो हाथ हैं - जिसके प्रहारों से वह अपने असाहाय गुलामों को बेनाम और विमूढ़ बना डालता है।''[105] उन्होंने अपनी पुस्तक "Drink and Drugs" में लिखा है – ''मैं मदिरापान को चोरी और शायद वेश्यागमन से भी अधिक निंदनीय समझता हूँ। क्या, वह इन दोनों की जननी नहीं है ?''[106] इससे हाने वाली हानि के विषय में लिखा है– ''शराब पीने से शरीर और आत्मा की बेहद दुर्दशा होती है । शराब जहर से भी ज्यादा बुरी है । जहर से शरीर ही मरता है । शराब से तो आत्मा सो जाती है । खुद अपने ऊपर काबू पाने का गुण ही मिट जाता है।''[107]

मद्य पर विश्वव्यापी दृष्टि अपनाते हुए गाँधी जी ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए – ''जो राष्ट्र मदिरा पान की आदत का शिकार है, उसके सामने विनाश के सिवा और कोई बात नहीं हैं ।''[108] इतिहास में इस बात के कितने ही प्रमाण हैं कि इस बुराई के कारण कई साम्राज्य मिट्टी में मिल गए हैं । ''प्राचीन भारतीय इतिहास में हम जानते हैं कि वह पराक्रमी जाति जिसमें श्रीकृष्ण ने जन्म लिया था इसी बुराई के कारण नष्ट हो गई। रोम साम्राज्य के पतन का एक सहायक कारण, निस्संदेह यह बुराई ही थी ।''[109]

गाँधी जी ने शराबबन्दी की ओर ध्यान दिया और सन् 1920 से ही इसे अपने

कार्यक्रम का प्रमुख अंग बनाया। देश के आजाद हो जाने के पश्चात् तो उन्होंने इस पर काफी जोर दिया और कहा कि – देश के स्वतंत्र हो जाने के बाद भी देश में शराब चलती है तो यह देश के लिए कलंक है। उन्होंने इसके निषेध हेतु निम्न सुझाव दिए है :

1. जरूरी कानून बनाया जाए ।
2. लोगों को नशे की बुराई समझायी जाए ।
3. शराब की दुकानों की जगह खाने-पीने की चीजों की दुकाने कायम करनी चाहिए और वहाँ किताबों, अखवारों और खेलों के रूप में मन बहलाव के निर्दोष साधन रखने चाहिए ।
4. शराब, अफीम बगैरह बेचने से जो आमदनी हो, वह सब लोगों को नशीली चीजें न बरतने की बात समझाने में खर्च की जानी चाहिए ।
5. नशीली चीजों की बिक्री से होने वाली आमदनी को राष्ट्र के बच्चों की शिक्षा में या या जनता को फायदा पहुँचाने वाले दूसरे कार्यों में खर्च करना पाप है । सरकार को ऐसी आमदनी राष्ट्र-निर्माण के कामों में खर्च करने का लालच छोड़ना चाहिए ।

उनका मानना था कि सिर्फ कानून पास करके ही इस बुराई को खत्म नहीं किया जा सकता । नशा करने वाले चाहे जहाँ से नशीली चीजें लाकर जरूर खायेंगे, पीयेंगे । इनके बनाने और बेचने वाले काला बाजार बंद करने के लिए एकदम तैयार नहीं होंगे। इसलिए उपर्युक्त सभी बातें एक साथ की जानी चाहिए । उनका कहना था – "शराब छोड़ देने से काम करने वालों का शरीरिक बल और नैतिक बल दोनों बहुत बढ़ जाते हैं और उनकी कमाने की ताकत भी बढ़ जाती है ।"[110]

शराब का सेवन करना बीमारियों को खुलेआम निमंत्रण देने जैसा है। या कहें, यह शराब अन्य बीमारियों से अधिक भयानक होती है – शराब और अन्य मादक द्रव्यों से होने

वाली हानि कई अंशों से मलेरिया आदि बीमारियों से होने वाली हानि की अपेक्षा असंख्य गुनी ज्यादा है ।''[111]

गाँधी जी द्वारा प्रवर्तित असहयोग और सविनय अवज्ञा आंदोलनों में शराब की दुकानों पर धरना देकर इस कुप्रथा का विरोध करने का प्रयत्न किया गया । मद्य-पान की हानियों से वे इतने चिंतित रहते थे कि पूर्ण मद्य-निषेध को समग्र देश में यथाशीघ्र लागू करना चाहते थे – ''यदि मुझे एक घंटे के लिए भारत का 'डिटेक्टर' बना दिया जाए तो मेरा पहला काम यह होगा कि शराब की दुकानों को बिना मुआवजा दिए बंद करवा दिया जाए ।''[112] उन्होंने भारत सरकार से भी इस पर प्रतिबन्ध लगाने को कहा था । गाँधीवादी चेतना में सुख, समृद्धि एवं शान्ति के लिए मादक द्रव्यों के विरूद्ध, आन्दोलन और कानून से निषिद्ध ठहराना ही प्रमुख उद्देश्य है। इसका विरोध करना जनता और सरकार दोनों का नैतिक दायित्व है।

2. घ iv. खादी :

खादी को भारत की समस्त जनता की एकता, आर्थिक स्वतंत्रता और समानता का प्रतीक मानकर गाँधीवादी चेतना के रचनात्मक सूत्रों में सम्मिलित किया गया । गाँधी जी खादी को स्वदेशी के सिद्धान्त का आवश्यक और अधिकतम महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष और समाज के प्रति स्वदेशी धर्म के पालन का पहला आवश्यक कदम समझते थे ।[113] नेहरू जी के शब्दों में ''खादी हिन्दुस्तान की आजादी की पोशाक है।'' गाँधी जी ने लिखा है – 'स्वराज्य के समान ही खादी भी राष्ट्रीय जीवन के लिए आवश्यक है। जिस तरह स्वराज्य को हम नहीं छोड़ सकते उसी तरह खादी को भी नही छोड़ सकते । खादी को छोड़ना मानो भारतीय जनता को बेच देना, भारतवर्ष की आत्मा को बचे देना है।''[114]

खादी के प्रचार के लिए गाँधी जी ने चरखा संघ खोलने की सलाह दी । उन्होंने चरखे को महत्त्व देते हुए बताया कि चरखा करोड़ों मूक लोगों के साथ एकता स्थापित करने का एक प्रतीक और साधन है । वे कहते हैं – ''मैं जितनी बार चरखे पर सूत निकालता हूँ

उतनी ही बार भारत के गरीबों का विचार करता हूँ। भूख की पीड़ा से व्यथित ही ईश्वर है। उसे जो रोटी देता है वही उसका मालिक है। जिनके हाथ-पैर सही सलामत हैं उन्हें दान देना अपना और उनका दोनों का पतन करना है। उन्हें तो किसी न किसी धंधे की जरूरत है और वह धंधा जो करोड़ों को काम देगा, केवल हाथ-कताई का ही हो सकता है। इसलिए मैंने कताई को प्रायश्चित का यज्ञ बताया है और मैं जानता हूँ कि जहाँ गरीबों के लिए शुद्ध और सक्रिय प्रेम है, वहाँ ईश्वर भी है, इसलिए चरखे पर मैं जो सूत निकालता हूँ उसके एक-एक धागे में मुझे 'ईश्वर' दिखाई देता है।''[115] यह चरखा लंगड़े की लाठी, भूखे का दाना और निर्धन स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करने वाला किला है। चरखे की महिमा का वर्णन करते हुए गाँधी जी ने कहा – ''चरखा वह मध्यवर्ती सूर्य है, जिसके गिर्द सब तारागण घूमते रहते हैं, अगर चरखे की वृत्ति फैल गई, तो सिर्फ चरखा ही थोड़े रहने वाला है, उसकी छाया में असंख्य उद्योगों को स्थान मिलेगा, उसकी सुगन्ध से सारी दुनिया सुगन्धित हो जायेगी ।''[116]

गाँधी जी चरखे के माध्यम से खादी का कार्यक्रम चलाकर विदेशी आयात को हानि नहीं पहुँचाना चाहते थे वरन् उन विदेशी व्यवसायी जिन्होंने भारत के पैतृक गुणों को नष्ट किया तथा उसके आर्थिक संगठन को विच्छृंखल किया, उन्हें भारत की एकता से अवगत कराकर, पैतृक धरोहर का अस्तित्व कायम करना चाहते थे । वे प्रत्येक सत्याग्रही का यह परम कर्त्तव्य मानते थे कि वे खादी को लोकप्रिय बनाने के लिए घर-घर चरखा और खादी का प्रचार करें । एक सत्याग्रही के आवश्यक गुणों में उसका खादी धारण करना भी आवश्यक मानते थे । ग्रामों को स्वावलम्बी बनाने के लिए भी खादी का प्रयोग अनिवार्य मानते थे क्योंकि खादी और दूसरे ग्रामोद्योग परस्पर एक दूसरे पर अवलम्बित हैं । इस सम्बंध में उनका मत है – ''गाँवों को स्वावलम्बी बनाने के लिए और उनके पुनः संगठन के लिए आवश्यक है कि केवल खादी ही नहीं दूसरे लाभप्रद घरेलू धन्धे फिर से सजीव किए जायें । खादी और दूसरे ग्रामोद्योग एक दूसरे पर आश्रित हैं । बिना खादी के दूसरे धन्धे पनप नहीं सकते और न

दूसरे आवश्यक धंधों के पुनरूद्धार के बिना खादी ही संतोषजनक उन्नति कर सकती है ।

खादी को अहिंसा की दृष्टि से भी उत्तम माना गया है क्योंकि मिलों द्वारा बने कपड़ों में हिंसा होने की संभावना रहती है। बड़ी-बड़ी मशीनों पर व्यक्ति को काम करना पड़ता है। जिससे जीवन के लिए सदैव डर लगा रहता है। वहाँ अनेक व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न कार्यो में कुशलता दिखानी पड़ती है। यदि परिस्थिति आकना दुर्भाग्यवश उन्हें उनके कार्य से च्युत कर दिया जाये तो जीवन यापन करना दुष्कर हो जाता है। मिल द्वारा बने वस्त्र मानव जीवन की सरलता एवं सहजता का अन्त कर देते हैं तथा लाखों व्यक्तियों का व्यवसाय कुछ एक व्यक्तियों तक ही सीमित होकर रह जाता है । दूसरी ओर खादी मिल के उत्पादित वस्त्रों से मूल्य में अवश्य अंतर रहता है, लेकिन मंत्रिकरण, नगरीकरण आदि की समस्या नहीं रहती क्योंकि व्यक्ति घर बैठे ही यह कार्य कर सकता है तथा जीवन में सरलता एवं सहजता बनी रहती है । गाँधी जी खादी के कार्यक्रम को केवल भारत तक ही सीमित नहीं रखना चाहते थे वरन् इसे विश्व स्तर पर लाना चाहते थे । उनकी इच्छा थी कि भारत वैज्ञानिक रूप से उन्नतिशील देश बने ।

2. घ v. ग्रामोद्योग :

ग्रामोद्योग को रचनात्मक सूत्र में रखकर गाँधी जी देश को यन्त्रीकरण के दोषों से मुक्त करवाना चाहते थे । गाँधी जी ने ग्रामोद्योग को कहीं कुटीर-उद्योग और कहीं दस्तकारी भी कहा है । औद्योगिक सभ्यता की विसंगतियों पर विचार करते हुए ग्रामोद्योग को प्रमुखता दी । भारतीय ग्रामों की दरिद्रता का उन्मूलन करने, नगर और गाँव की आय में विषमता दूर करने, भौतिकता के स्थान पर आध्यात्मिकता और स्वेदशी लाने, स्वदेशी उद्योगों का संरक्षण एवं विकास करने के लिए उन्होंने ग्रामोद्योगों के पुनरूद्धार का प्रयत्न किया । व्यापारिक एवं नगरीय सभ्यता की जगह एक नवीन विकेन्द्रीकृत ग्रामीण सभ्यता का निर्माण करना चाहते थे जिससे विकसित नगरों द्वारा असंख्य गाँवों का शोषण न हो और प्रत्येक गाँव स्वावलम्बी बन

जाए । वे कहते थे – "यदि मेरा स्वप्न पूरा हो जाए तो भारत के सात लाख गाँवों में से हर एक गाँव समृद्ध प्रजातंत्रात्मक बन जाएगा । उस प्रजातंत्र का कोई भी व्यक्ति अनपढ़ न रहेगा, काम के अभाव में कोई बेकार नहीं रहेगा बल्कि किसी न किसी कमाऊ धन्धे में लगा रहेगा।"[117] अपने सपने को पूर्ण करने के लिए स्वयंसेवियों का आह्वान भी किया जिन्हें वे गाँवों में ही बसाना चाहते थे ।

गाँधी जी ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने विभिन्न स्वदेशी उद्योगों के विकास पर बल दिया । वे समयानुकूल साधनों के आधार पर प्राचीन उद्योगों का पुनरूत्थान और नवीन साधनों का प्रचार करना चाहते थे । उन्होंने गाँव के कृषि, कताई, बुनाई, पिराई, लोहारी, बढ़ईगिरी आदि और नवीन में कागज बनाना, मधुमक्खी एवं रेशम के कीड़ों का पालन, चमड़ा चमकाना, खिलौने बनाना आदि धंधों का अधिकाधिक प्रचार किया । उन्होंने कताई और बुनाई को विशेष स्थान प्रदान किया । उन्होंने चरखा एवं खादी उद्योग को आर्थिक उन्नति का मुकुट माना । उसमें स्वावलम्बन, अहिंसा, विकेन्द्रीकरण आदि गुण ओत-प्रोत हैं। यह भूखे नंगों को भोजन और कपड़ा देने वाला तो है ही समाज को अर्थ सम्पन्न करने वाला भी है। उन्होंने "मैं" मेरा, चरखा और महिलाओं के विषय में कहा है – "आप जरा मेरे इस चरखे को परखकर देखिए । आपको जितना मैं लिखा सकता हूँ, उससे बहुत अधिक यह सिखा सकता है। यह आपको धैर्य सिखायेगा, उद्योग करना सिखायेगा और सादगी की सीख देगा । यह चरखा भारत के करोड़ों क्षुधार्त्त मानवों के लिए मुक्ति का प्रतीक है ।"[118]

खादी कताई, बुनाई आदि उद्योग धंधों द्वारा स्वावलम्बन की योजना पर उन्होंने लिखा है – " चरखा प्रचार के सिलसिले में बुनाई की मर्यादा समझने एवं निश्चित करने की जरूरत है। कातना करोड़ों का काम है, बुनना लाखों का । कताई काम सदा ही विशेष रूप से एक सर्वमान्य धंधा रहेगा, मगर बुनाई हर हालत में मुख्यतः एक स्वतन्त्र धंधा बनकर

रहेगी । कताई के पुनरूद्धार पर करोड़ों का आर्थिक और नैतिक जीवन निर्भर है इस काम को सफल बनाने के लिए जुलाहों, व्यापारियों वगैरा, तमाम राष्ट्रीय अंगों के विकास की आवश्यकता है। कताई के काम की सफलता में धर्म-जागृति और आत्म-शुद्धि सन्निहित है।"[119] स्वावलंबन गाँधीवादी चेतना का मूलमंत्र है। उसी मंत्र के प्रयोग हेतु उद्योग-धंधों पर बल दिया गया । इससे सभी की आधारभूत आवश्यकताएँ पूर्ण होगीं तथा सभी आत्मनिर्भर होंगे । आत्मनिर्भरता में ही सुख होता है ।

2. घ vi. गाँवों की सफाई :

गाँधी जी गाँवों के साथ ही समस्त देश को सुधारने का स्वप्न देखते थे । क्योंकि देश की 80% जनता गाँवों में ही रहती है, अतः उनके सुधार के बिना देश का सुधार असम्भव है। देश में राष्ट्रीय एवं सामाजिक सफाई की भावना का विकास करने के लिए वे गाँवों को केन्द्र स्थल बनाना चाहते थे । इससे पूर्व जो कूड़े के ढेर के रूप में थे, उन्हें स्वास्थ्य और सफाई का ज्ञान देना चाहते थे । इसके लिए सर्वप्रथम आवश्यकता थी लोगों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो । लोग सही मायनों में अपने अस्तित्व को जानें । स्वास्थ्य, शिक्षा के प्राथमिक नियमों का ज्ञान उन्हें हो । उनका घर या कोठरी जहाँ माता-पिता, बच्चे यहाँ तक कि पशु भी एक साथ रहते हैं, उनमें सुधार हो । गाँव के लोगों की आर्थिक उन्नति हो, इसके लिए गाँधी जी ने खेती के साथ-साथ उद्योग धंधे करने का प्रस्ताव दिया ।

गाँधी जी ने अंध-विश्वास एवं रूढ़ियों से जकड़े अनगिनत गाँवों का दौरा किया । वे उन लोगों के साथ रहे और उन्हें बताया कि अंधविश्वासों से तुम्हारा मानसिकविकास तो रुकता ही है, साथ ही आर्थिक स्थिति भी डाँवाडोल हो रही है। वे गाँववासियों को सरल केश विन्यास एवं सात्विक भोजन करने का सुझाव देते साथ ही मादक द्रव्यों से दूर रहने को कहते थे। उनका गाँवों की सफाई के अभियान का लोगों में व्यापक प्रभाव पड़ा । लोग इसे सामाजिक कार्य समझकर करने लगे । रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों से दूर रहने लगे । शिक्षा के

प्रचार के साथ ही लोग सफाई एवं स्वास्थ्य के प्रति सजग हो गए ।

2. घ vii. बुनियादी तालीम :

गाँधीवादी चेतना के रचनात्मक सूत्रों में बुनियादी तालीम को भी रखा गया है, जिसका उद्देश्य सभी को आत्म-निर्भर बनाना था – "गाँधी जी ने तत्कालीन शिक्षा-पद्धति के दोषों को दूर करने के लिए बुनियादी शिक्षा प्रणाली को देश के समक्ष प्रस्तुत किया । यह शिक्षा-प्रणाली सत्य, अहिंसा, नैतिकता और मानव-प्रतिष्ठा के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें समस्त शिक्षा किसी न किसी उद्योग या हस्तकला को बुनियाद बनाकर दी जाती है। कताई, बुनाई, बढ़ईगिरी, लोहे का काम, चमड़े का काम, खेती, बागवानी आदि सभी विषयों का सच्चा और उपयोगी ज्ञान हो सकता है । इसी कारण इस शिक्षा का नाम बुनियादी शिक्षा रखा गया है।"[120] इस पद्धति में बच्चों को शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के सभी अवसर प्रदान किए गए हैं ।

इसके द्वारा बाल्यावस्था से ही व्यक्ति की रचनात्मक प्रवृत्तियों एवं सामाजिक उद्देश्यों पर बल देकर एक सहकारी समाज का निर्माण करना है। सन् 1920 में गाँधी जी ने अंग्रेजी-शासन-कालीन विद्यालयों का बहिष्कार करने की घोषणा की थी । वे देश के आधार स्तम्भ बालक-बालिकाओं को पुस्तकीय कीड़ा मात्र नहीं बनने देना चाहते थे। पुस्तकीय ज्ञान से ही कल्याण संभव है, इसे उन्होंने कभी नहीं स्वीकार किया । उन्हें दुःख था कि प्रचलित प्राथमिक शिक्षा में ग्रामवासियों एवं नगर निवासियों की माँगों पर विचार नहीं किया गया है। जिस देश में अस्सी प्रतिशत कृषि प्रधान जनसंख्या है, उसमें शिक्षा को केवल साहित्यिक बना देना बालक, बालिकाओं के भावी जीवन में हस्तकार्यों को अयोग्य बना देना मात्र है। वे बच्चों को परिश्रम का महत्त्व सीखाना चाहते थे ।

शारीरिक श्रम पर बल देते हुए उन्होंने लिखा है – चूँकि हमारा अधिकांश समय अपनी रोजी कमाने में लगता है, इसलिए हमारे बच्चों को बचपन से ही इस प्रकार के प्रिरिश्रम

का गौरव सीखाना चाहिए । हमारे बालकों की पढ़ाई ऐसी होनी चाहिए ; जिससे वे मेहनत का तिरस्कार न करने लगे । कोई कारण नहीं कि क्यों एक किसान का बेटा, किसी स्कूल में जाने के बाद खेती के मजदूर के रूप में आजकल की तरह निकम्मा बन जाए । यह अफसोस की बात है कि हमारी पाठशालाओं के लड़के शरीरिक श्रम को तिरस्कार की दृष्टि से चाहे न देखते हों पर नापसन्दगी की नजर से जरूर देखते हैं ।''[121]

इस प्रकार के दोषों को दूर करने के लिए उन्होंने श्रम का महत्त्व सिखाने वाली प्राथमिक शिक्षा पर जोर दिया । उनका मानना था कि इस देश में जहाँ लाखों आदमी भूखे मरते हैं, बुद्धि पूर्वक किया जाने वाला श्रम ही सच्ची प्राथमिक शिक्षा है। प्रारंभिक शिक्षा के रूप में गाँधी जी बच्चों को हस्तकला के रूप में लघु उद्योगों की शिक्षा देना चाहते थे ताकि बच्चों में आरम्भ से ही शारीरिक श्रम के प्रति आदर और सम्मान भावना जागृत हो । हस्त के काम को ही इस सारी योजना का केन्द्र बिन्दु माना गया । बुद्धि की सच्ची शिक्षा हाथ, पैर, आँख, कान, नाक आदि शरीर के अंगों के ठीक अभ्यास और शिक्षण से ही हो सकती है। फलतः इस शिक्षा योजना में हाथों को अक्षर लिखना सिखाने के पहले औजार चलना सिखाया जाता है ।''[122]

'बुनियादी तालीम' आर्थिक स्थिति को ही मजबूत बनाती है । शिक्षा का खर्च शिक्षा द्वारा ही वहन किया जा सकता है। बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देने का आदर्श भी पूर्ण किया जा सकता है। बच्चों को इस प्रकार की शिक्षा देने से ''हमारे गाँवों में लगातार बढ़ रही नाश की प्रक्रिया रूकेगी और ऐसे न्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था की नींव पड़ेगी, जिसमें अमीरों और गरीबों के अस्वाभाविक विभेद की गुंजाइश नहीं होगी और हर-एक को जीवन मजदूरी और स्वतंत्रता के अधिकारों का आश्वासन दिया जा सकेगा ।''[123] बुनियादी शिक्षा पद्धति क्रान्तिकारी होने के साथ-साथ उसका क्षेत्र भी अति व्यापक है। इस शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसी अहिंसक, शोषण मुक्त समाज व्यवस्था का निर्माण करना है, जिसमें स्वतंत्रता, समानता

और मातृभाव के आदर्श पूर्णतः प्राप्त किए जा सकें।

2. घ viii. प्रौढ़ शिक्षा :

गाँधीवादी चेतना के रचनात्मक सूत्रों में प्रौढ़ शिक्षा को भी रखा गया है। गाँधी जी का मन्तव्य था कि जनसाधारण में फैली हुई व्यापक निरक्षरता भारत का कलंक है, वह मिटना ही चाहिए । बेशक साक्षरता की मुहिम का आरम्भ और अन्त वर्णमाला के ज्ञान के साथ ही नहीं हो जाना चाहिए । लिखने, पढ़ने और अंक गणित का शुष्क ज्ञान देहातियों के जीवन का स्थायी अंग न आज है और न कभी हो सकता है। उन्हें ऐसा ज्ञान देना चाहिए, जिसका उन्हें आज उपयोग करना पड़े । उन पर थोपा नहीं जाना चाहिए । उसकी उन्हें भूख होनी चाहिए। आजकल उन्हें जो कुछ मिलता है, वह ऐसा है, जिसकी न तो उन्हें आवश्यकता है, न कदर। ग्रामवासियों को गाँव का गणित, गाँव का भूगोल, गाँव का इतिहास और साहित्य का वह ज्ञान सिखाइए, जिसे उन्हें रोज काम में लेना पड़े अर्थात् चिट्ठी पत्री लिखना और पढ़ना बताइए, वे इस ज्ञान को जुटा कर रखेंगे और आगे की मंजिलों की तरफ बढ़ेंगे ।''[124]

उन्होंने लिखा है अगर बड़ी उमर के स्त्री-पुरुषों को तालीम देने या पढ़ाने का काम मेरे जिम्में हो, तो मैं अपने विद्यार्थियों को देश के विस्तार और उसकी महत्ता का बोध कराकर, उनकी पढ़ाई शुरू करूँ । हमारे देहातियों के ख्याल में उनका गाँव ही उनका समूचा देश होता है । जब वे किसी दूसरे गाँव को जाते हैं, तो इस तरह बातें करते हैं, मानों उनका अपना गाँव ही उनका समूचा देश या वतन हो । ''हिन्दुस्तान'' तो उनके ख्याल से भूगोल की किताबों में बरता जाने वाला एक शब्द मात्र है । हमारे गाँवों में कितना घोर अज्ञान घुसा हुआ है, इसका हमें अंदाज भी नहीं है ।''[125]

2. घ ix स्त्रियों की उन्नति :

गाँधीवादी चेतना में स्त्रियों की उन्नति की भावना का अत्यधिक महत्त्व है। उन्होंने स्त्री के लिए कहा है – ''स्त्री क्या है, साक्षात न्यायमूर्ति है । जब कोई स्त्री किसी काम में

जी जान से लग जाती है, तो पहाड़ को भी हिला देती है।"[126] परन्तु पुरुष वर्ग ने अपने स्वर्थो के फलस्वरूप, नारी को घर की चारदीवारी में बन्द कर, उसे सभी अधिकारों से वंचित कर दिया । बापू ने इस परिस्थिति पर विचार करते हुए लिखा है – "पुरुष, स्त्री जाति को एक ओर दबाता है, अज्ञात रखता है, उसकी उपेक्षा और निन्दा करता है, दूसरी ओर उसे अपने को तृप्त करने का साधन मात्र मानता है और इसके लिए वह स्त्री को गुड़िया की तरह अपनी इच्छा के अनुसार नचाता है, उसकी खुशामद करता है और इस प्रकार स्त्री की भोगवृत्ति को भड़काने का प्रयत्न करता है। इन दोनों प्रकारों से केवल स्त्री जाति का ही नहीं, बल्कि स्वयं पुरुष और समूचे समाज का भारी अधःपतन हुआ है । स्त्री जाति के प्रति तुच्छता का जो भाव पुष्ट हुआ है, वह हिन्दू समाज में घुसी एक सड़ांघ है, धर्म का अंग नहीं। धार्मिक पुरुष भी इस प्रकार के तिरस्कार भाव से मुक्त नहीं हैं, इससे पता चलता है, कि यह सड़ांघ कितनी गहरी चली गई है।"[127]

गाँधी जी के अनुसार प्रकृतिगत भेद होने से स्त्री-पुरुषों में अन्तर अवश्य होता है– "फिर भी दोनों में कोई ऊँचा या नीचा नहीं है, बल्कि ये दोनों समाज के समान महत्त्व और प्रतिष्ठा प्राप्त अंग हैं ।"[128] उन्होंने स्त्री को निम्नतर मानने वाले परम्परागत संस्कार का उच्छेद आवश्यक माना है – "पुरुष की अपेक्षा स्त्री का दर्जा और अधिकार कम है, इस संस्कार को निर्मल कर देना चाहिए ।"[129] वेसमानाधिकार की इस धारणा को वैधानिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर कार्यान्वित करना चाहते थे । उन्होंने, स्त्रियों के विकास में बाधक सामाजिक प्रथाओं का खुलकर विरोध किया । शुद्धता की आड़ में प्रदा-प्रथा को बनाए रखने का उन्होंने विरोध किया था । उन्होंने लिखा है – "पवित्रता कुछ परदे की आड़ में रखने से नहीं पनपती । बाहर से यह लादी नहीं जा सकती । परदे की दीवार से उसकी रक्षा नहीं की जा सकती । उसे तो भीतर से ही पैदा होना होगा ।"[130] इसी प्रकार उन्होंने बाल-विवाह, अनमेल विवाह, बलात वैधव्य, देवदासी प्रथा, सती प्रथा, दहेज प्रथा आदि के विरूद्ध

दृढ़तापूर्वक आवाज उठाई । इन कुप्रथाओं को दूर करने के लिए स्त्री-शिक्षा के महत्त्व का समर्थन किया – "पुरुष की भाँति स्त्री को भी शिक्षा का पूरा अधिकार है और पुरुष को जैसी शिक्षा पाने की अनुकूलता हो, वैसी स्त्री को भी होनी चाहिए ।"[131]

स्त्रियों की हीन अवस्था देखकर गाँधी जी अत्यन्त व्यथित थे । उन्होंने स्त्रियों को मानसिक बल धारण करने का आदेश दिया और कहा कि यदि वे अपने आपको निर्बल मानने की प्रवृत्ति का त्याग कर दें, तो उनका उद्धार हो सकता है। वे नारी को अबला न मानकर लोक हित करने वाली शक्ति के रूप में देखते हैं – "स्त्री अबला नहीं है बल्कि अपनी शक्ति को पहचाने तो पुरुष से अधिक सबला है।"[132] उन्होंने लिखा है – "स्त्री जाति में जो अपार शक्ति रही है, उसका कारण उसकी विद्वता अथवा शरीर बल नहीं है, बल्कि उसका मुख्य कारण उसमें पाई जाने वाली तीव्र श्रद्धा, वेगवती भावना, त्याग की भावना तथा सहन करने की शक्ति है। स्त्री स्वभाव से ही कोमल और धार्मिक वृत्ति की है और जहाँ पुरुष श्रद्धा खोकर ढीला पड़ जाता है अथवा गलत हिसाब करने में उलझ जाता है, वहाँ स्त्री धीर बनकर गति से सीधे मार्ग पर जाती है ।"[133] वे स्त्री शक्ति का महत्त्व बताते हुए कहते हैं – यदि स्त्री जाति अपने बल और कार्य-क्षेत्र की दिशा को भली-भाँति समझ ले, तो वह अपने को कभी पुरुष की आश्रित न माने और पुरुष तथा उसके कार्यों का अनुकरण करना ही उसका आदर्श बने । वह पुरुष को रिझाने अथवा ललचाने के लिए अपने शरीर को सजाये नहीं बल्कि अपने हृदय के गुणों से ही सुशोभित होने का प्रयत्न करें ।"[134]

गाँधी जी ने स्त्रियों को निर्भयता का संदेश देते हुए लिखा है – "असल चीज तो यह है कि स्त्रियाँ निर्भय बनना सीख लें । मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि कोई भी स्त्री जो निडर और जो यह दृढ़तापूर्वक यह मानती है कि उसकी पवित्रता ही उसके सतीत्व की सर्वोत्तम ढाल है, उसका शील सर्वथा सुरक्षित है। ऐसी स्त्री के तेजमात्र से पशु-पुरुष चौंधिया जायेगा और लाज से गढ़ जाएगा ।"[135]

आधुनिक नारी से वे असंतुष्ट थे । उसके प्रति अपना असंतोष प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा – "आजकल की लड़की को अनेक मजनुओं की लैला बनना प्रिय है। वह दुस्साहस को पसन्द करती है। आजकल की लड़की वर्षा या धूप से बचने के उद्देश्य से नहीं बल्कि लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए तरह-तरह के भड़कीले कपड़े पहनती हैं। ऐसी लड़कियों के लिए कोई अहिंसात्मक मार्ग नहीं है।"[136] उन्होंने सादगी को ही सुन्दरता कहा । मैसूर में होने वाली स्त्री सभा के अवसर पर सोने-चाँदी से लदी बहनों को देखकर बापू ने कहा था – "नारी का सच्चा आभूषण तो उसका चरित्र है, जो पवित्रता और आत्मा की विकसित सुन्दरता से बढ़ता है।"[137] इस प्रकार गाँधी जी ने स्त्रियों की उन्नत्ति हेतु प्रेरक प्रसंग तथा आध्यात्मिक विचारों को उनके सम्मुख रखा । उनकी यह नारी-भावना भारतीय संस्कृति के अनुरूप भी है और युगानुरूप भी ।उन्होंने नारी को स्वतंत्रता प्रदान करने का समर्थन किया । वे नारी को स्वावलम्बी, आत्म-निर्भर, आर्थिक पराधीनता से मुक्त होने के लिए सदैव प्रेरित करते रहे । वे स्त्री-पुरुष स्पर्धा के विरोधी थे क्योंकि वे दोनों को एक दूसरे का पूरक मानते थे ।

2. घ x. स्वास्थ्य एवं सफाई की शिक्षा :

गाँधी जी का व्यक्तित्व बहुमुखी था । वे समाज सुधारक, राजनीतिज्ञ, धार्मिक एवं कुशल शिक्षाविद् थे। वे लोगों को स्वास्थ्य के प्रति सजग रहने को कहते थे। उनका विचार था कि बौद्धिक स्वच्छता के साथ-साथ शारीरिक सफाई एवं अपने आस-पास की सफाई भी अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए उनका सुझाव था कि व्यक्ति अपने आवास के स्थान की सफाई करने के साथ-साथ दूसरों की सुविधा का भी ध्यान रखे, यह न करे कि अपने घर को साफ कर कूड़ा-करकट दूसरों के द्वार पर डाल दें । इससे सार्वजनिक स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। प्रत्येक देशवासी का कर्त्तव्य है कि वह अपने निवास की सफाई करते समय मुहल्ले की सफाई का ध्यान रखे । मुहल्ले की सफाई के साथ-साथ नगर, प्रान्त एवं राष्ट्र

की सफाई का पूरा-पूरा ध्यान रखे ।

स्वास्थ्य के विषय में गाँधी जी का मानना था कि मनुष्य को नैसर्गिक चिकित्सा पर अधिक विश्वास करना चाहिए अपेक्षाकृत डाक्टरी चिकित्सा के । यही कारण है कि उन्होंने बहुत से असाध्य रोगों की चिकित्सा के लिए प्राकृतिक औषधियों का आश्रय लिया था। स्वास्थ्य की रक्षा एवं दीर्घायु हेतु वे माँस-मछली आदि न खाने की सलाह दिया करते थे। मनुष्य को शुद्ध सात्विक भोजन करना चाहिए । सदैव अन्न ही न ग्रहण कर फल-फूल आदि का भी सेवन करना चाहिए । नशीले एवं मादक द्रव्यों का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए । सप्ताह में एक दिन व्रत करना चाहिए, जो शारीर एवं आत्मा दोनों के लिए लाभप्रद है। अच्छे स्वास्थ्य हेतु नियमित एवं निर्धारित भोजन नियत समय पर करना चाहिए। प्राकृतिक सौन्दर्य को बनाये रखने के लिए उसमें किसी अप्राकृतिक तत्त्व को मिलाकर उसे कृत्रिम नहीं बनाना चाहिए । भोजन में उनके प्राकृतिक गुण एवं तत्त्वों को बनाए रखने के लिए यथासंभव सादा बनाकर अथवा उबालकर ही ग्रहण करने का सुझाव देते थे ।

देश की जनसंख्या समस्या का हल करने के लिए एवं माता-पिता तथा शिशु के स्वास्थ्य रक्षा हेतु ब्रह्मचर्य व्रत पालन की शिक्षा भी देते थे। उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा को जीवन का मार्ग माना । इस सम्बन्ध में वे कहते थे, इसके लिए ईश्वर का सार्थक विश्वास आवश्यक है, केवल जीवित श्रद्धा ही इस मार्ग पर चलाने में सहायक है। उनका विचार था – ''ईश्वर की अनुभूति यह असंभव कर देती है कि मन में कोई भी अशुद्ध या दुःख का विचार न आए । जहाँ विचार की शुद्धता है वहाँ रोग असंभव है।''[138] अपने जीवन को सुखमय, स्वस्थ एवं प्रसन्न बनाने हेतु मानव द्वारा प्रकृति के नियमों का पालन अत्यावश्यक है।

2. घ xi. मातृभाषा प्रेम :

गाँधी जी की रचनात्मक प्रतिभा अन्य क्षेत्रों के समान शिक्षा एवं भाषा के क्षेत्र में भी मुखरित हुई । यद्यपि उन्होंने नियमित रूप से कभी किसी शिक्षण-संस्था में कार्य नहीं

किया तथापि उनके सम्पर्क में आने वाले अनेक देशी एवं विदेशी शिक्षा शास्त्रियों ने उन्हें स्वयंभू शिक्षा-शास्त्री कहा है। उस समय अंग्रेजों द्वारा प्रचारित शिक्षा प्रणाली व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति का साधन मात्र बनकर रह गई थी । वह व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास न करके एकांगी विकास करती थी । उनके अनुसार – इस निकम्मी प्रणाली का उद्देश्य भारतीयों को शरीर, मन और आत्मा से बौना बनाने का रहा है ।[139] इस शिक्षा-पद्धति के फलस्वरूप शिक्षित और अशिक्षित व्यक्तियों के मध्य विद्यमान खाई बढ़ती जा रही थी। इस शिक्षा से भारतीय युवक अपने ही देश में विदेशी हो गए हैं । अपनी भाषा का त्याग कर विदेशी भाषा से मोह कर रहे हैं। वे मानते थे कि – "इस प्रणाली से मस्तिष्क का विकास तो हो जाता है परन्तु मन और शरीर की उपेक्षा होती है।"[140]

गाँधी जी इस बात से भी अत्यन्त असंतुष्ट थे कि देश की शिक्षण-संस्थाओं में शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा है। जिससे मातृभाषा का अस्तित्व खतरे में है। मातृभाषा की उपेक्षा देख वे कठोर भाषा में कहते हैं – "अगर मेरे हाथ में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिए दी जाने वाली हमारे लड़कों और लड़कियों की शिक्षा बन्द कर दूँ और सारे शिक्षकों और प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरन्त बदलवा दूँ या उन्हें बर्खास्त करा दूँ। मैं पाठ्य पुस्तकों की तैयारी का इन्तजार नहीं करूँगा । वे तो माध्यम के परिवर्तन के पीछे-पीछे अपने आप चली आयेंगी । यह एक ऐसी बुराई है, जिसका तुरन्त इलाज होना चाहिए ।"[141] अपनी मातृभाषा से उन्हें अगाध प्यार था । "मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियाँ क्यों न हो, मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूँगा, जिस तरह अपनी माँ की छाती से नवजात शिशु। वही मुझे जीवनदायिनी दूध दे सकती है।

मैं अंग्रेजी को भी उसकी जगह प्यार करता हूँ । लेकिन अँग्रेजी उस जगह को हड़पना चाहती है, जिसकी वह हकदार नहीं, तो मैं उससे सख्त नफरत करूँगा । .... रूस ने बिना अंग्रेजी के विज्ञान में इतनी उन्नति की है । आज अपनी मानसिक गुलामी की

वजह से ही हम यह मानने लगे हैं कि अँग्रेजी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता । मैं इस चीज को नहीं मानता ।"[142] उनका विश्वास मातृभाषा में ही था – "उच्च से उच्च शिक्षा के लिए स्वभाषा की शिक्षा का माध्यम होनी चाहिए।" केवल ज्ञान संचय के लिए ही विदेशी भाषाओं का अध्ययन बहुत श्रेष्ठ है, परन्तु शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिए । इससे बालक का मातृभाषा प्रेम तो बढ़गा ही साथ ही साथ पाठ्यक्रम को समझने में भी सरलता होगी । जन्म से ही बालक जब एक भाषा को सुनता चला आता है तो स्वाभाविक है कि उसी भाषा में उसे यदि कठिन से कठिन दृष्टांत भी समझाया जाएगा तो वह सरलता से समझ लेगा ।

2. घ xii. राष्ट्रभाषा प्रेम :

गाँधी जी इस बात से अत्यन्त व्यथित थे कि, भारत जैसे विशाल और महान् राष्ट्र की कोई राष्ट्रभाषा नहीं है । राष्ट्रभाषा, राष्ट्र की प्राण है इसलिए प्रत्येक राष्ट्र की एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिए । प्रत्येक प्रान्त में अलग-अलग भाषाएँ बोली जाती है और सबको एक करने वाली प्रचलित भाषा अँग्रेजी है जो विदेशी भाषा है। इतने बड़े राष्ट्र की राष्ट्रभाषा एक विदेशी भाषा है। यह देश के लिए अपमान की बात है। गाँधी जी ने राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किए हैं । उनकी दृष्टि में अगर हमें एक राष्ट्र होने का दावा सिद्ध करना है तो हमारी अनेक बातें एक सी होनी चाहिए । भिन्न-भिन्न धर्म और सम्प्रदायों को एक सूत्र में बाँधने वाली हमारी एक संस्कृति है। उसी प्रकार हमें एक सामान्य भाषा की भी आवश्यकता है । इस देश की राष्ट्रभाषा कौन सी हो इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है – "हिन्दुस्तानी अर्थात् हिन्दी और उर्दू दोनों के मिश्रण से बनी हुई हिन्दी देहली, लखनऊ, प्रयाग जैसे नगरों में आम लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा हिन्दुस्तान की भाषा है, शिक्षित मनुष्य को यह भाषा शुद्ध रीति से बोलने, लिखने और पढ़ने आनी चाहिए ।"[144] उनका स्पष्ट मत था कि अँग्रेजी राष्ट्रभाषा न तो हो सकती है और न होनी चाहिए ।

गाँधी जी ने अपने सामाजिक जीवन के आरम्भ में ही प्रवास के समय इस समस्या को जानकर विचार करना आरम्भ कर दिया था । सर्वप्रथम गुजरात शिक्षा परिषद् सम्मेलन के अवसर पर बोलते हुए उन्होंने हिन्दी के महत्त्व को स्पष्ट किया था । सन् 1918 में वे हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति बने और हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार की व्यापक योजना बनाई । इस योजना को कार्यान्वित सन् 1918 में किया गया फलस्वरूप शिक्षकों के दल के साथ अपने पुत्र देवदास को भी हिन्दी के प्रचार के लिए दक्षिण भारत भेजा । वे स्वयं भी वहाँ गए और लोगों में राष्ट्रभाषा की भावना को दृढ़ किया। वे हिन्दी काप्रचार करने वाले प्रचारकों के साथ पत्राचार करते रहते थे । उन्हीं में एक पत्र जो उन्होंने एक प्रचारक को लिखा था – "जब तक तमिल प्रदेश के प्रतिनिधि सचमुच हिन्दी के बारे में सख्त नहीं बनेंगे, तब तक महासभा में से अँग्रेजी का बहिष्कार नहीं होगा । मैं देखता हूँ कि हिन्दी के बारे में करीब-करीब खादी के जैसा हो रहा है । वहाँ जितना सम्भव हो आन्दोलन किया करो । आखिर में तो हम लोगों की तपश्चर्या और भगवान की जैसी इच्छा होगी वैसा ही होगा ।"[145] अपनी आत्मकथा के आरम्भ में ही उन्होंने लिखा है – "अब तो मैं यह मानता हूँ कि भारतवर्ष के उच्च शिक्षा क्रम में मातृभाषा के उपरान्त राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए भी स्थान होना चाहिए ।"[146]

गाँधी जी देवनागरी में लिखी हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे । हरिजन में उन्होंने लिखा है – "हिन्दुस्तानी हमारी राष्ट्रभाषा है या होगी ऐसी घोषणाएँ यदि हमने सच्चाई के साथ की है तो फिर हिन्दुस्तानी की पढ़ाई अनिवार्य करने में कोई बुराई नहीं है। मातृभाषा खतरे में है, ऐसा शोर मचाया जाता है, वह या तो अज्ञानवश मचाया जाता है या उसमें पाखंड है।"[147] उन्होंने इस समस्या के यथोचित निरीक्षण के लिए समितियाँ भी बनाई – "इस समस्या का निरीक्षण करने हेतु अनेकानेक समितियों की प्रतिस्थापना की गयी तथा उन्हें 1936 ई. में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की संज्ञा से अभिहित

किया गया । गाँधी जी की समस्त योजनाओं में हिन्दी का यह प्रचार कार्य सबसे अधिक सफल हुआ । वह हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय एकता का प्रतीक स्वीकार करते थे तथा स्वदेशाभिमान को स्थिर रखने के लिए हमें हिन्दी सीखना आवश्यक है।"[148]

2. घ xiii. आर्थिक समानता :

गाँधीवादी चेतना में आर्थिक समानता का वह रूप हमारे समझ में नहीं आता जो समाजवाद, मार्क्सवाद, साम्यवाद आदि विचार दर्शनों में आता है। यह सर्वमान्य है कि अहिंसा गाँधी का प्राण है। अतः किसी भी प्रकार के सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनैतिक परिवर्तन के लिए गाँधीवाद में बल प्रयोग वर्जित है। अतः आर्थिक समानता के क्षेत्र में भी गाँधी जी आत्म-शुद्धि, हृदय-परिवर्तन, अस्तेय, ट्रस्टीशिप, विकेन्द्रीकरण, अपरिग्रह, शरीर-श्रम, खादी, स्वदेश आदि का आश्रय ग्रहण कर समाज में पूँजीवादी व्यवस्था का अन्त करने का प्रस्ताव रखते हैं। वह समाज में पूँजीपतियों का अस्तित्व बनाए रखने के साथ-साथ उनके हृदय-परिवर्तन की आकांक्षा करते थे। उनका विश्वास था कि पूँजीपति भी अपने श्रम का अन्य श्रमिकों की भांति पारिश्रमिक ग्रहण कर ले, शेष सम्पत्ति का अपने को स्वामी नहीं वरन् ट्रस्ट मात्र समझे । अपने धन का व्यय समाज के कल्याण क्षेत्र में अधिक से अधिक करे अर्थात् धन का प्रत्यार्पण कर दे ।

यह कार्य सिद्धान्त रूप में जितना सरल दिखाई देता है, वास्तव में उतना सरल है नहीं। इसके लिए सादा जीवन का आदर्श बताया अर्थात् हर व्यक्ति अपनी आवश्यकताएँ इस सीमा तक सीमित कर ले कि कम से कम धन में उनका जीवन सरलता से बिताया जा सके । यह समाज की उस परिस्थिति में ही संभव है, जब व्यक्ति की आत्मा की शुद्धि हो जाए। आत्मा-शुद्धि के लिए उन्होंने अस्तेय व्रत का विधान किया जो सत्याग्रही का गुण विशेष है । इस गुण से समाज की कई अन्य विषमताएँ भी दूर होती हैं, लोगों में परस्पर सौहार्द्र एवं सम्मान की भावना का विकास होता है।

2. घ xiv. किसानों का संगठन :

'संघे शक्तों कलयुगे' के अनुसार गाँधी जी प्रत्येक भारतवासी को संगठन के सूत्र में बाँधना चाहते थे । वे किसानों का संगठन इसलिए चाहते थे, क्योंकि वे जानते थे कि भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है । यहाँ कि 80 प्रतिशत जनता गाँव में निवास करती है, जिसका मुख्य व्यवसाय खेती है। यह 'जनता शब्द' से मुख्य आशय किसान वर्ग से है। चम्पारन, बारडोली और बीरसाय के अहिंसक आन्दोलन किसानों की समस्याओं एवं उनकी कठिनाइयों को उचित रूप से दूर करने तथा शोषण का अन्त हो, इस उद्देश्य से किए गए थे। गाँधी जी का विश्वास था कि – "किसानों की कठिनाइयों को तथा असंबंधित राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नयी शक्ति का उपयोग शोषण करना है और सत्याग्रही नेताओं को तो उससे विशेष रूप से पृथक् रहना चाहिए ।"[149] वह किसानों का संगठन कर उनमें सहयोग एवं भाईचारे का भाव उत्पन्न करना चाहते थे । अन्याय का डटकर विरोध भी संगठन में रहकर ही किया जा सकता है ।

2. घ xv मजदूरों का संगठन :

मजदूर संगठन के सम्बन्ध में गाँधी जी अहमदाबाद के मजदूरों के संगठन को सम्पूर्ण देश के लिए आदर्श मानते थे । मजदूर जो रचात्मक कार्य करते हैं, उनके सम्बंध में उनका मानना था इन श्रमिकों का उद्देश्य नैतिक और मानसिक सुधार होना चाहिए । जिससे न केवल श्रमिक अपनी आर्थिक स्थिति ही सुधारने में समर्थ हो वरन् उनके स्वामित्व का अधिकार भी प्राप्त कर लें । पूँजी उनकी स्वामी नहीं बल्कि वे पूँजी के स्वामी बन जाएँ । अधिकार कर्त्तव्य के स्रोत हैं। अतः मजदूरों को अपने कर्त्तव्य सदैव ध्यान में रखना चाहिए । इस पर गाँधी जी का विचार था कि – "मजदूरों को अपना संगठन पृथक् रखना चाहिए। इस संगठन के लिए आवश्यक है कि यह श्रमिकों को सामान्य और वैज्ञानिक शिक्षा के लिए रात्रि पाठशालाओं और उनके शिशुओं के लिए बुनियादी स्कूलों का प्रबन्ध करे। इन श्रमिक सभाओं

के श्रमिकों को अहिंसक हड़ताल की वैज्ञानिक शिक्षा देनी चाहिए । मजदूर सभा का यह भी कर्त्तव्य है कि वह श्रमिकों के बच्चों और स्त्रियों की चिकित्सा का भी प्रबन्ध करे ।

2. घ xvi. विद्यार्थियों का संगठन :

विद्यार्थी राष्ट्र निर्माता एवं राष्ट्र के धरोहर होते हैं । अतः उनके समुचित विकास में सहयोग करना घर, परिवार, समाज, देश का कर्त्तव्य है। विद्यार्थी भी अपनी क्षमता को पहचानकर क्षमतानुकूल राष्ट्र हित कार्य करें । इन्हीं भावों से ओत-प्रोत हो गाँधी जी ने विद्यार्थियों के राजनैतिक दलों में आने पर इसका विरोध किया था। वे चाहते थे कि विद्यार्थियों को राजनैतिक दलों, अनुचित दबाव डालने वाले साम्प्रदायिकता से एकदम पृथक् रहना चाहिए । उनका कर्त्तव्य है कि वह सूत कातें, खादी धारण करें और स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करें । अपनी मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा का सम्मान करते हुए उसकी साहित्य समृद्धि में लगे रहें । संगठन बनाकर प्राणों की चिंता किए बिना साम्प्रदायिक झगड़ों का अहिंसकरीति से विरोध करके उसका अंत करना चाहिए ।

2. घ xvii. आदिवासियों की सेवा :

गाँधीवाद में सेवा का सर्वोच्च महत्त्व है। गाँधी जी निर्धन की सेवा को ही ईश्वर भक्ति मानते थे ।''[150] उनकी यह भी धारणा थी कि अपनी शुद्ध सेवा के बल पर जो पद और सत्ता हमें मिलती है वह हमारे हृदय को उच्च बनाती है। जो सत्ता सेवा के नाम पर केवल बहुमत के बल पर प्राप्त की जाती है, वह केवल भ्रमजाल है। सेवा करने वाले के लिए न सत्ता, न पद, न शान की दरकार होती है।''[151] सेवा को अपना धर्म सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए स्पष्ट रूप से घोषित किया है कि – ''मेरा धर्म सिद्धान्त है ईश्वर की और मनुष्य जाति की सेवा, पर एक भारतवासी के नाते मैं भारत की और एक हिन्दू के नाते भारतीय मुसलमानों की सेवा न करू तो न ईश्वर की सेवा कर सकता हूँ न मनुष्य जाति की । ऐच्छिक सेवा का अर्थ शुद्ध प्रेम है ।''[152]

सेवा में विवेकशीलता भी आवश्यक है इस लिए उन्होंने माना कि सेवा उसी की करनी चाहिए, जिसे उसकी आवश्यकता हो । इसके विपरीत जिसे सेवा की आवश्यकता न हो, उसकी सेवा करना मेरा है। उनके शब्दों में – "सेवा का भी ओट हो सकता है। मोह मात्र छोड़ने से ही सच्ची सेवा हो सकती है। क्या अपंग आदमी भक्ति नहीं कर सकते ? मन से भी सेवा की जा सकती है ।"[153] इसी क्रम में उन्होंने आदिवासियों की सेवा करना भी अपना एवं सभी सत्याग्रहियों का परम कर्त्तव्य स्वीकार किया । ये आदिवासी भी हमारे राष्ट्र के अंग हैं। उनकी उपेक्षा करके व्यक्ति देश का अपमान करते हैं, जो एक कलंक समान है। अतः बिना भेद-भाव व घृणा किए उनकी सेवा करनी चाहिए ।

2. घ xviii. कोढ़ियों की सेवा :

'सेवा' गाँधी दर्शन का महान अंश है। सेवा का आश्रय लेकर ही एक गाँधीवादी सत्याग्रही समाज में सफलतापूर्वक अपने कर्त्तव्यों का पालन कर सकता है। सेवा के अन्तर्गत् गाँधी जी मानवता की सेवा, पशुओं, यहाँ तक कि प्रकृति की सेवा का पाठ पढ़ाना चाहते थे । उनका जीवन इसका एक उदाहरण है। वे जीवन भर सेवा कार्यों में रत रहे, चाहे वह व्यक्ति किसी भी जाति-धर्म अथवा समाज का हो । वह रोग की भयंकरता को देखकर भी भयभीत नहीं होते थे। कोढ़ जैसे छूत के रोग को देखकर भी चित्त विचलित नहीं होता था। एक कोढ़ी की सेवा जिसका वर्णन उनकी आत्मकथा में प्राप्त होता है, एक महीने तक की । वे उसे अपने घर लाए, उसके घावों को धोया, महरम पट्टी की और लगभग एक माह इसी प्रकार नित्य उसकी सेवा करते रहे । कुछ स्वास्थ्य लाभ होने पर ही उसे जाने दिया । वह प्रत्येक मानव के दिल में यह बात बिठाना चाहते थे कि, समाज के स्वस्थ व्यक्ति का पालन-पोषण जितना आवश्यक है, समाज के गर्हित अंगों की भी सेवा करना, उससे अधिक आवश्यक है। कोढ़ियों की सेवा के कई उदाहरण गाँधी जी के जीवन से जुड़े हैं। श्री परचुरे शास्त्री के कुष्ठ रोग से पीड़ित होने पर जब गाँधी जी उनके दर्शनार्थ आश्रम आए तो उनकी सेवा की । अपने

हाथों से मालिश करना, दवाई लगाना आदि उनकी सेवा देखकर बहुत से लोग उनसे प्रेरित भी हुए और वे भी कोढ़ियों की सेवा करने लगे ।

इस सेवा भावना के मूल में गाँधीवादी चेतना की सहृदयता, सरलता एवं समाज से उपेक्षित मानवता के प्रति प्रेम का प्रचार करना था ।

गाँधीवादी चेतना विभिन्न क्षेत्रीय विचारधाराओं में विशिष्ट स्थान रखती है। सत्य और अहिंसा इसके मूल तत्त्व हैं, जो भारतीय जीवन को प्राचीनकाल से अनुप्राणित किए हुए हैं। इसके मुख्य सिद्धान्तों में वर्गसहयोग, विकेन्द्रीकरण, ट्रस्टीशिप, हृदय-परिवर्तन और सत्याग्रह है। सत्य-अहिंसा जहाँ एक ओर व्यक्ति को आत्म-बल प्रदान करते हैं, वहाँ वर्ग-सहयोग, विकेन्द्रीकरण, ट्रस्टीशिप, हृदय-परिवर्तन और सत्याग्रह से व्यक्ति की आत्म-शक्ति का विकास होता है। गाँधीवाद के तत्त्वों और सिद्धान्तों को व्यवहारिक जीवन में सफलता पूर्वक अरोपित करने के लिए जिन रचनात्मक सूत्रों को रखा गया उन सूत्रों से जहाँ एक ओर दार्शनिक पक्ष स्पष्ट होते हैं, वहाँ दूसरी ओर उनके धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक तथा मनोवैज्ञानिक पक्षों का भी परिचय मिलता है ।

गाँधीवादी चेतना मानसिक चिन्तन की वह सतत् प्रवाहमान धारा है, जो मताग्रहों एवं रूढ़ियों से निरपेक्ष नूतन सर्जनात्मक संकल्पना द्वारा संचरित होती है । यह एक गतिशील प्रक्रिया है, जो जीवन को विकास की ओर उन्मुख करने के लिए प्रेरित करती है ।

संदर्भ :

1. गाँधी और गाँधीवाद : डॉ. बी. पट्टभिसीतारमैय्या, पृ. 26
2. हरिजन, 26 मार्च, 1936, पृ. 15
3. गाँधी और गाँधीवाद : डॉ. बी. पट्टभिसीतारमैय्या, पृ. 28
4. बापू और मानवताः कमलापति त्रिपाठी, पृ. 165
5. हमारा गाँधीवाद आज कहाँ है : सम्पूर्णानन्द, पृ. 19
6. गाँधीवाद की रूपरेखा : रामनाथ सुमन, पृ. 6
7. महात्मा गाँधी : रामनाथ सुमन, पृ. 188
8. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 125
9. मास्टर गाँधी : के . एम. मुंशी, पृ. 4
10. काँग्रेस का इतिहास : डॉ. बी. पट्टाभिसीतारमैय्या, पृ. 56
11. गाँधी जी की बरसी पर जवाहरलाल नेहरू के भाषण से
12. मुण्डकोपनिषद्, 3/6
13. महाभारत, 5/3
14. मनुस्मृति, 4/25
15. आत्मकथा : महात्मा गाँधी : पृ. 36
16. वही, पृ. 117
17. यंग इण्डिया, 17 नवम्बर 1921, पृ. 15
18. आत्मकथा : महात्मा गाँधी, पृ. 240
19. दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रह का इतिहास : महात्मा गाँधी, पृ. 137
20. आत्मकथा : महात्मा गाँधी, पृ. 505
21. सर्वोदय तत्त्व-दर्शन : गोपीनाथ धवन, पृ. 105
22. हिन्दी नव जीवन, 19 अक्टुबर, 1929, पृ. 25
23. हरिजन, 25 मई, 1935, पृ. 114
24. वही, पृ. 116
25. गाँधी विचार दोहन : किशोरीलाल मशरूवाला, पृ. 15
26. गाँधी साहित्य (भाग - 5) : पृ. 119
27. सर्वोदय तत्त्व दर्शन : गोपीनाथ धवन, पृ. 6
28. यंग इंडिया, 19 नवम्बर, 1921, पृ. 21
29. आत्मकथा : महात्मा गाँधी , पृ. 88
30. गाँधी और गाँधीवाद : डॉ. बी. पट्टाभिसीतारमैय्या, पृ. 69
31. आत्मकथा महात्मा गाँधी : पृ. 505
32. हरिजन, 1 मई, 1937, पृ. 89

33. यंग इंडिया, 4 जून, 1925, पृ. 191
34. गाँधी विचार दोहन : किशोरीलाल मशरूवाला, पृ. 16
35. सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, पृ. 192
36. अहिंसा दर्शन : बलभद्र जैन, पृ. 59
37. आत्मकथा : अनु. काशीनाथ त्रिवेदी, पृ. 378
38. सत्याग्रह मीमांसा : रंगनाथ दिवाकर, पृ. 32
39. बुद्ध और अहिंसा : महात्मा गाँधी, पृ. 141
40. हिन्दी नव जीवन, 12 मार्च 1925, पृ. 15
41. वही, 28 अक्टूबर, 1936, पृ. 10
42. हरिजन सेवक, 16 मार्च, 1925, पृ. 15
43. प्रजातंत्र, पृ. 12
44. हरिजन, 5 सितम्बर 1936, पृ. 237
45. वही, 14 मार्च, 1936, पृ. 37
46. वही, 24 जून 1936, पृ. 174
47. वही, 1सितम्बर, 1940, पृ. 271
48. वही, 21 अक्टूबर, 1939, पृ. 13
49. वही, 12 अक्टूबर, 1935
50. हरिजन सेवक, 5 सितम्बर, 1936
51. प्रेमचंद और गाँधीवाद : रामदीन गुप्त, पृ. 85
52. वर्ग सहयोग, पृ. 2
53. वही, पृ. 5
54. वही, पृ. 5
55. वही, पृ. 3
56. हिन्दी नवजीवन, 2 सितम्बर, 1929
57. वर्ग सहयोग, पृ. 5
58. हरिजन, 19 जनवरी, 1942, पृ. 5
59. वही, 30 दिसम्बर, 1939, पृ. 391
60. अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया : दादा धर्माधिकारी, पृ. 216
61. योजना 15 अक्टूबर, 1994, पृ. 8
62. आत्मशुद्धि, पृ. 34
63. यजुर्वेद, 40/1
64. पूर्वोदय, 15 जुलाई, 2010, पृ. 5

65. हरिजन, 16 दिसम्बर, 1939, पृ. 376
66. वही, 28 जनवरी, 1939, पृ.443
67. वही, 10 दिसम्बर, 1938, पृ. 369
68. वही, 8 जुलाई, 1939, पृ. 193
69. वही, 25 मार्च, 1939, पृ. 64
70. गाँधी विचार दोहन : किशोरी लाल मशरूवाला, पृ. 33
71. यंग इंडिया , पृ. 293
72. गाँधी और गाँधीवाद : डॉ. बी. पट्टाभिसीतारमैय्या, पृ. 80
73. हिन्द स्वराज्य : मोहनदास करमचन्द गाँधी, पृ. 84
74. वही, पृ. 82
75. हरिजन, 18 मार्च, 1939, पृ. 5
76. यंग इंडिया, पृ. 938
77. वही, पृ. 192
78. वही, 15 दिसम्बर, 1921, पृ. 3
79. गाँधी विचार दोहन : किशोरी लाल मशरूवाला, पृ. 33
80. यंग इंडिया, 3 जुलाई 1921, पृ. 5
81. वही, 5 जनवरी, 1922, पृ. 3
82. सर्वोदय दर्शन : गोपीनाथ धवन, पृ. 270
83. हरिजन, 18 मार्च, 1939,पृ. 5
84. मेरे सपनों का भारत : महात्मा गाँधी, पृ. 108
85. हरिजन, 18 मार्च, 1939, पृ. 5
86. यंग इंडिया, 4 दिसम्बर, 1924, पृ. 3
87. हिन्दी नवजीवन, 24 सितम्बर, 1924, पृ. 3
88. महात्मा गाँधी : प्यारेलाल, पृ. 95
89. मेरे सपनों का भारत : महात्मा गाँधी, पृ. 258
90. गाँधी वाणी, पृ. 228
91. मेरे सपनों का भारत : महात्मा गाँधी, पृ. 87
92. हरिजन, 11 फरवरी, 1933, पृ. 3
93. वही, पृ. 89
94. वही, पृ. 88
95. गाँधी विचार दोहन : किशोरीलाल मशरूवाला, पृ.46
96. वही, पृ. 26

97. महात्मा गाँधी का संदेश, पृ. 100
98. वही, पृ. 101
99. यंग इंडिया, 4 मई 1921, पृ. 144
100. वही, 25 मई 1921, पृ.168
101. सम्पूर्ण गाँधी वाङमय , पृ. 208
102. हरिजन, 28 सितम्बर, 1934, पृ. 258
103. गाँधी की सूक्तियाँ, पृ. 130
104. ड्रिंक एण्ड ड्रग्स : एम. के. गाँधी, पृ. 3
105. अंतिम झाकियाँ : पृ. 10
106. प्रार्थना प्रवचन - 2, पृ. 259
107. गाँधी विचाररत्न : भाई दयाल जैन, पृ. 125
108. वही, पृ. 127
109. यंग इंडिया, 4 अप्रैल, 1929, पृ. 15
110. प्रार्थना प्रवचन - 2, पृ. 259
111. यंग इंडिया, 3 मार्च, 1927, पृ. 110
112. वही, 25 जून, 1931, पृ. 105
113. वही, 19 जनवरी, 1928, पृ. 797
114. वही, पृ. 798
115. वही, 20 मई, 1926, पृ. 114
116. गाँधी सेवा संघ - सम्मेलन , 21फरवरी, 1940, पृ. 75
117. गाँधीय मार्ग, पृ. 86
118. सम्पूर्ण गाँधी वाङमय (खण्ड - 48), पृ. 488
119. वही, पृ. 381
120. गाँधीवाद और हिन्दी काव्य : भक्तराज शर्मा, पृ. 51
121. मेरे सपनों का भारत : महात्मा गाँधी, पृ. 55
122. गाँधीवाद और हिन्दी काव्य : भक्तराज शर्मा, पृ. 52
123. हरिजन, 1अगस्त, 1937, पृ. 15
124. वही, 12 जून, 1940, पृ. 25
125. रचनात्मक कार्यक्रम : मोहनदास करमचन्द गाँधी, पृ. 31
126. हिन्दी नवजीवन, 25 फरवरी,1921, पृ. 119
127. गाँधी विचार दोहन : किशोरीलाल मशरूवाल, पृ. 39
128. वही, पृ. 42

129. वही, पृ. 157
130. हिन्दी नवजीवन, 3 फरवरी, 1927, पृ. 195
131. गाँधी विचार दोहन : किशोरीलाल मशरूवाल, पृ. 157
132. वही, पृ. 42
133. वही, पृ. 40
134. वही, पृ. 40
135. हरिजन, 1 मार्च, 1942, पृ. 60
136. वही, 31 दिसम्बर, 1938, पृ.371
137. वही, 19 जनवरी, 1938,पृ. 371
138. सर्वोदय तत्त्व दर्शन, गोपीनाथ धवन, पृ. 215
139. हरिजन, 8 मई, 1937, पृ. 115
140. यंग इंडिया, 1 सितम्बर, 1921, पृ.276
141. हिन्दी नवजीवन, 2 सितम्बर, 1921, पृ. 105
142. मेरे सपनों का भारत : महात्मा गाँधी, पृ. 72
143. नई तालीम की ओर, पृ. 31
144. मेरे सपनों का भारत : महात्मा गाँधी, पृ. 216
145. हिन्दी प्रचारक, फरवरी, 1929, पृ. 35
146. आत्मकथा, महात्मा गाँधी, पृ. 18
147. हरिजन, 10 सितम्बर, 1938, पृ.125
148. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 1) : सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा , पृ. 256
149. कंस्ट्रक्टिव प्रोग्राम, पृ. 22
150. हिन्दी नवजीवन, 5 फरवरी,1925, पृ. 10
151. यंग इंडिया, 26 अक्टूबर, 1924, पृ. 15
152. हिन्दी नवजीवन, 26 अक्टूबर, 1924, पृ. 25
153. हरिजन सेवक, 25 अक्टूबर, 1933, पृ. 105

तृतीय अध्याय
द्विवेदी युग में गाँधीवादी चेतना

तृतीय अध्याय

द्विवेदी युग में गाँधीवादी चेतना

प्रत्येक युग के साहित्य का अध्ययन उस युग की विशिष्ट परिस्थितियों के परिपार्श्व में संभव होता है। परिस्थितियाँ ही साहित्य का क्लेवर निर्धारित करती हैं। साहित्यकार इन्हीं परिस्थितियों की ऊपज होता है। युग परिस्थितियाँ ही साहित्यकार को उत्पन्न करती हैं ; उसका निर्माण करती हैं और उसे साहित्य साधना की प्रेरणा देती हैं। इसी कारण युग से तटस्थता का दंभ भरने वाले साहित्यकारों का साहित्य उनके युग के दर्पण का कार्य करता है। मैक्सिक गोर्की का भी यही विचार है कि – ''लेखक अपने युग की ऊपज तथा घटनाओं-दुर्घटनाओं में प्रत्यक्ष भाग लेने वाला एवं द्रष्टा होता है।

गाँधी जी के विराट व्यक्तित्व एवं उनकी महान विचारधारा ने हिन्दी साहित्य को सदैव प्रभावित किया। ''गाँधी युग की विचारधारा द्वारा हिन्दी भाषा और साहित्य को जो प्रोत्साहन मिला, हिन्दी के इतिहास में वह सर्वथा अपूर्व है। गाँधी विचारधारा ने राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया, इसलिए जिस किसी साहित्यकार ने देश के जीवन का विस्तृत चित्रण किया अथवा भारतीय जीवन के किसी भी पहल को लेकर उसे अपनी रचना का आधार बनाया, वह इस विचारधारा से प्रभावित हुए बिना न रहा। हिन्दी उपन्यास, नाटक और काव्य – साहित्य के इन सभी अंगों पर गाँधी युग की विचारधारा का प्रभाव प्रत्यक्ष है।''[1] हालाँकि डॉ. शिवकुमार शर्मा लिखा है – ''काव्य क्षेत्र में द्विवेदी-युग के कवि किसी 'वाद' में बँधकर नहीं चले, यद्यपि गाँधीवाद का इनकी विचारधारा पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा।''[2]

द्विवेदी युग के अवसान काल में लगभग सन् 1918-19 ई. में भारतीय राजनीति के रंगमंच पर गाँधीवादी दर्शन का उदय हुआ। यद्यपि भारतेन्दु युग में उन सभी आन्दोलनों एवं भावनाओं की प्रतिच्छाया साहित्य पर स्पष्ट रूप से देखने को मिली है, जिनको गाँधी जी

104009
Date...............

ने अपनाया था। लेकिन आधुनिक काव्यधारा का द्वितीय उत्थान द्विवेदी युग में ही हुआ। यह युग भारतीय समाज और जन-शक्ति के जागरण का युग था। इस युग ने, राजनीति को ही नहीं वरन् साहित्य को भी एक क्रान्तिकारी मोड़ दिया है। गाँधीवाद, रहस्यवाद, छायावाद, राष्ट्रीयतावाद और प्रगतिवाद आदि का वास्तविक जनक द्विवेदी युग है। हिन्दी का पुनरूत्थान युग मात्र नहीं बल्कि उसकी यह नव्यता-गाँधी का भव्य युग भी है। कवि और समाज इस युग में साथ-साथ चलने लगे। पौराणिकता का इसमें युगानुकूल नवीनीकरण हुआ। कविता-कामिनी स्वर्ग से उतरकर धरती पर चलने लगी। कल्पना अब यथार्थमुखी होने लगी । भारतेन्दु युग की उपदेश प्रवृत्ति के रूप में परिवर्तित हुई। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है – ''कवियों का आविर्भाव होता है, वे पौराणिक आख्यानों का आश्रय लेकर, नये युग के अर्थों का संचार करते हैं। प्रत्येक क्षण वे अतीत की गौरव गरिमा का स्मरण करते दिख पड़ते हैं।''[3] डॉ. शंभुनाथ सिंह का मत है कि – ''बीसवीं सदी के आरंभ के 15 वर्षो में भारत की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ, 19 वीं सदी के अंतिम वर्षों की परिस्थितियों के विकसित और परिवर्द्धित रूप में ही दिखाई देती हैं। इसलिए इस काल की काव्यधारा भी संक्रान्ति युगीन (भारतेन्दु युगीन) काव्यधारा से बहुत भिन्न नहीं है। अन्तर इतना ही है कि इस युग में पिछले युग की अपेक्षा पुनरूत्थान की प्रवृत्ति और अधिक बढ़ गई।''[4]

डॉ. सुधीन्द्र के विचार से भारतेन्दु काल की कविता अपने सामूहिक जीवन की आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक भूमि को स्पर्श कर चुकी थी, किन्तु द्विवेदी युग की कविता तो जीवन की भूमि पर चलती है, उसमें जीती है। यह भी कह सकते हैं कि राष्ट्रीय जागरण की पूर्ण प्रतिच्छवि और प्रतिध्वनि इस बीसवीं सदी की कविता में देखी और सुनी जा सकती है।''[5] इस युग में जनतावाद का झण्डा ऊपर रहा, सभी परिवर्तनों और नवीनता के मूल में सक्रिय गाँधीवाद का हाथ रहा। इस युग के सभी कवियों ने गाँधीय अहिंसक राष्ट्रीय भावना पर अपनी कलम से हस्ताक्षर कर दिए। गाँधी द्वारा प्रतिपादित मानवतावाद का स्वागत

हुआ, गुलामी की जंजीरों को तोड़कर भारत माता को आजादी दिलाने के लिए तन-मन-धन का त्याग करने के स्वर कवियों के कंठ से निकले। डॉ. शिवकुमार शर्मा लिखा है – "द्विवेदी-युग में राष्ट्रीय काव्य की जो आशातीत अभिवृद्धि हुई, उसका हेतु द्विवेदी न होकर उस युग के अन्य प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हैं।"[6] गाँधी से प्रेरणा प्राप्त कर कवि कर्म-पथ पर अग्रसर होने लगे। अतः हमें यह मानना ही होगा कि राजनीति और साहित्य के क्षेत्र में गाँधीवाद का शुभारंभ द्विवेदी युग में ही हुआ है। अतः इस युग को गाँधीवाद का बाल्य युग अथवा प्रारंभिक युग कहा जा सकता है।

महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा चुम्बकीय तत्त्व थे। कि वे समर्थक या विरोधी प्रत्येक को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व के कारण यह चुम्बकीय परिधि और भी विस्तुत हो गई थी। द्विवेदी युग का प्रत्येक कवि किसी न किसी अंश में उनसे प्रभावित हुआ था, यूँ कहें कि भारतीय क्षितिज पर गाँधी जी के उदित होते ही अनेक हिन्दी कवियों ने उनकी प्रशस्तियाँ लिखीं तथा हिन्दी का शायद ही कोई ऐसा कवि हो जिसने किसी न किसी रूप में गाँधी जी का स्तवन न किया हो। लगभग तीस वर्ष तक महात्मा गाँधी और उनकी विचारधारा राष्ट्र की मुक्ति के देशव्यापी आन्दोलन की चेतना केन्द्र रही तथा इस विचारधारा ने भारतीय राजनीति ही नहीं हिन्दी के कवियों को भी प्रभावित किया। इस युग में कुछ ऐसे सुप्रसिद्ध साहित्यकार हुए जो गाँधी जी के सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे। गाँधी जी से प्रभावित द्विवेदी युगीन प्रमुख कवि हैं – मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सत्यनारायण 'कविरत्न', महावीर प्रसाद द्विवेदी, नाथूराम शर्मा 'शंकर' आदि।

3. क गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख कवि :

मैथिलीशरण गुप्त : "मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 1886 ई. को उत्तर प्रदेश के झाँसी जिले के 'चिरगाँव' नामक स्थान में हुआ था।"[7] इनके पिता का नाम रामचरण था। ये चिरगाँव के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे । सेठ रामचरण कुशल व्यापारी होने के साथ-साथ राम भक्त भी थे । ये

कविता भी किया करते थे। काव्य प्रतिभा एवं राम भक्ति दोनों की प्राप्ति गुप्त जी को पैतृक सम्पत्ति के रूप में हुई। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा 'चिरगाँव' में ही हुई। इसके बाद 'झाँसी' के मैकडानल हाई स्कूल में दाखिला दिलाया गया। पढ़ने-लिखने में उनका मन नहीं लगा। दो वर्ष के पश्चात्, वे पुनः चिरगाँव लौट आये। घर पर ही संस्कृत की शिक्षा दी गई। बचपन से ही आल्हा गाया करते थे। धीरे-धीरे दोहे एवं छप्पय लिखने लगे।

गुप्त जी की आरंभिक रचनाएँ कलकत्ता से निकलने वाले ''वैश्योपकारक'' में प्रकाशित हुईं।''[8] एक दिन मैथिलीशरण गुप्त के बड़े भाई इन्हें झाँसी के रेलवे ऑफिस में पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी से मिलवाने ले गए। यह मिलन हिन्दी साहित्य के लिए बड़ा कल्याणकारी सिद्ध हुआ। सन् 1900 में 'सरस्वती' का प्रकाशन होने लगा। द्विवेदी की उसके सम्पादक बन गए। गुप्त जी की रचनाएँ भी सरस्वती में प्रकाशित होने लगीं। द्विवेदी जी के आदर्श और उपदेश तथा स्नेहमय प्रोत्साहन के परिणामस्वरूप मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-कला में निखार आया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार ''सर्वप्रथम गुप्त जी का छोटा-सा प्रबंध काव्य 'रंग में भंग' सन् 1910 में प्रकाशित हुआ। जिसकी रचना चित्तौड़ और बूँदी के संबंध रखने वाली राजपूती आन की एक कथा को लेकर हुई थी।''[9] सन् 1912 में 'भारत-भारती' का प्रकाशन हुआ। इसी पुस्तक ने हिन्दी प्रेमियों को गुप्त जी की ओर आकृष्ट किया। हिन्दी प्रेमियों ने प्रेम और उत्साह के साथ 'भारत-भारती' को अपनाया, उन्हें राष्ट्र कवि से सम्मानित किया।

''काव्य के क्षेत्र में मैथिलीशरण गुप्त किसी 'वाद' में बँधकर नहीं चले, यद्यपि गाँधीवाद का सर्वाधिक प्रभाव इनकी विचारधारा पर पड़ा है।''[10] डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है – मैथिलीशण गुप्त का जीवन विशिष्ट रागद्वेषमय व्यवहारिक जीवन है। उनमें जीवन का प्रबल उपभोग है। व्यवहारिक दृष्टि से अत्यांतिक जागरूक होने के कारण उन्होंने गाँधीवाद के उन सभी तत्त्वों को अपनी राम-भक्ति में समाविष्ट कर लिया है जिसका उनसे मौलिक विरोध नहीं

है। गाँधी जी के स्वदेश प्रेम, स्वातंत्र्य संघर्ष, जागरण सुधार, साम्प्रदायिक एकता, धार्मिक औदार्य आदि सिद्धांतों को मैथिली बाबू ने बड़े उत्साह के साथ स्वीकार किया है। जहाँ गाँधी-नीति और राम-भक्ति में मौलिक भेद है, वहाँ मैथिली बाबू ने गाँधी-नीति को स्वीकार नहीं किया। जैसे अवतारवाद आदि के सम्बंध में । .... गाँधी जी निर्गुण भक्तों की परंपरा में आते हैं। मैथिली बाबू ने सगुण और साकार उपासना को विधिवत और पूर्ण निष्ठा के साथ ग्रहण किया है।''[11]

सन् 1916 के लगभग राष्ट्रवादी प्रवृत्तियाँ जागृत हुई। गाँधी युग का सभारम्भ राष्ट्रीय जागरण के इतिहास में एक मोड़ उपस्थित करता है और उससे संपृक्त हो जाने पर गुप्त जी की व्यापक दृष्टि का विस्तार एवं उन्नयन होता है। गुप्त जी के काव्य की सबसे महान सिद्धि गाँधी विचारधारा का ग्रहण है। उनके अन्तर्मन पर अन्य प्रभाव स्थायी छाप न छोड़ सके, परन्तु गाँधी जी का प्रभाव स्थायी है। ये राष्ट्रपिता के तत्वज्ञान जीवन और रचनात्मक कार्यों के समर्थक ही नहीं अनुगामी भी थे। ''गुप्त जी के रामराज्य की रूपरेखा गाँधी जी के रामराज्य से अलग नहीं है। देश-प्रेम को धर्म सम्मत करना एवं सर्वधर्म समन्वय के आधार पर मानवता की स्थापना करना गाँधी सिद्धांतों के अनुरूप ही है। निस्संदेह गुप्त जी ''संस्कृति समन्वित राष्ट्रीयता के पोषक हैं।''[12]

''मैथिलीशरण गुप्त भारतीय संस्कृति के अनन्य प्रस्तोता हैं। किन्तु ये अधुनातन सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधित्व नहीं करते। मूलतः ये उस भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता हैं, जिसका मूलाधार हिन्दुत्व है, इनके काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठधारा का अनुशीलन करने पर यह परिलक्षित होता है कि ये मानव जीवन का लक्ष्य संन्यास को नहीं, पुरुषार्थ को मानते हैं। अन्तिम क्षण तक कर्त्तव्य पालन ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। धार्मिक दृष्टि से राम मे इनकी अनन्य भक्ति है, अन्य कोई देवता, इनके हृदय को प्रभावित नहीं कर पाता। किन्तु साम्प्रदायिकता से मैथिलीशरण गुप्त एकदम मुक्त हैं – ये धार्मिक संकीर्णता मुक्त, उदार,

वैष्णव हैं। राजनीति क्षेत्र में जन्मजात संस्कारों के कारण राजतंत्र के प्रति उन्हें अनुराग है। परन्तु युग धर्म को इन्होंने सचेष्ट अपनाया है, अतः प्रजातंत्र से भी ये पराङ्मुख नहीं हैं। राजतंत्र के ही प्रजातंत्रीकरण द्वारा इन्होंने युगधर्म और सज्जनगत संस्कारों की एक साथ रक्षा की है।''[13] इसलिए डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है – ''गुप्त जी ने गाँधी विचारधारा के सैद्धान्तिक पक्ष (साधना पक्ष) को न अपनाकर उनके व्यवहारिक पक्षों को ही स्वीकार किया है।''[14]

गुप्त जी द्वारा रचित 'साकेत' की संस्कृति पर गाँधीवाद का गहरा रंग है। उपेक्षिता नारी उर्मिला की करुण कथा कहने के साथ-साथ गाँधीवाद के मूल तत्त्वों को भी उसमें ग्रहण किया है। इस विषय में डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है – वह युग सौ फीसदी गाँधी युग था। अतः साकेत की संस्कृति पर गाँधी युग का प्रभाव था। साकेत में प्राचीन और नवीन का सामंजस्य गाँधी नीति से प्रभावित है। इसी प्रकार, राम की सेवा भावना गाँधी-दर्शन से प्रभावित है। गाँधी का रामराज्य ही लगभग साकेत का रामराज्य है।''[15] गुप्त जी के 'जय भारत' काव्य ग्रंथ में भी गाँधी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त गुप्त जी की अनघ, हिन्दू, गुरुकुल, विश्ववेदना, अजित, सिद्धराज, पंचवटी, यशोधरा, अंजलि और अर्घ्य, काबा और कर्बला एवं स्वदेश प्रेम आदि काव्य कृतियों पर भी गाँधीवाद का स्पष्ट प्रभाव है।

'स्वदेश संगीत' में सत्याग्रह, स्वराज्य की अभिलाषा आदि अनेक कविताएँ तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन पर लिखी गई थीं। गुप्त जी ने अहिंसक राज्य क्रान्ति का लक्ष्य अपने सामने रखा था और गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा देशोन्नति की संभावना में विश्वास प्रकट किया था। हरिजनोद्धार, हिन्दू, मुसलमानों की समाजिक एकता, खादी और ग्रामोद्योग, नारी जागरण, मद्यनिषेध और स्वदेशी सिद्धान्त आदि कार्यों पर उन्होंने आस्था ही नहीं रखी, उनकी काव्यात्मक अनुभूति भी की। गाँधी जी के सत्य, अहिंसा के सिद्धांतों पर उनकी पूरी आस्था थी। इनकी कविता पर गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम जैसे मद्यनिषेध, उनके आर्थिक विचारों, स्वदेशी-भावना, चरखा और खादी आदि का प्रभाव दिखाई देता है ।

'सिद्धराज' में गुप्त जी ने अहिंसा व राष्ट्रवाद को अभिव्यक्त किया है। 'हिन्दू' में क्रान्तिकारी व आतंकवादी 'अजित' हृदय परिवर्तन द्वारा मानवतावादी जीवन मूल्यों को स्वीकार कर सत्याग्रही बना दिया जाता है। 'यशोधरा' में गाँधी युग की नारी भावना तथा मानवतावादी दृष्टिकोण उभरा है। 'यशोधरा' में प्रेम और वासना का अन्तर स्पष्ट किया है तथा नारी के उच्चादर्श का निदर्शन कराया है। 'अनघ' में अहिंसक सत्याग्रही पद्धति का आभास दिया है। 'काबा और कर्बला' का सृजन सामाजिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में हुआ है और इस रचना का उद्देश्य सर्वधर्म समन्वय है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है – *"मैथिलीशरण जी हिन्दी के इस युग के पहले कवि हैं, जिन्होंने कविता की ज्योति, समय, समाज और आत्मा के भीतर देखी है, जिन्होंने नयी काव्य-धारा की अबाध गति से हिन्दी-समाज को अभिसिंचित किया है।"*[16]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है – गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है, *कालानुसरण की क्षमता अर्थात् उतरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्य* प्रणालियों का ग्रहण करते चलने की शक्ति। इस दृष्टि से हिन्दी भाषी जनता के प्रतिनिधि कवि थे निस्संदेह कहे जा सकते हैं । .... गुप्त जी वास्तव में सामंजस्यवादी कवि हैं, प्रतिक्रिया का प्रदर्शन करने वाले अथवा मद में झूमने वाले कवि नहीं। सब प्रकार की उच्चता से प्रभावित होने वाला हृदय उन्हें प्राप्त है।"[17] इस प्रकार राष्ट्र कवि गुप्त जी के कृतित्व पर गाँधी जी के तपःपूत जीवन और उनकी विचारधारा का व्यापक प्रभाव है।

सियारामशरण गुप्त : कविवर सियारामशरण गुप्त का जन्म भाद्र, पूर्णिमा वि. सं. 1952 में उत्त प्रदेश के झाँसी जिले के 'चिरगाँव' नामक स्थान में हुआ था।[18] इनके पितामह का नाम *ललनज और पिता का नाम सेठ रामचरण था। "यह वैश्यों का सम्पन्न सामन्ती परिवार था, पर इसे आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा ....।* सियारामशरण गुप्त के यहाँ पैतृक व्यवसाय होता था, लेन-देन आदि का जिसमें उतार-चढ़ाव आना स्वाभाविक है । पर इस

व्यवसायिकता के बीच जो तथ्य उल्लेखनीय हैं, वह है – उस परिवार की उदारता और वैष्णव भक्ति में आस्था। पिता रामचरण कनकने के नाम से जाने जाते थे और आस-पास के क्षेत्रों में उनका मान था। सम्पन्नता के साथ, उनमें जो दान शीलता थी उसके कारण उनकी वैष्णव वृत्ति में निरंतर विकास होता गया। यह वैष्णव भावना मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त दोनों कवियों में समान रूप से देखी जा सकती है। पिताश्री विद्वानों का आदर करना जानते थे और सत्संग उन्हें प्रिय था। इसी क्रम में अजमेरी जी मिले जो गुप्त परिवार के घनिष्ठ बने, जिन्हें लोगों ने परम-वैषणव कहा, यद्यपि वे जन्म से मुसलमान थे। यह है इस परिवार की उदार धर्म निरपेक्ष दृष्टि ।''[19] इनकी माँ काशीबाई धार्मिक विचारों वाली महिला थीं। इनकी विचारधारा का पूर्ण प्रभाव इनके पुत्रों पर पड़ा।

सियारामशरण गुप्त अध्ययनशील प्रवृत्ति के थे। इनकी आरंभिक शिक्षा गाँव की ही पाठशाला में हुई। अपर प्राइमरी तक की शिक्षा पूर्ण करने के बाद पढ़ना चाहते थे लेकिन गाँव में हाईस्कूल नहीं था साथ ही पारिवारिक परिस्थितियों के कारण आगे न पढ़ सके। लेकिन अध्यवसायी वृत्ति जो उनमें जन्मजात थी, उसके कारण घर पर ही संस्कृत, बंगला, गुजराती तथा अंग्रेजी सीखी। ''अंग्रेजी विद्वान 'टेनिसन' की अंग्रेजी कविता का अनुवाद भी किया।''[20] प्रेमशंकर ने लिखा है – ''उन्होंने अपने श्रम और अध्यवसाय से इसकी क्षति पूर्ति की। 'रामचरितमानस' उनका प्रिय ग्रंथ था, जिसके संस्कार उन्हें वैष्णव पिता से प्राप्त हुए थे। उन्हें संस्कृत के श्लोक कंठस्थ थे और उन्होंने अंग्रेजी का अभ्यास स्वयं किया। वे उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में रुचि लेते थे, जिनमें प्रमुख थीं, 'सरस्वती' जिसमें उनकी रचनाएँ भी आयीं। आश्चर्यजनक यह है कि बुन्देलखण्ड में रहकर भी उन्होंने बंगला भाषा का ज्ञान पुस्तक की सहायता से प्राप्त किया और कवीन्द्र रवीन्द्र का उन पर गहरा प्रभाव है।''[21]

गुप्त जी का विवाह 'बड़ागाँव' निवासी देवकीनंदन कारखिमऊ की एक मात्र संतान शंकरबाई के साथ हुआ। उस समय की प्रचलित परम्परा के अनुसार, जब वे आठ वर्ष

के थे, तभी विवाह बंधन में बंध गए थे । उनका विवाह धूमधाम से संपन्न हुआ था । ससुराल पक्ष धनी-मानी था। अनुज, चारू शीलाशरण ने लिखा है – ''भैया के ससुर अच्छे धनी गिने जाते थे। तीन-चार गाँव में उनकी जमींदारी भी थी। सोना-चाँदी भी यथेष्ट था। उनका विचार था कि विवाह के कुछ दिन पश्चात् जमाई को अपने ही यहाँ रख लेंगे, परन्तु यह उनका भ्रम ही था। अर्थ के लाभ पर हमारा सम्मान ही विजयी रहा। अंत में मरने से कुछ पूर्व निराश होकर वे एक लड़के को अपना उत्तराधिकारी बना गए।''[22] इनकी पत्नी का देहान्त 1922 ई. में हुआ। ये साधु वृत्ति ही थी कि उन्होंने दूसरा विवाह न किया। उनके चार संतानें हुई लेकिन एक भी जीवित न रही। वे शोक संतप्त तो हुए पर धैर्य नहीं खोया। वे कहते मेरी रचनाएँ ही मेरी संतान हैं।

सियारामशरण गुप्त के घर का वातावरण साहित्यिक होने के कारण उनका रूझान भी साहित्य की ओर होने लगा। अग्रज मैथिलीशरण गुप्त की चर्चा पत्र-पत्रिकाओं में होती रहती। अतः उनके आरंभिक प्रेरणा स्रोत मैथिलीशरण गुप्त ही हैं। पहले तो वे सबसे छिपकर काव्य रचना करते थे लेकिन दद्दा के आदेश पर कविता बनाई वहीं से इन्हें बल मिला और निरंतर साहित्य सृजन में संलग्न रहे। दद्दा ने स्वयं लिखा है – ''साहित्य की ओर पहले से ही उनकी प्रवृत्ति थी। साहित्य सदन का काम भी कितना था, रचना के लिए समय का अभाव उन्हें न था। परन्तु जैसा उन्होंने बाल्य स्मृति में लिखा है, अपनी पद्य रचना लेकर वे सीधे मेरे निकट नहीं आये। फिर भी यह एक ऐसी मिठाई थी, जो अकेले-अकेले नहीं खाई जा सकती थी। यही नहीं, दूसरों को खिलाकर ही इसमें तृप्ति मिल सकती थी। परन्तु भय संकोच भी थोड़ा न था । .... परन्तु जो हो, मुझे एक सतीर्थ मिल जाने से संतोष ही हुआ। जितना सहयोग मैं दे सकता था, मैंने उन्हें दिया। मेरे लिए इससे अधिक क्या संतोष होगा कि आज वह सहयोग हम दोनों में पारस्परिक हो गया।''[23]

सियारामशरण गुप्त ने अनेक काव्य-ग्रंथों की रचना की । उनमें प्रमुख हैं –

'मौर्य-विजय, अनाथ, विषद, आर्द्रा, आत्मोत्सर्ग, पाथेय, मृग्मयी, बापू, उन्मुक्त, नोआखाली में, जय हिन्द, अमृत पुत्र आदि । गुप्त जी के काव्य की विशेषता यही है कि उनके काव्य में सात्विकता के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। इसका एक मात्र कारण है, उन पर गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है – "हिन्दी में गाँधी जी के तत्त्व चिन्तन की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति उन्हीं में मिलती है ओर उन्होंने अपनी साधना के बल पर उसे अपनी चेतना का अंग बना लिया है। भारतीय चिन्तनधारा की एक विशेष महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति के वे अकेले कवि हैं।"[24]

मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है – "मैं ठीक नहीं कह सकता, गुरुदेव और बापू दोनों में से वे किससे अधिक प्रभावित हुए। परन्तु यह स्पष्ट है कि उनके लिखने की शैली, अलंकृत भाषा की दृष्टि से गुरुदेव की अनुगामनी है और उनके भाव बापू के अनुयायी हैं।"[25] प्रेमशंकर ने लिखा है – सभी ने इसे स्वीकारा है कि सियारामशरण गुप्त हिन्दी साहित्य में गाँधीवाद के सर्वोपरि कवि कहे जा सकते हैं। दोनों कवि बंधु मैथिलीशरण गुप्त - सियारामशरण गुप्त गाँधीवाद से प्रभावित हैं, पर उनकी संवेदन दृष्टि में किंचित अन्तर है। राष्ट्रकवि 'भारत भारती' जैसे काव्य की रचना करते हैं – भारत की स्वतंत्रता का उद्घोष करते हुए : भगवान भारतवर्ष में गूँगे हमारी भारती अथवा जग जाये तेरी नोक से सोए हुए को हो भाव जो, पर सियारामशरण की अधिक रुचि गाँधीवाद के दार्शनिक पक्ष में है।"[26]

गाँधी जी पर इनकी अटूट आस्था थी इसलिए इनकी रचनाओं में गाँधीवाद की अमिट छाप दिखती है। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है .... "गाँधीवाद में इनकी अटूट आस्था थी, इसलिए इनकी सभी रचनाओं पर अहिंसा, सत्य, करुणा, विश्वबंधुत्व, शांति आदि गाँधीवादी मूल्यों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है।"[27] ललित शुक्ल ने लिखा है – "गाँधीवादी विचारधारा का जितना प्रभाव सियारामशरण जी की लेखनी पर है, उनके व्यक्तित्व पर उससे

किसी रूप में कम नहीं है।''[28] डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने ''सियारामशरण जी को गाँधीवाद का भावात्मक व्याख्याता कहा है।''[29]

हिन्दी में गुप्त जी ने अपनी अलग पहचान बनाई है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान कई कवि गाँधी जी से प्रभावित हुए पर गाँधी का सबसे अधिक प्रभाव सियारामशरण गुप्त पर ही पड़ा। डॉ. नागेन्द्र के अनुसार – अप्रत्यक्ष रूप से तो आज अधिकांश साहित्य पर गाँधी-दर्शन का गहरा और अन्तःव्यापी प्रभाव है, परन्तु प्रत्यक्ष रूप में उससे सीधी प्रेरणा लेने वाला तथा उसे समग्र रूप में स्वीकार करने वाला साहित्य परिमाण में अत्यन्त अल्प है। सियारामशरण ने हृदय और बुद्धि दोनों का गाँधी दर्शन के साथ पूर्ण सामंजस्य कर लिया है, वह उनकी आत्मा में रम गया है।''[30] गुप्त जी आशावादी संघर्षशील व्यक्तित्व के धनी थे। संघर्षशील जीवन-यापन करते हुए, कंटकाकीर्ण पथ पर अडिग, सदाचारी, परिश्रमी, अहिंसक एवं देशभक्त रहकर आपने अपने को गाँधी के निकट पहुँचाया है।

रामनरेश त्रिपाठी : रामनरेश त्रिपाठी का जन्म जिला जौनपुर के 'कोइरीपुर' नामक गाँव में सन् 1889 ई. में हुआ था।''[31] इनके पिता का नाम पं. शुभदत्त त्रिपाठी था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा अपने गाँव की ही पाठशाला में हुई। इसके बाद ये अंग्रेजी पढ़ने के लिए जौनपुर के एक स्कूल में भर्ती हुए। नवीं कक्षा तक पढ़ाई अच्छी चली, लेकिन पिता की अनिच्छा के कारण दसवीं कक्षा में स्कूल छोड़ना पड़ा। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, इसलिए इनके पिता चाहते थे कि त्रिपाठी जी घर की खेती-बाड़ी का काम करें। यह काम उनको बिल्कुल पसंद न था। इसलिए अठारह साल की आयु में घर छोड़कर कलकत्ता चले गए। कलकत्ता में इनके चाचा थे। ''वहाँ इनका परिचय एक आर्य समाजी सज्जन से हुआ और उसकी फर्म में 'ट्रेवलिंग एजेन्ट' बन गए।''[32] कलकत्ता में ही इन्होंने बंगला और अंग्रेजी का अध्ययन किया।

इन्हें बहुत समय तक घर से दूर रहना पड़ा, अतः भोजन की उचित व्यवस्था न होने से स्वास्थ्य बिगड़ गया और संग्रहणी बीमारी के शिकार बन गए। अपने मित्र की सलाह

पर ये जलवायु परिवर्तन के लिए राजस्थान के शेखावटी (फतेहपुर) गए। वहाँ नेवटिया परिवार के साथ रहे तथा स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया । नेवटिया परिवार साहित्य प्रेमी था और घर में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ आती रहती थीं। ''कविता के प्रति उनकी बचपन से ही रुची थी।''[33] अतः इस परिवार में उन्हें अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने लिखना भी आरंभ कर दिया।

उनकी कविताएँ 'सरस्वती' और 'प्रवाह' नामक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। राजस्थान में इनके बहुत से मित्र बने। उन मित्रों की सहयाता से वहाँ एक पुस्तकालय की स्थापना की। वहीं गुजराती भाषा भी सीखी। इस तरह हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, बंगला एवं गुजराती का ज्ञान इन्हें हो गया। सन् 1932 में इनके पिता का देहान्त हो गया। अतः इन्हें घर लौटना पड़ा। प्रयाग में ये स्थायी निवास बना कर रहने लगे। यहाँ पर 'साहित्य भवन' नामक पुस्तक प्रकाशन की स्थापना की। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इंदौर अधिवेशन के प्रचार मंत्री बनाए गए। दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार का काम भी किया।

सन् 1921 में असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर ये डेढ़ वर्ष के लिए जेल गए। जेल से निकल कर सन् 1924 में 'हिन्दी मंदिर' की स्थापना की। सन् 1933 में एक प्रेस भी खोला। बाद में ये दोनों बंद हो गए। प्रयाग से ये सुल्तानपुर चले गए और वहीं रहे। विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है – ''कविवर रामनरेश त्रिपाठी द्विवेदी युग के उन साहित्यकारों में से हैं, जिन्होंने द्विवेदी युग के प्रभाव से पृथक् रहकर, अपनी मौलिक प्रतिभा से साहित्य के क्षेत्र में कई कार्य किए। त्रिपाठी जी स्वच्छन्दतावादी कवि थे, लोकगीतों के सर्वप्रथम संकलनकर्ता थे। बाल-साहित्य के प्रणेता थे और सुरूचि सम्पन्न सम्पादक थे। उनका मौलिक कार्य तो कई प्रकार की भावधाराओं से आक्रांत है। किन्तु जो कार्य उन्होंने अपने लेखकीय जीवन में किया वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में सदैव अमिट अक्षरों में अलंकृत रहेगा।''[34]

त्रिपाठी जी देश भक्त कवि है। देश के प्रति अनुरक्ति उनकी रग-रग में व्याप्त थी।

आचार्य शुक्ल ने लिखा है – ''स्वदेश भक्ति की जो भावना भारतेन्दु के समय से चली आती थी, उसे सुंदर कल्पना द्वारा, रमणीय और आकर्षक रूप त्रिपाठी जी ने ही प्रदान किया। त्रिपाठी जी के तीनों काव्य देशभक्ति भाव से प्रेरित हैं। देश-भक्ति का यह भाव उनके मुख्य पात्रों का जीवन के कई क्षेत्रों में सौंदर्य प्रदान करता दिखाई पड़ता है – कर्म के क्षेत्र में भी प्रेम के क्षेत्र में भी। वे पात्र कई तरफ से देखने में सुन्दर लगते हैं। देश-भक्ति का रसात्मक रूप त्रिपाठी जी द्वारा प्राप्त हुआ, इसमें संदेह नहीं।''[35]

त्रिपाठी जी ने अपने काव्यों द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया। गाँधी जी के विचारों से प्रेरित होकर उनके मनोभावों को काव्य में भी व्यक्त किया। प्रेम, सत्य, करुणा, देशभक्ति आदि का वर्णन किया। डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा ने लिखा है – मानवतावादी विचारधारा के सशक्त नायक गाँधी जी के सक्रिय अनुयायी उस संधिकाल के कवि हैं, जब राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा छायावादी कविताधारा के साथ सम्मिलन करने जा रही थी। मिलन, पथिक और स्वप्न छायावादी प्रवेशिका और गाँधीवादी अभिव्यक्ति के लिए प्रख्यात हैं। गाँधी जी से प्रेरणा पाकर ग्राम साहित्य को लोक साहित्य की ओर कर दिया तथा अश्लील गीतों को संस्कारित कर, स्रोत बनाया। इन्होंने खण्ड काव्य की रचना की, स्वच्छन्दतावाद अपनाया एवं राष्ट्रीय विचारधारा को फलीभूत किया। ''इन सभी काव्य विषयों का समावेश यदि समवेत रूप से कही देखना हो तो पं. रामनरेश त्रिपाठी की रचनाओं में सहजता से उपलब्ध होता है। त्रिपाठी जी का योगदान मौलिकता की दृष्टि से भी द्विवेदी युग के कवियों में उल्लेखनीय है। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध राजद्रोह का दण्ड भोगने वाले व्यक्तियों में त्रिपाठी जी की गणना होती है। उनके अवदान का यदि सही मूल्यांकन किया जाय तो हम पायेंगे कि वे आदर्शवादी, राष्ट्रप्रेमी, सच्चे देश भक्त, उच्च कोटि के साहित्यकार थे, जो आगे आने वाली पीढ़ी को भी अपने कृतित्व से सद्प्रेरणा देते रहेंगे।''[36]

सत्यनारायण 'कविरत्न' : "आधुनिक काल के ब्रजभाषा कवियों में सत्यनारायण का स्थान रत्नाकर व श्रीधर पाठक के पश्चात् आता है। इनका जन्म 'सराथ' नामक गाँव में 24 फरवरी, 1880 को हुआ।"[37] इनके पिता का नाम 'गोविन्द राव' दबे था । इनकी माँ तलफो का जन्म अलीगढ़ की तहसील सिकंदराराऊ के बरैरा गाँव के सनाढ्य परिवार में हुआ था। जब ये पन्द्रह वर्ष की थीं तब उनका विवाह डगलस के कचरोली गाँव के निवासी श्री गोविन्द राव दबे के साथ हुआ। विवाह के पश्चात् इनका नाम तलफा से बदलकर शती सरदा कॅवरि रखा गया। लेकिन इनका वैवाहिक जीवन सफल न हो सका। पति की अकाल मृत्यु के पश्चात् संपत्ति से वंचित, बेसहारा और गर्भवती तलफा भटकती हुई सराय गाँव पहुँची, वहीं सत्यनारायण का जन्म हुआ तथा आगे का जीवन वहीं व्यतीत किया। सत्यनारायण की माँ धार्मिक विचारों वाली थीं। उन्हें 'रामचरितमानस' का ज्ञान था। सत्यनारायण की भी भगवान में आस्था थी। वे आगरा से पाँच किलोमीटर दूर धाँधूपुरा (ताजगंज) मन्दिर में बाबा रघुदास की शरण में रहने लगे। यहीं उनका पालन पोषण हुआ।

इनकी प्रारंभिक शिक्षा घर और ताजगंज स्कूल में हुई। सन् 1896 में मिढ़ाकुर के टाऊन स्कूल से मिडिल जनवरी 1900 ई. में मुफीदास स्कूल से एन्ट्रेन्स और अप्रैल 1908 ई. में सेन्ट पीटर्स कालेज, से एफ. ए. की परीक्षाएँ पास कीं। सन् 1910 में बी. ए. की परीक्षा सेन्ट जॉन्स कॉलेज, आगरा से दी, किन्तु इसमें वे असफल हो गए। असफल होने का कारण था कविता के प्रति लगाव। वे पढ़ाई-लिखाई की उपेक्षा कर काव्य की ओर ध्यान देने लगे थे।

इनका जीवन दुःखों एवं कष्टों से भरा हुआ था। 17 वर्ष की अवस्था में ही माता का देहान्त हो गया। अभी इस दुःख से उबरे भी न थे कि बाबा रघुदास भी चल बसे। माता और बाबा की मृत्यु से उनके मन में असहनीय पीड़ा उत्पन्न हुई। इसी पीड़ा के कारण वे संवेदनपूर्ण रचना करने लगे । "करुण संवेदन से पूर्ण माता विलाप नामक कविता की रचना

उन्होंने तभी की थी।"[38] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है – "ब्रजभाषा की कविताएँ, वे छात्रास्वथा से ही लिखने लगे थे। वसंतागम पर वर्षा के दिनों में वे रसिये आदि ग्राम गीत, अनपढ़ ग्रामिणों से मिलकर निस्संकोच गाते थे । सवैया पढ़ने का उनका ढंग ऐसा आकर्षक था कि सुनने वाले मुग्ध हो जाते थे। जीवन की घोर विषमताओं के बीच भी वे प्रसन्न और हँसमुख दिखाई देते थे। उनके लिए उनका जीवन ही एक काव्य था। अतः जो बातें प्रत्यक्ष उनके सामने आती थीं, उन्हें काव्य का रूप रंग देते उन्हें देर नहीं लगती थी।"[39] डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है – "आरंभ में ये परम्परागत ढंग से विनय पर तथा समस्या पूर्तियाँ लिखते थे, बाद में प्रौढ़ रचनाओं में भक्त तथा देश प्रेमी कवि के रूप में सामने आये। इनकी कविता अत्यन्त भावुकतापूर्ण एवं निराडम्बर है। प्रकृति का भी इन्होंने बड़ा मनोहारी वर्णन किया है। इन्होंने सहज मधुर ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। इनके भक्ति परक पद, किसी भी भक्त कवि से कम द्रवणशील नहीं हैं, किन्तु भक्ति के पदों में भी, देश कीदशा को विस्मृत नहीं करते।"[40] लक्ष्मीधर वाजपेयी ने लिखा है कि – "ब्रजभाषा की कविता का अभी कुछ दिन के लिए जब तक कोई दूसरा वैसा कवि पैदा न हो .... उनसे अन्त हो गया। उनको 'ब्रज कोकिल' कहना सदैव शोभा देगा।"[41]

सत्यनारायण का व्यक्तित्व पारदर्शी और जीवन करुणा से पूर्ण था। इनका विवाह 7 फरवरी, 1914 को हुआ। पत्नी का नाम सावित्री देवी था। विचारों की विभिन्नता होने के कारण दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं हुआ। पत्नी थोड़े समय बाद ही, इन्हें छोड़कर चली गई और अन्त समय तक नहीं लौटी। दरिद्रता, असाक्ति, असन्तोष एवं द्वन्द्व ने इन्हें अस्वस्थ्य व असहाय कर दिया था परिणामस्वरूप 16 अप्रैल, 1918 को उनका देहान्त हो गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनके जीवन के सम्बंध में लिखा है – "अंग्रेजी की ऊँची शिक्षा पाकर भी उन्होंने अपनी चाल-ढाल ब्रज मंडल के ग्रामीण भोले मानसों की तरह ही रखी। धोती, दुपट्टा सिर पर एक गोल टोपी यही उनका वेष रहता था । वे बाहर से जैसे सरल और सादे थे,

भीतर से भी वैसे ही थे। सादापन दिखावे लिए धारण किया हुआ नहीं है, स्वभावगत है, यह बात उन्हें देखते ही और उनकी बातें सुनते ही प्रकट हो जाती थी। बाल्यकाल से लेकर जीवनपर्यंत वे आगरे से डेढ़ कोस पर ताजगंज के पास धुंधपुर नामक गाँव में ही रहे । उनका जीवन क्या था, जीवन की विषमता का एक छाँटा हुआ दृष्टान्त था। उनका जन्म, बाल्यकाल, विवाह और गार्हस्थ सब एक दुःख भरी कहानी के संबद्ध खंड थे। वे थे ब्रज माधुरी में पगे जीव, उनकी पत्नी थी आर्य समाज के तीखेपन में पली महिला। इस विषमता की नीरसता बढ़ती ही गई और थोड़ी ही अवस्था में 'कविरत्न' जी की जीवन-यात्रा समाप्त हो गई।''[42]

उनके काव्य पर गाँधीवाद का प्रभाव दिखाई देना स्वभाविक है, क्योंकि तत्कालीन देश की अवस्था उनसे छिपी नहीं थी । अतः इनके काव्य 'भ्रमरदूत' में राष्ट्रीय भावना की सशक्त व्यंजना हुई है। हिन्दी साहित्य की निःस्वार्थ सेवा और ब्रजभाषा कविता का प्रचार करना, लोक रुची को उसकी ओर आकृष्ट करना, ब्रज कोकिल कविरत्न के जीवन का उद्देश्य था। ''कविरत्न एक देश-भक्त कवि हैं, उनके आराध्य भारत माता और 'भभार उतारन' रंगीला साँवरो है। प्रेम का आदर्श पतंग-प्रेम है, जिसमें प्रेमी का आत्मोत्सर्ग अनिवार्य है। आत्म-निवेदन उपालम्भ के रूप में है और दैन्य निजी न होकर देशपरक है। राष्ट्रीय अखण्ड भारतीयता है। उसमें हिन्दी सनातनी, आर्य समाजी, ईसाई, मुसलमान अलग-अलग नहीं अपितु एक जाति, एक धर्म और एक राष्ट्र के हैं। उसकी दृष्टि में भारत वसुन्धरा के गिरते हुए गौरव की रक्षा के लिए संकुचित भावना और सभी प्रकार की संकीर्णताओं का त्याग आवश्यक है।''[43]

महावीर प्रसाद द्विवेदी : महावरी प्रसाद द्विवेदी 'द्विवेदी युग' के उन्नायक हैं। ''हिन्दी कविता को श्रृंगारिकता से राष्ट्रीयता, जड़ता से प्रगति तथा रूढ़ि से स्वच्छंदता के द्वार पर ला खड़ा करने वाले बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशकों का सर्वाधिक महत्त्व है । इस काल खण्ड के पथ

प्रदर्शक, विचारक और सर्वस्वीकृत साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर इनका नाम द्विवेदी युग उचित ही है।''[44] महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1864 ई. में उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के दौलतपुर गाँव में हुआ था।''[45] इनके पिता का नाम रामसहाय था । इनके इष्टदेव महावीर हनुमान थे । अतः पुत्र का नाम महावीर सहाय रखा। प्रारंभिक शिक्षा के लिए गाँव की पाठशाला में दाखिला दिलाया गया। वहाँ प्रधानाध्यापक ने भूल से इनका नाम महावीर प्रसाद लिख दिया था, यही भूल हिन्दी साहित्य में स्थायी बन गई। देहात की पाठशाला में हिन्दी, उर्दू और गणित की पारंभिक शिक्षा प्राप्त की। तेरह साल की उम्र में अंग्रेजी पढ़ने के लिए रायबरेली के जिला स्कूल में प्रवेश दिलाया गया। यहाँ संस्कृत न थी, अतः वैकल्पिक विषय के रूप में फारसी ली। एक वर्ष यहाँ पढ़ने के बाद उन्नाव जिले के रनजीत पुरवा स्कूल और कुछ दिनों तक फतेहपुर में पढ़ने के बाद ये अपने पिता के पास बम्बई चले गए। इनके पिता 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की ओर से बम्बई में नौकरी करते थे। वहाँ इन्होंने संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी का अभ्यास किया। इनके निवास के आस-पास रेलवे के कर्मचारी रहते थे। अतः देखा-देखी इन्होंने भी रेलवे में नौकरी कर ली। इस कार्य में उनका मन न लगा, अतः गाँव लौट आए। पुनः अजमेर जाकर रेलवे में नौकरी की। इससे इन्हें 15 रुपये मासिक मिलते थे। पाँच रुपया से अपना गुजारा करते, 5 रुपया गृह शिक्षक को देकर विद्याभ्यास करते और 5 रुपया घर भेज देते थे।

अजमेर से पुनः बम्बई आये और तार का काम सीखा वहाँ वे रेलवे सिंग्लर हो गए। रेलवे के विभिन्न पदों पर कार्य करने के बाद अपनी ईमानदारी एवं परिश्रम के कारण चीफ सुपरिटेन्डेन्ट के ऑफिस में चीफ क्लर्क बना दिए गए। इस पद पर उन्हें बहुत कार्य करना पड़ता था। उन्हें 150 रुपया मासिक वेतन मिलता था। लेकिन जिस समय ये झाँसी में कार्य कर रहे थे, उनकी अंग्रेज अफसर से कुछ कहा-सुनी हो गई, जिसके कारण इन्होंने नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया ।''[46] ये भरी जवानी में अपने जमाने की अत्यन्त प्रलोभन पूर्ण

150 रुपया मासिक की नौकरी छोड़कर कानपुर आ गए।

"साहित्य-साधना तो द्विवेदी जी नौकरी के दिनों में भी कर रहे थे, किन्तु नौकरी छोड़ने के बाद तो ये पूर्णतया हिन्दी भाषा और साहित्य की सेवा में जुट गए। सन् 1903 में ये 'सरस्वती' के सम्पादक बने और 1920 तक बड़े परिश्रम और लगन से ये कार्य करते रहे। 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप में उन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य के उत्थान के लिए जो कार्य किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। उनके प्रोत्साहन और मार्ग दर्शन के परिणाम स्वरूप कवियों और लेखकों की एक पीढ़ी का निर्माण हुआ। बोली के परिष्कार तथा स्थिरता प्रदान करने वालों में ये अग्रगण्य थे।"[47] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है – खड़ीबोली के पद्य विधान पर भी आपका पूरा-पूरा असर पड़ा। पहली बात तो यह हुई कि उनके कारण भाषा में जो कुछ सफाई आई, बहुत से कवियों की भाषा शिथिल और अव्यवस्थित होती थी और बहुत से लोग ब्रज और अवधी का मेल ही कर देते थे। 'सरस्वती' के सम्पादन काल में इनकी प्रेरणा से बहुत से नए लोग खड़ीबोली में कविता करने लगे। उनकी भेजी हुई कविताओं की भाषा आदि की दुरूस्त करके वे 'सरस्वती' में दिया करते थे। इस प्रकार के लगातार संशोधन से धीरे-धीरे बहुत से कवियों की भाषा साफ हो गई। उन्हीं नमूनों पर और लोगों ने भी अपना सुधार किया।"[48]

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है – "महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक युग विशेष के प्रवर्त्तक के रूप में गिना जाता है। इनके कृतित्व का आकलन भी खड़ीबोली हिन्दी के परिष्कर्ता के रूप में किया जाता है। यह ठीक है कि द्विवेदी जी ने खड़ीबोली गद्य को परिनिष्ठित करने के साथ उसकी साहित्य विधाओं का भी विस्तृत आयाम प्रदान किया, किन्तु वे स्वयं कवि भी थे। 'द्विवेदी काव्यमाला ग्रंथ' में उनकी शताधिक कविताएँ संकलित हैं। द्विवेदी जी को वर्तमान युग में हिन्दी भाषा व्याकरण के संशोधन कर्ता के रूप में याद किया जाता है। किन्तु उनके कवि रूप की उपेक्षा होती रही है। द्विवेदी जी ने

कविता के दोष में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, ऐसा तो हम नहीं कह सकते किन्तु तत्कालीन युवा कवियों और लेखकों को प्रांजल एवं परिष्कृत खड़ीबोली हिन्दी कविता में कविता करने की प्रेरणा अवश्य दी, जिसके फलस्वरूप खड़ीबोली के पाँव दृढ़ता के साथ काव्य क्षेत्र में स्थापित हो सके।''[49]

महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविताओं में अनेक प्रकार के भाव एवं विचार मिलते हैं। तत्कालीन देश की अवस्था का प्रभाव भी इनके काव्य में दिखाई देता है। जिस समय इन्होंने लिखना आरम्भ किया, उस समय देश-भक्ति, धर्म, प्रेम, सुधार एवं जागरण आदि विषयों पर काव्य गूँथे जा रहे थे। अतीत का गौरव गान भी किया जा रहा था। समाज सुधारक, विचारक एवं देशभक्तों के विचारों को भी अभिव्यक्ति प्रदान की जा रही थी। अतः द्विवेदी जी ने भी अपने काव्य में इन सभी विषयों का समावेश किया। देश, समाज, नारी आदि का संवेदनशील एवं भावात्मक वर्णन उन्होंने कविताओं द्वारा किया।

भारत यायावर ने लिखा है – ''द्विवेदी जी के सम्पूर्ण लेखन से परिचित होने के बाद यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि वे संस्कृत, अंग्रेजी एवं बंगला भाषा में रचित लगभग तमाम महत्त्वपूर्ण साहित्य से परिचित थे। विश्व की महान काव्य-कृतियों के अवलोकन से उन्हें अपनी काव्य-कृतियाँ बेहद फीकी लगती थीं। .... द्विवेदी जी ने गद्य में किए गए कार्य को महत्त्वपूर्ण माना, अनुवादों को महत्त्व दिया, किन्तु अपनी कविताओं को छन्दोबद्ध प्रलाप कहकर महत्त्वहीन करार दे दिया। मैथिलीशरण गुप्त के अतिशय आग्रह पर जब उन्हें अपनी कविताएँ भेजी, तब यह भी निर्देश दे दिया कि उन्हें कविता न कहा जाये सिर्फ पद्य माना जाये। ऐसा इसलिए था कि वे विश्व की महानतम काव्य-कृतियों को पढ़ चुके थे। महान कविता के स्वरूप से परिचित थे। इसलिए उन्हें अपनी कविताएँ फीकी लगती थीं। बावजूद इसके द्विवेदी जी की कविताओं का ऐतिहासिक अवदान और महत्व है। ये कविताएँ आगे की पीढ़ी के कवियों के लिए प्रेरणा स्तम्भ की तरह थीं।''[50] ''राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त उन्हें

अपना गुरु मानते थे।''[51]

द्विवेदी जी ने अपना जीवन यापन बड़ी सादगी से किया। वर्तमान युग के अधिकांश लेखकों और आचार्यों के समान रुपये के प्रलोभन से इन्होंने कभी साहित्य सेवा नहीं की। निस्वार्थ भाव से जन-हिताय साहित्य निर्माण इनके जीवन का उद्देश्य था। स्वाभिमान उन में कूट-कूट कर भरा था । वे किसी का भय नहीं मानते थे । त्याग, तपस्या, अध्यावसाय और ईमानदारी के फलस्वरूप ही साहित्य की इतनी अधिक सेवा कर पाये। श्री सिंहासन राय ने लिखा है – ''पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी का हिन्दी के निर्माण में महत्त्वपूर्ण हाथ है। जिस प्रकार भारतेन्दु और उनके दल के अन्य साहित्य सेवियों ने वर्तमान हिन्दी (गद्य और पद्य) की सेवा उसकी शैशव काल में की उससे भी अधिक लगन के साथ द्विवेदी जी और उनके सहयोगियों ने हिन्दी की सेवा प्रौढ़ावस्था में की और निस्संदेह उसके शरीर (भाषा) और उसकी आत्मा (विचार-भाव) को अधिक पुष्ट एवं शक्तिशाली बनाया।''[52]

महात्मा गाँधी का ही प्रभाव था कि उन्होंने अंग्रंजी राज, जमींदारी प्रथा किसान आन्दोलन जैसे विषयों पर लेखनी चलाई। गाँधीवाद के जन-भाषा सिद्धान्त को इन्होंने कार्यान्वित किया है । काव्य-मंजूषा एवं अन्य संकलनों में यत्र-तत्र गाँधीवाद के सैद्धांतिक पक्ष को अभिव्यक्ति मिली है।''[53] जन्मभूमि, स्वतंत्रता, राष्ट्रीय भावधारा की नवजागरण परक कई कविताएँ लिखी। ऐसी कविताओं का विकास- मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारी सिंह दिनकर, शिवशरण सिंह सुमन आदि की कविताओं में हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तो यहाँ तक कहते हैं कि – ''हिन्दी साहित्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का सदा ऋणी रहेगा।''[54]

नाथूराम शर्मा 'शंकर' :

पंडित नाथूराम शर्मा 'शंकर' का जन्म सन् 1859 में अलीगढ़ जिले के 'हरदुआगंज' नामक कस्बे में हुआ था।[55] शंकर इनका उपनाम था।[56] प्रारम्भ में इनको हिन्दी,

उर्दू एवं फारसी का अध्ययन कराया गया। बाद में संस्कृत में भी पूर्ण योग्यता प्राप्त की। 'नक्शा' और 'पेमाइस' का काम सीखकर ये कानपुर के नहर विभाग में नौकरी करने लगे। अपने कार्य को निपुणता एवं जिम्मेदारी पूर्ण ढंग से करते थे। कार्यालय में अंग्रेज अफसरों को हिन्दी भी सिखाते। स्वाभिमानी 'शंकर' ने एक दिन एकाएक अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और हरदुआगंज लौट आए। वहाँ जाकर उन्होंने आयुर्वेद का अध्ययन किया और एक सफल वैद्य बन गए। इसी से उनकी आजीविका चलने लगी।

''आरंभ से ही शंकर जी बड़े साहित्यानुरागी थे। तेरह वर्ष की छोटी आयु में ही इन्होंने अपने एक साथी पर दोहा रचा था।''[57] वह उर्दू और फारसी का जमाना था। मुशायरों को जोर था। प्रारंभ में नाथूराम भी मुशायरों में अपनी रचना पढ़ते। लोग उन्हें आमंत्रित करते। बचपन से आर्य समाज का प्रभाव भी पड़ा था। कानपुर में उनकी भेंट प्रताप नारायण मिश्र से हुई, संपर्क बढ़ा, साहित्य चर्चा भी होती। धीरे-धीरे उनकी रचनाएँ 'ब्राह्मण' पत्रिका में प्रकाशित होने लगीं। हिन्दी के प्रति लगाव एवं स्नेह यहीं से आरंभ हुआ।

'शंकर' जी का रचना काल भारतेन्दु युग से लेकर द्विवेदी युग तक प्रसारित है। ये वास्तव में एक प्रकार से संक्रान्ति युग के कवि थे। उनके रचना काल का सबसे अधिक उव्रर समय वह था जब आर्य समाज एवं भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन युग की परिणति द्विवेदी युग में हो रही थी । साहित्य के विषय ही नहीं भाषा भी बदल गई थी। उस समय पुराने के प्रति मोह भी था, विवेक के आलोक में नए को ग्रहण करने की चेष्टा भी थी। महाकवि 'शंकर' में ये सभी प्रवृत्तियाँ बद्धमूल थीं।''[58] ''प्रारम्भ में ये ब्रजभाषा में कविता लिखते थे, किन्तु द्विवेदी जी के अनुरोध से उन्होंने खड़ीबोली को अपनी अभिव्यक्ति का साधन बनाया।''[59] डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है – '''शंकर' जी पर आर्य समाज तथा तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों का गहरा प्रभाव पड़ा, देश-प्रेम, स्वदेशी प्रयोग, समाज सुधार, हिन्दी अनुराग तथा विधवाओं और अछूतों का दारुण दुःख इनकी कविता के प्रमुख विषय हैं । सामाजिक कुरीतियों, आडम्बरों,

अन्धविश्वासों, बाल-विवाह आदि पर इन्होंने बड़े तीखे व्यंग्य किए हैं। रीतिकालीन पद्धति पर इन्होंने कुछ श्रृंगारमयी रचनाएँ भी की हैं। राजा रवि वर्मा के चित्रों के आधार पर भी सुन्दर कविताएँ लिखीं । 'छन्दशास्त्र' के ये मर्मज्ञ विद्वान थे।''[60]

अनुराग रत्न, शंकर - सरोज, गर्भ गण्डा रहस्य नामक ग्रंथ उनके जीवन काल में ही प्रकाशित हो गए थे। शंकर सर्वस्व नायक संग्रह में गीतावली, कविताकुंज, दोहा समस्यापूर्तिया आदि एक साथ प्रकाशित हुई। तत्कालीन कवि समाज एवं सम्मेलनों में उनका सम्मान होता था। उन्हें कविता-कामिनी कान्त, भारतेन्दु, प्रज्ञेन्दु, साहित्य सुधाकर आदि उपाधियों से विभूषित किया गया। ''खड़ी बोली के काव्य के प्रथम निर्णायकों में नाथूराम शर्मा अग्रणी हैं एवं कविता को समाज के साथ सम्बंधित करने का ऐतिहासिक दायित्व को इन्होंने निभाया है।''[61] देश, धर्म, भाषा, नीति आदि के प्रयोगों को देखकर कहा जा सकता है कि गाँधी विचारधारा का प्रभाव इन पर भी पड़ा था।

3 ख. गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख काव्य :

मानव की विराटता में विश्वास करने वाले हिन्दी के यशस्वी साहित्यकारों ने अखण्ड विश्वास के साथ गाँधी रूपी विराट-पुरुष के व्यक्तित्व और उसकी जय यात्रा को सिद्धान्तों को, मानदण्डों को, प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से साहित्य में आलोकित करने का सफल प्रयास किया है। गाँधी जी के व्यक्तित्व एवं विचारों से उनके तपः पूत जीवन एवं पावन सिद्धान्तों ने हिन्दी के अनेकानेक साहित्यकारों को अपनी ओर आकर्षित किया। परिणामस्वरूप अनन्य श्रद्धा तथा भक्ति के साथ साहित्य के विविध रूपों में उनकी वंदना की और उनके व्यक्तित्व को संजोया है। गोपीनाथ बरदोलई ने लिखा है – ''कोई कविता इतनी ऊँची नहीं हो सकती जो महात्मा जी के अन्त की सहृदयता को व्यक्त कर स, न कोई ऐसी भाषा ही समृद्ध जान पड़ती है, जो गाँधी जी की गरिमा को लिख सके।''[62] इस विराट पुरुष को पन्नों पर पूर्णरूपेण चित्रित करना असम्भव है तथापि उनके अनुयायियों का प्रयास सराहनीय है।''[63]

प्रियप्रवास : अयोध्या सिंह अपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा विरचित खड़ीबोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रियप्रवास' में गाँधीवाद का सशक्त प्रस्फुटन हुआ है। द्विवेदी युग के इस विराट काव्य में 'युग' के विराट देवता के अमर भावों की सुरभिमय अभिव्यंजना हुई है। 'प्रियप्रवास' की कथा पौराणिक आधार पर लिखी गयी है। कथा का मूल स्रोत है – श्री मद्‌भागवत के दशम् स्कंध का पूर्वाद्ध। हरिऔध जी ने कथा का सुन्दर अंश ही ग्रहण किया है। श्री कृष्ण की मथुरा यात्रा तथा वहाँ के प्रवास का वर्णन बड़े ही रोचक ढंग से किया है । ब्रजलीला, दुष्ट राक्षस वध आदि का वर्णन स्मरण के रूप में किया है। गाँधी के महत्त्वपूर्ण चरित्र का प्रभाव कवि हृदय पर पड़ा है। जिसके दर्शन इसे पढ़कर किया जा सकता है। 'हरिऔध' जी ने गाँधी के लोकनायक रूप को इस प्रबंध-काव्य में विराट काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। गाँधीवाद की मानवतावादी प्रवृत्ति का अंकन श्रीकृष्ण तथा राधा के चरित्र में हुआ है। हरिऔध जी ने लिखा है – "मैंने श्री कृष्ण को इस ग्रंथ में एक महापुरुष के रूप में अंकित किया है, ब्रह्म करके नहीं।"[64]

श्री कृष्ण के चरित्र का वर्णन करते समय हरिऔध के सम्मुख जो महान् चरित्र उपस्थित थे, उनमें गाँधी जी का चरित्र अवश्य था। ये नायक महात्मा के ही प्रतिरूप हैं। कवि मानस में अंकित गाँधी मूर्ति ही कृष्ण रूप में आ गई है – "होता सुप्रसिद्ध यह है, वह है महात्मा।"[65] हरिऔध ने कृष्ण को एक महान समाज सेवी, लोक सेवी, समाज सुधारक, पथ प्रदर्शक, आत्म त्यागी, लोक जननायक के रूप में चित्रित किया है। ये सभी गुण गाँधी जी के व्यक्तित्व में मिलते हैं। जिस प्रकार कृष्ण का व्यक्तित्व आकर्षक एवं लोगों के मन में सहज श्रद्धा उत्पन्न करने वाला है, साक्षात् रूप गाँधी का ही प्रतिरूप है। लोक सेवा, लोक-मंगल भावना, राष्ट्र प्रेम, विश्व प्रेम, विश्व बन्धुत्व, मानववादिता, अहिंसा, धर्म, सत्य, समर्पण, बलिदान, अपरिग्रह, उदारीकरण, उदारनारी भावना आदि सिद्धांतों को प्रियप्रवास में ग्रहण कर, गाँधीवाद की जयजयकार की है । गाँधी जी के सर्वभूतरक्षण की भावना कृष्ण में दर्शायी

गयी है।

वैदेही वनवास : "वैदेही वनवास 'हरिऔध' का दूसरा महाकाव्य है। इसमें अठारह सर्ग हैं। इसकी कथा ऐतिहासिक होने के साथ ही ऐसी कथा है जो पुत्र-पुत्र से हिन्दू समाज का मार्ग-दर्शन करती है।"[66] इस की कथा वाल्मीकि रामायण तथा उत्तर रामचरित पर आधारित है, परन्तु कवि ने उसमें अपनी इच्छानुसार कुछ परिवर्तन भी किए हैं। हरिऔध के इस रामकाव्य में शान्तिमय उपायों द्वारा हृदय-परिवर्तन करने की गाँधीवादी नीति दिखाई देती है। राम ने प्रजा को सन्तुष्ट करने के लिए शान्तिमय उपायों को ही अपनाया है । राम सीता को धोखे से वन, नहीं भेजते लोकापवाद की वार्ता सुनकर स्वयं सीता प्रजानुरंजनाथ के साथ सहर्ष वन गमन करती हैं। वैदेही वनवास में जिस अहिंसा के दर्शन होते हैं, वह गाँधीवाद का पूर्ण समर्थन करता हुआ प्रतीत होता है। गाँधीवाद अहिंसा को ऐसी शक्ति मानता है, जिसके द्वारा सम्पूर्ण विश्व में शान्ति की अविरल धारा बहाई जा सकती है।

इस काव्य में राम आदर्श राजा, सीता आदर्श पत्नी के रूप में चित्रित हैं। दोनों ही लोक आराधक हैं। सीता के चरित्र में जीव प्रेम एवं विश्व मानवता तथा राम के चरित्र में गाँधीवादी अहिंसा भावना, राष्ट्र-प्रेम, कर्त्तव्य-निष्ठा तथा लोक संग्रह की भावना का सुन्दर प्रस्फुटन है।

साकेत : इस महाकाव्य ने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त को, और भी महान बना दिया है। साकेत राम गीता है। यह कहीं उर्मिला का विरह गीत तो कहीं लक्ष्मण के प्रगतिवादी विचारों का प्रबंध है, कहीं स्वच्छन्दतावाद का स्वातंत्र गीत है, तो कहीं छायावाद का मानवीय उद्गीत है। यह कहीं-कहीं दिप्य मानवतावाद का पुनराख्यान-सा लगता है। इन सबसे अधिक नायक, गाँधी के अमर दर्शन से अनुप्राणित, गाँधीवाद का गौरव ग्रंथ है। साकेत गाँधी चिन्तन से प्रभावित ऐसा काव्य है, जिसमें रामकथा को नया राष्ट्रीय परिवेश प्रदान किया गया है। इस महाकाव्य की रचना उस समय हुई थी, जब भारत के इतिहास में गाँधी-युग पूर्णतः प्रतिष्ठित

हो गया था। अतः गाँधीवाद के समस्त तत्त्वों एवं आदर्शो ने इसमें स्थान पाया है । यथा- सत्य, अहिंसा त्याग, विश्वबन्धुत्व, लोकहित, लोकानुराग, गाँधीवादी सांस्कृतिक भावना, सेवा, धर्म, रामराज्य की कल्पना, कताई, बुनाई, अपरिग्रह, राजनैतिक आदर्श, स्वावलम्बन, अछूतोद्धार, उपेक्षित नारियों का उद्धार, गाँधीवादी मानवतावाद आदि।

साकेत पर गाँधीवाद के प्रभावों को स्वीकार करते हुए, आलोचक डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है – वह युग सौ फीसदी गाँधी युग था अतः साकेत की संस्कृति पर गाँधी युग का प्रभाव था। साकेत में प्राचीन और नवीन का संगम, गाँधी-नीति का ही प्रभाव है। गाँधीवाद का रामराज्य ही लगभग, 'साकेत' का रामराज्य है ।''[67] तत्कालीन युद्धों एवं राजनीतिक हलचलों का प्रभाव भी इस पर है। कृषकों के प्रति सहानुभूति, अहिंसात्मक युद्ध, राज्य व्यवस्था में प्रजा का अधिकार, सत्याग्रह, विश्वबन्धुत्व और मनुष्यता की भावना का बड़ी ही सुन्दरता के साथ वर्णन किया गया है। गाँधी जी ने स्वयं इसे धार्मिक ग्रंथ माना था। अपने आश्रम में इसे पढ़वाने की व्यवस्था भी की थी। गुप्त जी ने गाँधीवाद के असंख्य तत्त्वों की इतनी सशक्त अभिव्यंजना प्रस्तुत की है कि 'साकेत' गाँधीवाद का प्रतिनिधि काव्य बन गया है।

जयभारत : इस महाकाव्य में महाभारत की कथा वर्णित है। कर्ण, हिडिम्बा आदि का चरित्र-चित्रण, गाँधीवादी धरातल पर हुआ है। युधिष्ठिर के चरित्र में सत्य, धर्म प्रियता आदि गाँधीवाद के ही द्योतक हैं। युधिष्ठिर के चरित्र में प्रतिविम्बित गुण, सत्यवादी, धर्मनिष्ठ, शान्तिप्रिय, दयालु आदि गाँधी रूप का दर्शन कराते हैं। गाँधी जी की त्याग भावना की अपूर्ण झलक, भीष्म के चरित्र में प्रतिफलित हुई है।

पथिक : इस खण्ड काव्य की रचना श्री रामनरेश त्रिपाठी ने 1920 में की थी। यह युग गाँधीवाद के आरम्भ का युग था। अतः गाँधीवाद के विभिन्न सिद्धान्तों की गूँज, अनुगूँज इसमें प्रतिध्वनित हुई है। काव्य का नायक 'पथिक' गाँधी जी का ही प्रतिरूप है। गाँधीवाद के विभिन्न तत्त्व सत्य, अहिंसा, सेवा भावना असहयोग, आत्म बल, आत्मोत्सर्ग, स्वतंत्रता की आकांक्षा

आदि की अभिव्यक्ति इसमें हुई है। पथिक का नायक पूर्णतः अहिंसावादी समाज-सेवी है। समाज के उद्धार के लिए वह अपना सम्पूर्ण जीवन सेवा में व्यतीत करता है। गाँधी के समान ही पथिक सभी स्वार्थ एवं सुख की तिलांजलि देकर सेवा का मार्ग अपनाता है।

स्वप्न : रामनरेश त्रिपाठी द्वारा रचित खण्ड काव्य में गाँधी-युग के स्वातंत्रता संग्राम का जीवन्त चित्र अंकित है। गाँधीवाद से अनुप्राणित राष्ट्र प्रेम का सुन्दर वर्णन है। नायक 'वसन्त' देश-सेवा के लिए तन-मन धन न्यौछावर करने वाले क्रान्तिकारी वीरों का प्रतीक है। वसन्त में प्रेम एवं राष्ट्र-प्रेम दोनों है साथ ही साथ अज्ञात प्रियतम की खोज में जाने की इच्छा भी है । नायिका 'सुमना' के चरित्र में वही गुण है, जो तत्कालीन भारतीय महिलाओं में थे। सुमन वसन्त को कर्म पथ पर अग्रसर होने को कहती है। स्वयं भी युद्ध में सक्रिय भूमिका निभाती है। 'स्वप्न' का समुचा वातावरण राष्ट्रीय है। सुमन का प्रेम गाँधी-दर्शन की त्याग प्रवृत्ति से अनुरंजित है। समाज-सेवा, राष्ट्र सेवा, लोक-कल्याण का चित्रण गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य में हुआ है।

पंचवटी : मैथिलीशरण गुप्त ने 'पंचवटी' खण्डकाव्य की रचना रामायण की एक कथा प्रसंग के आधार पर की है। लक्ष्मण एवं शूर्पणखा के प्रसंग पर आधारित यह काव्य गाँधीवादी भावनाओं के प्रस्फुटन में पूर्णतः समर्थ है। 'पंचवटी' के शान्त एवं मनोरम प्राकृतिक वर्णन के बीच कवि ने लक्ष्मण के त्यागमय जीवन तथा सत्ता का स्वावलम्बन के साथ हरिजनोद्धार, नारी उत्थान, सेवा भावना, श्रम की महत्ता, रामराज्य की परिकल्पना आदि, गाँधीय प्रवृतियों का उद्घाटन किया है।

किसान : अंग्रेज सरकार द्वारा कृषकों पर किए गए, अन्याय से सारा देश क्षुब्ध था। गाँधी जी का हृदय भी द्रवित हुआ, उनमें सहानुभूति का उदय हुआ। वे किसानों को शोषण के पंजों से मुक्त कराने के प्रयास में लग गए। उन्होंने समाज से निवेदन किया कि समाज बेसहारों पर अत्याचार न करे, उन पर दया दिखाये, उनका मूल्यांकन करे, आदर करें । गाँधी जी की

हृदयस्थ, इन्हीं भावनाओं को गुप्त जी ने किसान काव्य में रूप दिया है। सन् 1930-40 के कृषकों की दशा का वर्णन है। गाँधीवादी धरातल पर आत्म कथात्मक शैली में, भारत के दलित किसानों की दयनीय दशा का वर्णन 'कल्लू' नामक किसान के माध्यम से किया है। पुलिस, जमींदार, महाजन आदि किस प्रकार उसे प्रताड़ित करते है, लूटते हैं, किस प्रकार गलत तरीके से उसे फिजी द्वीप पहुँचाते हैं। फिजी में अमानुषिक व्यवहार किया जाता है, इसका करुणात्मक चित्रण किया है।

इस काव्य में अनेक गाँधीवादी आदर्शों का वर्णन किया गया है। जिसे गुप्त जी ने गाँधी जी से प्रेरित होकर ही किया है। सर्वोदय भावना, कृषि का महत्त्व, उपकार भावना, जमींदारी प्रथा का विरोध, साम्य भावना, राष्ट्रीय भावना, पूँजीवाद का विरोध, नारी दशा आदि ऐसे आदर्श है जो गाँधीवाद को परिलक्षित करते हैं। इस काव्य ने स्वतंत्रता आन्दोलन में अनेक लोगों का साहस बढ़ाया और लोगों ने अंग्रेज सरकार का विरोध किया।

बापू : यह कवि सियारामशरण गुप्त का लघु काव्य है। इसमें मानवतावादी चेतना के कवि गुप्त जी ने मानवता के प्रतीक गाँधी को अपने काव्य का नायक बनाकर उनके प्रति श्रद्धांजलि समर्पित की है। मानव समाज को हिंसा एवं पाशविकता से मुक्ति देने के लिए गाँधी का अवतार, मानो सम्पूर्ण विश्व के लिए वरदान है। गुप्त जी ने बापू के लिए कुछ विशिष्ट सम्बोधनों का प्रयोग किया है : कृर्ति, कार्यवर्ती, पुण्य, सूर्य, विजयघोष आत्ममणि, पारदर्शी, मुक्तहास, तपस्वी, एकनिष्ठ, ज्ञान-गरिमा, विदेह आदि। उन्होंने गाँधी को बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद की पैगम्बरी पराम्परा में रखकर देखा है। साधारण होकर भी असाधारण और विशिष्ट होकर भी सामान्यजन के समीप है।

'बापू' काव्य केवल प्रशस्तिगान नहीं है। उसके माध्यम से कवि ने राष्ट्रीय गौरव एवं विश्व बन्धुत्व को भी दर्शाया है। भारतीय राजनीति में बीसवीं शताब्दी का चौथा दशक गाँधी युग का चरम क्षण माना जाता है । इसी के अनन्तर अगस्त-क्रांति और फिर स्वाधीन

भारत। गाँधी जी ने निराश समाज में नई आशा का संचार किया, हीन भावना से उबारा, समाज को संगठित किया, उसे नई दिशा दी। बापू भारत के सामान्य जन के मसीहा हैं, उनकी चिन्ता दरिद्र नारायण है।''[68] गुप्त जी ने वैष्णव परम्परा में गाँधी की परिकल्पना, नर-नारायण के रूप में की है। उनका मानना है कि व्यक्ति अपने सत्कर्म से ईश्वरत्व तक पहुँचता है।

'बापू' काव्य की यही विशेषता है कि इसमें सियारामशरण गुप्त ने गाँधीवाद की संवेदनाओं के अभिव्यक्ति करने का प्रयत्न किया है। जिसे भाव-विचार की मैत्री कहा गया है। गाँधी जी के एक विराट व्यक्तित्व को विश्व रंगमंच पर रखकर प्रस्तुत करने का यह एक अभिनव प्रयत्न है। प्रेम, अहिंसा भाव का प्रतिपादन कवि का मुख्य उद्देश्य है। 'बापू' राष्ट्र भावना से ओत-प्रोत एक ऐसा काव्य है, जिसमें गाँधी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ ही गाँधीवाद के सैद्धांतिक एवं प्रयोगात्मक विचारों की काव्यात्मक झाँकी प्रस्तुत की गई है।

उन्मुक्त : इस काव्य का प्रकाशन वर्ष सन् 1940 ई. है।[69] इस काव्य में सियारामशरण गुप्त ने विश्व युद्ध के दारुण दुष्परिणामों का हृदयग्राही एवं मर्मस्पर्शी चित्रण करते हुए, हिंसा से पीड़ित एवं त्रस्त, निरीह, निशस्त्र, जनता के लिए, अहिंसा रूपी परमौषधि को अत्यन्त उपयोगी माना है। गाँधीवाद के मूर्द्धन्य अहिंसा तत्त्व की प्रतिष्ठा के लिए ही प्रस्तुत कृति की रचना हुई है। ''सत्य, उनके लिए एक ऐसा अनिश्वर जीवन मूल्य है, जो मनुष्य को उच्चतम धरातल तक ले जाता है, ईश्वर से जोड़ता है। इस दृष्टि से वह ऐसी आध्यात्मिकता से समन्वित है, जिसमें गहरी मानवीयता है। गाँधी का दृढ़ विश्वास है कि सत्य पराजित नहीं होता और भारतीय महाकाव्यों में यह प्रतिष्ठित है। अहिंसा गाँधी का नैतिक अस्त्र है, जिससे उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में विजय प्राप्त की।''[70] सियारामशरण गुप्त को गाँधी जी के इस सत्य, अहिंसा ने सबसे अधिक प्रेरित किया है। गाँधी जी के सत्य, अहिंसा का पालन करते हुए उनके पात्र सब कुछ सहन कर लेते हैं, पर विद्रोह नहीं करते और प्रतिकार भाव तो उनमें

आता ही नहीं है।

'उन्मुक्त' का कथानक कुसुम द्वीप से सम्बन्धित है जिसके शक्ति संचालक तीन व्यक्ति हैं – पुष्पदन्त, गुणधर और मृदुला। वे अहिंसा में विश्वास रखते हैं। इनमें से गुणधर अहिंसा का अनन्य उपासक है। पुष्पदन्त एवं मृदुला आत्म रक्षा हेतु हिंसा का सहारा भी लेते हैं। पुष्पदन्त को भस्मक किरण का अवैध उपयोग करते देख गुणधर युद्ध से विरक्त हो जाता है । पुष्पदन्त उसे मृत्युदण्ड देता है, परन्तु दण्ड विधान पूर्ण होने से पूर्व ही ये तीनों सहयोगी के रूप में मिलते हैं और अहिंसा को ही जीवन मुक्ति मानकर तीनों उन्मुक्त हो जाते हैं। उन्मुक्त युद्ध के विरोध में लिखा गया वैचारिक काव्य प्रयत्न है, जो गाँधीवादी सिद्धांतो से परिपूर्ण है। 'उन्मुक्त' काव्य के विषय में डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है – "उन्मुक्त में अपने ढंग से युद्ध की अनिवार्यता, त्याग, बलिदान, यातना, विभिषिका और मानवीय करुणा का अद्‌भुत समन्वय हुआ है।

उन्मुक्त में कुसुम-द्वीप एक शान्ति प्रिय नगर है। वह शान्त भाव से कला-सौंदर्य और शान्ति की उपासना करता है, किन्तु अत्याचारी लौह-द्वीप के लोग उसे युद्ध करने पर मजबूर करते हैं। कवि की दृष्टि में यथार्थ और स्वप्न का बड़ा सुन्दर सामंजस्य है। यथार्थ यह है कि कवि ने लौह-द्वीप जैसे युद्धप्रिय शक्तिशाली नगर के आक्रमण के फलस्वरूप, कुसुमद्वीप जैसे शान्त कोमल नगर की होने वाली परिणतियों को बड़ी सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया है। उसके शौर्य और पराक्रम को सही ढंग से आंका है। मानवीय घृणा और कुरूपता को उभारा है। किन्तु इस सारे कठोर यथार्थ के भीतर से मानवीय यातना और करुणा को उभार कर, मनुष्य और समाज में प्रेम तथा अहिंसा को प्रभावशाली ढंग से प्रतिष्ठित किया गया है। यथार्थ और स्वप्न, दोनों के निरूपण के लिए कवि ने बहुत समर्थ और जीवन्त बिम्बों की रचना की है।"[71]

हिडिम्बा : राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'हिडिम्बा' काव्य का प्रकाशन 1950 में

हुआ।[72] इसमें भीम और हिडिम्बा के प्रेम-विवाह का वर्णन है। गुप्त जी ने भीम तथा हिडिम्बा के मनोभाव के वर्णन में गाँधी जी की प्रेम-भावना, वर्ण रहित समाज की कल्पना, करुणा, त्याग आदि को उभारा है। हिडिम्बा यहाँ राक्षसी होकर भी कुलवधू व वीरांगना है। उसका पत्नी रूप गाँधीवादी ढाँचे में ढला है। गाँधीवादी मानवीय सिद्धांतों को गुप्त जी ने बुलन्द आवाज प्रदान की है। विश्व-प्रेम से ओत-प्रोत यह काव्य गाँधीवाद के विश्वबंधुत्व का प्रतीक है।

विष्णुप्रिया : मैथिलीशरण गुप्त की विष्णुप्रिया 1952 का प्रकाशित हुआ।[73] इस खण्ड काव्य में चैतन्य महाप्रभु एवं गौरांग का त्यागमय जीवन चित्रित है। विष्णुप्रिया के चरित्र में परिलक्षित सेवा तथा त्याग भावना युगीन गाँधीवादी नारी का स्मरण दिलाती है। गाँधीवादी पवित्र प्रेम भावना का आश्रय भी कवि ने लिया है। चैतन्य महाप्रभु के चरित्र में गाँधीवादी प्रवृत्तियों का उन्मेष करवा कर उन्हें कोढ़ियों की सेवा, सुश्रुषा तथा देव-दासियों का उद्धार करते हुए देखा गया है। सेवा, निष्ठा, सत्य आदि मूल्यों से परिपूर्ण यह काव्य गाँधीवाद का द्योतक है।

आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त राष्ट्र भक्त कवि थे। राष्ट्र प्रेम उनमें कूट-कूटकर भरा था। राष्ट्र के प्रति समर्पित व्यक्तियों तथा बलिदानियों के सम्मुख, वे सदा नतमस्तक रहे। देश के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वाले अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी के बलिदान पर सारा देश दुःखी था। आत्मोत्सर्ग काव्य इसी दौरान लिखा गया था। इस काव्य रचनाका प्रथम प्रकाशन सन् 1933 ई. में हुआ था।"[74] इस पुस्तक की भूमिका में महात्मा गाँधी ने लिखा है– श्री गणेश शंकर विद्यार्थी एक मूर्तिमान संस्था थे। ऐसे मौके पर उनकी मृत्यु होना एक बड़ी दुःखद बात है, परन्तु यह उनके योग्य ही था कि वो हिन्दू और मुसलमानों का एक दूसरे का सिर तोड़ने से उन्हें बचाते हुए मरे।"[75] तीन खण्डों की इस कविता का मुख्य आशय हिन्दू, मुस्लिम, भाईचारा पर बल देना है जो गाँधी जी का प्रिय विषय था और जिसके लिए वे शहीद हो गए। गुप्त जी साम्राज्यवाद को बुराइयों की जड़ मानते हैं।

भारत-गीत : यह कृति 1918 ई. में प्रकाशित हुई ।[76] गौरव की चेतना से रचे गए गीतों का

संग्रह ही भारत-गीत है। श्रीधर पाठक ने अपने देश की तत्कालीन शोचनीय एवं दयनीय परिस्थिति का वर्णन भी इसमें किया है। इसमें मातृभूमि के प्रति प्रेम की अनेक रूपों में अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने उदार हृदय वाली मातृभूमि को माँ के समान अपने सभी निवासियों के लिए सम-भाव रखने वाली बताया है। देश की सभी उपभोग्य वस्तुओं पर हर नागरिक का समान अधिकार है।

अतीत के गौरव का स्मरण दिलाकर अपनी सभ्यता और संस्कृति के महत्त्व की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए, बार-बार अपने जन समाज का ध्यान वे देश की पराधीनता की ओर आकर्षित करते हैं। वे देश की परिस्थिति से व्याकुल हैं। उनका हृदय मार्मिक पीड़ा का अनुभव करता है। यह वही अनुभव है, जो गाँधी जी को हुआ। कवि की पीड़ा गाँधी की पीड़ा है। गाँधी जी नवयुवकों को देश-प्रेम की ओर उन्मुख करते हैं और देश को उन्नत करने के लिए व्रत का पाठ सिखाते है।

काव्य-मंजूषा : महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 33 कविताओं के इस संग्रह का प्रथम प्रकाशन 1903 ई. में जयपुर के जैन वैद्य ने प्रकाशित किया था।[77] इसमें संकलित प्रार्थना, जन्मभूमि, स्वेदेशी वस्त्र, प्यारा वतन, कर्त्तव्य चन्दर्शी, जै-जै भारत देश आदि अनेक कविताओं में कवि ने गाँधीवाद के जन भाषा सिद्धांत को कार्यान्वित किया है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक लिखा है – द्विवेदी जी की कविताओं में अनेक प्रकार के भाव और विचार मिलते हैं। जब उन्होंने कविता लिखना शुरू किया तब स्वदेश प्रेम, धर्म-प्रेम, प्रकृति-प्रेम आदि विषयों पर कविताएँ लिखी जा रही थीं। अतीत गौरव गान भी कविता का एक मुख्य विषय था। द्विवेदी जी ने अपनी फुटकर कविताओं में इन सभी विषयों का समावेश किया है। समाज सुधार एवं नारी जाति की दुर्दशा पर भी उन्होंने सहृदय, संवेदनशील, भावपूर्ण कविताएँ लिखी हैं।[78]

उजड़ ग्राम : श्रीधर पाठक द्वारा अनूदित यह खण्ड काव्य गाँधीवाद की गाँवों के प्रति सहानुभूति, गाँवों की विकास भावनाओं से प रिपूर्ण है । सन् 1889 ई. में पाठक जी ने गोल्ड

स्मिथ के 'दि डिजर्टेड विलेज' का अनुवाद 'उजड़ ग्राम' के नाम से किया।[79] इस काव्य में इंग्लैण्ड के एक गाँव के विकास एवं पतन की कहानी है । गाँव में हुए परिवर्तनों का वर्णन मार्मिक शैली में प्रस्तुत किया गया है। इंग्लैण्ड का यह गाँव अपनी मानवीय परिस्थितयों और संवेदनाओं के अंकन की दृष्टि से हर देश एवं काल का है जो मानवीय करुणा के आधार विश्व स्तर पर प्रतिष्ठित कर पाया । गोल्डस्मिथ ने भले ही इस खण्ड काव्य को इंग्लैण्ड को आधार बनाकर लिखा हो, पाठक जी ने इसका अनुवाद विश्वजनीन भाव से किया जो भारतीय संस्कारों से सम्बद्ध है।

श्रान्त पथिक : कवि श्रीधर पाठक का गोल्ड स्मिथ के 'दि ट्रेवलर' का हिन्दी काव्यानुवाद ही श्रान्त पथिक है। पाठक जी ने इस काव्य द्वारा मनुष्य को सुख की प्राप्ति कैसे हो, इसके लिए विभिन्न देशों के राष्ट्रीय जीवन के साथ इस प्रश्न को रखकर विवेचित किया है। गाँधी जी ने लोगों से संकीर्णता को त्यागकर, विश्वबंधुत्व को अपनाने पर बल दिया था। पाठक जी को भी गोल्ड स्मिथ' की संकीर्णता से ऊपर उठने एवं आत्मसुख की भावना ने प्रेरित किया है। मानवीय नैतिकता से परिपूर्ण इस काव्य में गाँधीवाद के प्रमुख तत्त्वों की भी परिणति है।

3. ग गाँधीवादी चेतना की अभिव्यक्ति :

सत्य : गाँधी-युग सत्य और सत्याग्रह का युग था। सत्य एक शाश्वत वृत्ति है, परन्तु उसे नैतिक सामाजिक जीवन में ही नहीं आर्थिक और राजनीतिक जीवन में चरितार्थ करने की प्रेरणा महात्मा गाँधी ने ही दी है। उनका सत्याग्रह विश्व की युद्ध नीति में एक युगान्तर है। गाँधी जी के भारतीय जीवन में पदार्पण के साथ ही सत्य, सत्याग्रह, प्रेम और अहिंसा के मंत्र वातावरण में गूँजने लगे। गाँधी जी ने सत्य को सीधे शिवत्व तक पहुँचाया तथा उनके इस स्वरूप की काव्यमय व्याख्या करने का सफल प्रयास द्विवेदी युगीन कवियों से आरम्भ हुआ। गाँधी जी को विश्वास हो गया था कि यह 'सत्य' ही ईश्वर है। उनके इस भाव की अभिव्यक्ति देते हुए मैथिलीशरण गुप्त ने शिव के दर्शन कर सत्य को सभी धर्मों का सार कहा है—

सत्य से ही स्थिर है संसार, सत्य ही सब धर्मों का सार

राज्य ही नहीं प्राण परिवार, सत्य पर सब कर सकता हूँ वार।[80]

सत्य शाश्वत होता है। इसे प्राप्त करने अथवा जानने हेतु ऋषि-मुनियों ने स्वयं को ही भुला दिया था तब जाकर कहीं उन्हें सत्य ज्ञान प्राप्त हुआ –

सत्य शाश्वत एक ही तब तो सदा, एक दो देखे बिना ही दूसरे

सिद्ध बुद्ध मसीह पैगम्बर बिबुध, पा सके हैं पा रहे हैं सब कहीं।[81]

इसी सत्य द्वारा परम आनंदमय ईश्वर की प्राप्ति संभव है। इस सत्य में अतीत के कितने ही युग विद्यमान हैं –

सार्वदेशिक सार्वभौमिक सार्वसत्, यह परम चिन्मय परम आनन्दमय

सब कहीं निर्भय त्रिकालातीत है, वर्तते इसमें अनन्त अतीत युग।[82]

सत्य के पथ पर अविचल बढ़ते जाना ही गाँधी विचारधारा की साधना है। महावीर प्रसाद द्विवेदी सत्य का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि सत्य, सत्य ही होता है, इसलिए हर कार्य चाहे वह हल्का हो या भारी हो सत्यानुराग से ही करना चाहिए –

प्रत्येक काम हल्को अथवा गति भारी, सत्यानुराग तव सर्व कहु निहारी,

प्राचीन सत्य हरिचन्द गयौ भुलाई, है सत्य सत्य ; न असत्य कहौ बनाई।[83]

बापू के अनुसार संसार में जन्म लेकर जीवन सार्थक करना आवश्यक है। मनुष्य मात्र का कल्याण इसी में है कि वह सत्य के आदर्शों का पालन करे और सत्य की स्थापना में ही अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दे। भारत के अनक ऋषि, राजा, संत आदि ने अपना शरीर त्याग दिया लेकिन सत्य को नहीं छोड़ा –

लक्ष्मी नहीं सर्वस्व जावे सत्य छोड़ेंगे नहीं,

अंधे बने पर सत्य से सम्बन्ध तोड़ेंगे नहीं,

निज सुत-मरण स्वीकार है, पर वचन की रक्षा रहे,

है कोन जो उन पूर्वजो के शील की सीमा कहे ?[84]

सत्य को गाँधी जी ने एक ऐसा अमोध अस्त्र माना है, जिसके सामने संसार का हर अस्त्र तुच्छ है। हरिऔध के लक्ष्मण इसी बात की पुष्टि इन शब्दों में करते हैं –

सत्य के सम्मुख रहेगा, भला कैसे असत्य जन रव

तिमिर सामना करेगा क्यों दिवस का, जो है रवि संभव।[85]

सत्य की ही हमेशा विजय होती है। इस सिद्धांत को गाँधी जी ने ही नहीं, सभी धर्मों एवं विद्वानों ने मान्यता प्रदान की है। सियारामशरण गुप्त ने 'बापू' काव्य में गाँधी जी को सत्य, अहिंसा के मंत्र फूकने वाला ऋषि कहा है –

ऊजस्विते, सत्य के अहिंसा के अमृत से ;

मुक्त छल हृदय के भारत से।

बोला यह कोई मंत्र दृष्टा ऋषि नूतन में,

प्राण के पवित्र नवोद्‌बोधन में।[86]

इतना ही नहीं वे अहिंसा गीत गाने वाले उस काल तीर्थ की वाजी में नारायनत्व की झलक पाते हैं –

धन्य वह काल तीर्थ कालातीत, बोला जहाँ नारायण नर में,

'सत्यमेव जयेते' अहिंसा गीत गूँजा है जहाँ शुद्ध स्वर में।[87]

गाँधी जी के अनुसार ईश्वर का सच्चा नाम सत् अर्थात् सत्य है। अतः सभी को ईश्वर से सत्य मार्ग पर चलते हुए अमृत्व की ओर जाने की प्रार्थना करनी चाहिए–

प्रार्थना सबके हृदय में भीतरी, असत से सत में हमें तुम ले चलो,

ले चलो हमें तिमिर से, ज्योति में, मृत्यु से अक्षय अमृत में ले चलो।[88]

गुप्त जी का तो यह मानना है कि सत्य को हमेशा अपनाना चाहिए। सुख-दुःख, संकट विकट ये भी जीवन के सत्य हैं, उनका सामना करना चाहिए –

कहा राम ने कि यह सत्य है, सुख दुःख सब है समयाधीन।

X X X X

जब वे आ जावें तब उनसे, डटकर शूर समर ठाने।।[89]

अहिंसा : विश्व महायुद्ध के ताण्डव पूर्ण वातावरण में गाँधी जी के 'अहिंसा' सिद्धांत ने आशा का संचार किया। गाँधी जी के अनुसार – अहिंसा का सिद्धांत निर्जीव नहीं, एक अमोघ और प्राणदायिनी शक्ति है। वह परम धर्म है। अहिंसा रूपी सूर्योदय के होते ही, घृणा, क्रोध, राग-द्वेष आदि तामसिक वृतियों का अन्त हो जाता है। अहिंसा आत्मा का एक विशिष्ट गुण है। गाँधी जी की अहिंसा, बुद्ध एवं महावीर के समान केवल नकारात्मक अवरोध नहीं, बल्कि अत्यन्त शक्तिशाली है। उन्होंने महाभारत, नीतिशास्त्रों की बात मानते ही कहा कि घृणा से घृणा अथवा हिंसा से हिंसा का अंत नहीं हो सकता। मानव-कल्याण के लिए प्रेम और अहिंसा ही एक मात्र उपाय है। अहिंसा सत्य का दूसरा रूप है अर्थात् सत्य का भावपक्ष है। केवल हिंसा या व्यापक अर्थों में द्वेष का नाश अहिंसा नहीं है। अहिंसा का वास्तविक रूप है – समग्र प्राणीमात्र के लिए प्रेम-भावना, क्योंकि सारा विश्व एक ही सत्य से अनुप्राणित है।

गाँधी जी की इसी अहिंसात्मक, विचारधारा को द्विवेदी-युगीन कवियों ने काव्य में प्रतिपादित किया। गाँधीवाद अहिंसा को एक ऐसा शक्ति मानता है, जिसके द्वारा समग्र विश्व में शान्ति की अविरल धारा बहाई जा सकती है। 'वैदेही-वनवास' के नायक श्री रामचन्द्र पूर्णतः गाँधीवादी अहिंसा तत्त्व के समर्थक हैं। राम के लोकाराधक रूप 'वैदेही-वनवास' के तृतीय अध्याय में सुस्पष्ट है। वे लोक इच्छा से प्रभावित हो अपने स्वार्थ का त्याग कर सीता को वन भेजने के लिए तत्पर हो जाते हैं। सब त्यागकर अहिंसा पूर्वक ढंग से समस्या को सुलझाना चाहते हैं।

दमन है मुझे कदापि न इष्ट। क्योंकि वह है भय मूलक नीति।।

चाह है लाभ करूँ कर त्याग, प्रजा की सच्ची प्रीति-प्रतीति।[90]

सौमित्र से कहे उनके वचनों में गाँधीवादी अहिंसात्मक भावना ध्वनित है–

'दमन चक्र यदि चलता तो बहता लहू।

वृथा न जाने कितने कट जाते गले।।[91]

गाँधी जी अपने सिद्धांतों को किसी पर थोपना नहीं चाहते थे। गुप्त जी ने भी 'द्वापर' में अहिंसा सिद्धांत को विचार पूर्वक अपनाने को कहा है –

तुम मेंरे अनुगामी यह तो मुझ पर प्यार तुम्हारा,

x x x x

तो फिर तुम उनके प्रसार का भार आप पर जानो।[92]

रामनरेश त्रिपाठी रचित 'पथिक' के नायक को राजा द्वारा जब मृत्यु दण्ड दिया जाता है, तब जनता में शासक के प्रति प्रतिहिंसा की भावना जाग उठती है। तब 'पथिक' अहिंसात्मक वृत्ति की अभिव्यंजना करते हुए अपना गाँधीवादी दृष्टिकोण व्यक्त करता है–

कहने लगा-सुनो हे भाई, क्षण भर शक्ति सँभालो ।

x x x x

इनके लिए क्रोध का कारण, मन में मत आने दो।[93]

विज्ञान का वह रूप जो मानव के विनाश में सहायक हो, बापू को पसन्द न था। वे स्वाभाव से अहिंसक थे, ऐसे वैज्ञानिक आविष्कारों से दूर रहने की सलाह देते थे, जो अस्त्र मानव समाज को नष्ट करे। कवि ने इन विचारों को प्रकट करते हुए लिखा है –

लगता मुझे तो यह आत्मघात अपने,

आयुद्धों से करते है, हमी है स्वयं अपना।[94]

आज मनुष्य जब जंगली सभ्यता से अंतर्राष्ट्रीय सभ्यता में प्रवेश कर रहा है, तब पशुतावादी तौर-तरीकों का दौर समाप्त होना ही चाहिए। यदि आज भी वही मारकाट, खून-खराबा हो तो विश्व मानवता का सिर लज्जा से झुक जायेगा । अहिंसा मानव को

जंगलीपन से निकालकर मानवतावादी सभ्यता की ओर ले जाने में सहायक होती है। हिंसा मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों का अवशेष है। इसका यथाशीघ्र निर्मूलन होना ही चाहिए। एक दूसरे को मारने का अधिकार किसने दिया। इस भावना को गुप्त जी ने प्रकट किया —

तुम निर्माण नहीं कर सकते, फिर क्यों नाश करोगे,
जीवन देकर जीयो, मारकाट कर क्या तुम नहीं मरोगे।[95]

युद्ध द्वारा स्थायी शान्ति प्राप्त नहीं होती। युद्ध को ऐसे किस अस्त्र से जीता जाए, जिससे रक्त न बहे, इस उत्तर में गाँधी जी ने स्वपरीक्षित अहिंसा रूपी अस्त्र हमें दिया। सियारामशरण गुप्त ने इसी महान सत्य की स्थापना की है कि अहिंसा की नीति ही सफल है—

हिंसानल से शान्त नहीं होता हिंसानल,
जो सबका है, वही हमारा भी है मंगल।
मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।[96]

गुप्त जी ने दार्शनिक तत्त्व का सहारा लेकर हिंसा वृत्ति का खण्डन किया है—

हिंसा के उपद्रव से सम्भव विनाश नहीं नर का
अमृत पिये है, वह आत्मज अमर का।[97]

ट्रस्टीशिप : 'ट्रस्टीशिप' में प्राणिमात्र के कल्याण की भावना निहित है। इसी से लोक-संग्रह अथवा लोक-कल्याण की सिद्धि होती है। ट्रस्टीशिप सिद्धांत का अभिप्राय यह है कि पूँजीपति अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं से अधिक सम्पत्ति को समाज की धरोहर (ट्रस्ट) मानें। गाँधी जी पूँजीपतियों को धन के 'एक न्यासी' के रूप में देखना चाहते थे। धन उनके हाथ में रहेगा और वे उसका उपयोग अनासक्त रहकर धार्मिक भाव से करेंगे। इस सिद्धांत से आर्थिक विषमता के कारण समाज में धनी और निर्धन के बीच जो खाई है वह पटेगी। उनका मानना

था कि धनी लोग निर्धन को सताये नहीं और अपने आपको उनका 'ट्रस्टी', पोषक और सहायक समझे। यही भावना 'साकेत' के राम की है। राम संग्रह के पक्षधर नहीं हैं। अमीरों को चाहिए कि वे अपने धन को जनता की धरोहर समझकर खर्च करें –

जो संग्रह करके त्याग नहीं करता,

वह दस्यु लोक धन लूट-लूट धरता है।[98]

धन की तीन ही गतियाँ हैं – भोग, दान और नाश। धन का क्षय भोग या नाश से हो, इससे अच्छा है, दान कर दिया जाये। इससे इहलोक और परलोक दोनों ही सुधरते हैं। गुप्त जी धन की गति को लक्ष्य करते हुए कहते हैं –

धन का लाभ यही है इससे

पावें जितने जन परितोष।[99]

अतः दान देना ही श्रेयस्कर है। 'द्वापर' में गुप्त जी इसी मत की पुष्टि करते हैं –

धन धान्य पूर्ण घर मेरा

पाया है, तब देने को भी प्रस्तुत है कर मेरा।[100]

हृदय-परिवर्तन : गाँधी जी के हृदय-परिवर्तन का सिद्धांत उनकी मानवतावादी आस्था पर अवलंबित है। उन्होंने इसे सहज मानवीय प्रक्रिया मानी है। उन्होंने हृदय परिवर्तन के द्वारा आर्थिक समानता की स्थापना के अहिंसक क्रान्ति का स्वप्न मान लिया व्यक्ति सृष्टि में मानव के रूप में ही आता है, किन्तु वह देशकाल से बँध कर स्वयं को अमुक देश का नागरिक या निवासी मान लेता है। उसका यह देश कालगत रूप अस्थायी या परवर्ती रूप है। मूलतः वह मानव है। सम्पूर्ण विश्व एक घटक है। जब समग्र विश्व-परिवार की बात आएगी तो उसे देशीय रिश्ते को तिलांजलि देनी पड़ेगी। गाँधी जी का यही भाव था। वे भारत के होकर भी दक्षिण अफ्रीका के थे, इंग्लैण्ड के थे, और इन सबसे पहले विश्व के थे। वे प्रत्येक मानव का अच्छे कार्य के लिए हृदय-परिवर्तन कराना चाहते थे । उनका मानना था कि अन्यायी शोषक और

अनीतिवान का हृदय-परिवर्तन होना चाहिए। वे समाज में पूँजीपतियों के अस्तित्व को मिटाना नहीं चाहते थे। वे उनका हृदय-परिवर्तन कराना चाहते थे। गाँधी जी के इस रूप की काव्याभिव्यक्ति द्विवेदी-युग में अनेक रूपों में हुई है।

सियारामशरण गुप्त ने अपने 'उन्मुक्त' काव्य में हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस रचना में 'गुणधर' और 'पुष्पदंत' का भी हृदय-परिवर्तन होता है। वे युद्ध और हिंसा के दुष्परिणामों से अवगत हो जाते हैं। वे अहिंसा के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हैं। हिंसक शत्रु के हृदय-परिवर्तन की संभावना और प्रक्रिया का वर्णन करते हुए पुष्पदंत गुणधर से कहता है –

जानता हूँ निस्संशय,

x x x

कर उसका उन्नयन स्वयं उन्नत होंगे हम।[101]

'साकेत' की कैकेयी में आत्म ग्लानि को मुखरित कर कवि ने गाँधीवादी हृदय-परिवर्तन के सिद्धांत में अपनी आस्था व्यक्त की है।

''युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी,

रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।[102]

सत्याग्रह : गाँधी विचारधारा के सत्य-अहिंसा तत्त्वों का रचनात्मक अथवा कर्ममय रूप सत्याग्रह है और उसके द्वारा सर्वोदय की साधना करने वाला साधक सत्याग्रही। गाँधीवाद में यह अस्त्र हृदय-परिवर्तन पर अवलंबित और आत्म-बल का प्रतीक है। गाँधी जी ने अपने देश को स्वतंत्र करने के लिए विविध योजनाओं का निर्माण किया था। स्वतंत्रता प्राप्ति उनका लक्ष्य था और साधन थे सत्य और अहिंसा। उनका यह स्वातंत्र्ययज्ञ पूर्ण रूप से अहिंसात्मक था। आत्मशक्ति एवं सत्याग्रह ही इसे बल पहुँचाते थे। गाँधी जी ने अन्याय का प्रतिरोध करने के लिए यह पद्धति आविष्कृत की थी जो प्रतिपक्षी को प्रेम से जीतने की धारणा पर आधारित है।

गाँधी जी ने सत्याग्रह को आत्म त्याग का चिर-प्राचीन नियम बताया है – सत्याग्रह और उससे उद्भूत असहयोग तथा सविनय अवज्ञा, कष्ट सहन की विधि के नये नामों के अतिरिक्त कुछ नहीं। सत्याग्रह का मूल यही है कि आत्मोत्सर्ग द्वारा पीड़ित करने वाले का हृदय-परिवर्तन कर उसमें न्याय की भावना जागृत की जाए। डॉ. विनय मोहन शर्मा के शब्दों में – "गाँधीवाद युद्ध के स्थान पर सत्याग्रह है। लेकिन यह आग्रह विरोधी के नाश अथवा उसकी किसी प्रकार की हानि करने की प्रवृत्ति को प्रश्रय नहीं देता। गाँधीवाद सत्याग्रह द्वारा विरोधी के हृदय-परिवर्तन में विश्वास करता है।"[103]

साम्राज्यवाद के संघर्ष के लिए गाँधी जी ने सत्याग्रह का कार्यक्रम देश के सम्मुख उपस्थित किया था। सत्याग्रह की सफलता ने पराधीन देशों, दलित वर्गों और शोषित जातियों की मुक्ति का नूतन साधन प्रस्तुत किया । आलोच्य काल में देश की राजनीति, समाज-नीति, अर्थ-नीति तथा साहित्य-नीति पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है– "गाँधी जी की विचारधारा को आत्मसात कर साहित्य-सृजन करने वाले साहित्यकारों में से कुछ कवियों ने तो गाँधी जी की स्वराज्य-विषयक धारणा जैसे सत्याग्रह, अहिंसा, सत्य, निर्भयता आदि तत्त्वों को ज्यों का त्यों अपनी कविताओं में सजा दिया है।"[104] मैथिलीशरण गुप्त की कविता में ये सभी तत्त्व विद्यमान हैं –

> भय ही नही, किसी का है जब करें किसी पर हम क्यों क्रोध,
>
> जियें विरोधी भी, विरोध हो, पायेगा, इससे परिशोध।
>
> अस्त्र अपूर्व अमोघ हमारा निश्चित है निष्क्रिय प्रतिरोध,
>
> प्रतिपक्षी भी रण में हमसे पावें प्रेम, प्रसाद, प्रबोध।
>
> रक्तपात वीरत्व नहीं, वह है वीभत्स विधान।
>
> सुनो सुनो भारत सन्तान।"[105]

सर्वोदय की साधना सत्याग्रह है और इसका साधक सत्याग्रही । निष्क्रिय प्रतिरोध

अथवा सत्याग्रह मनुष्य के पशु बल का लक्षण नहीं आत्मबल का प्रतीक है। सत्याग्रह को रामनरेश त्रिपाठी ने सच्चे रूप में हृदयंगम करके कविता में प्रतिष्ठित किया है –

मैं अमर हूँ, मौत से डरता नहीं, सत्य हूँ मिथ्या, डरा सकती नहीं,

मैं निडर हूँ शस्त्र का क्या काम है, मैं अहिंसक हूँ न कोई शुत्रु है।''[106]

हरिऔध जी के अनुसार सच्चा सत्याग्रही वहीं है जो कभी विचलित नहीं होता तथा प्रतिक्षण प्रसन्नता पूर्वक अपने कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होता रहता है। वह लोक सेवा को अपना प्रथम कर्त्तव्य मानता है। वैदेही वनवास के राम गाँधी जी के आदर्श सत्याग्रही की भाँति जन-हित एवं लोक-सेवा को अपने जीवन का परम लक्ष्य समझते है। वे सामनीति के उपासक हैं, दमन उन्हें अभीष्ट नहीं।[107] राम की इस राजनीति पर गाँधी जी के अहिंसावाद और सत्याग्रह की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है। राम की शक्ति प्रियता दृष्टव्य है –

पठन पर लोकाराधन मंत्र । करूँगा मैं इसका प्रतिकार।

साधकर जनहित-साधन सूत्र।करूँगा घर-घर शान्ति-प्रसार।[108]

सियारामशरण गुप्त तो सच्चे गाँधीवादी थे। वे कई बार अधिवेशनों, सम्मेलनों और आन्दोलनों में गाँधी जी के साथ रहे। प्रभाकर माचवे ने देश-विदेश में यह विचार व्यक्त किया कि गाँधी दर्शन का सर्वाधिक प्रभाव सियारामशरण जी की रचनाओं पर पड़ा है।''[109] हरिवंश राय बच्चन का यह विचार है कि उनके 'पाथेय' के पीछे गाँधी जी के सत्याग्रह-आन्दोलन की प्रेरणा थी .... बापू पर हिन्दी में उससे (बापू से) अच्छी रचना शायद ही हो।''[110] 'बापू' काव्य के अनुसार जब बापू अपने सत्याग्रही वीरों की टोली बनाकर सत्याग्रह आन्दोलन के लिए चलते थे तो मार्ग में जनता उत्सुकता वश उनके दर्शनार्थ अड़ी-खड़ी रहती थी –

वायु बही सर-सर, काँप उठे अनन्य वृक्ष थर-थर,

x x x x

आई अहा ! मूर्ति वह हँसती, जैसे एक पुण्य लक्ष्मी स्वर्ग से उतरके ।"[111]

अगस्त 1920 में सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग राष्ट्रीय व्यापकता के साथ हुआ। हिन्दू-मुस्लिम का कोई भेद राष्ट्रीयता में न था। इस समय प्रत्येक सत्याग्रही ने आगे बढ़कर प्रण किया –

चलो हम आहुति दे-दे प्राण। न होगा कर्मयज्ञ बिन त्राण।

x x x x

पूर्ण हो विजय यज्ञ भगवान। जपेंगे जय-जय मंत्र महान।।[112]

वैदेही-वनवास का कवि तो लोकाराधन के लिए आत्म बलि तक की प्रेरणा प्रदान करना चाहता है –

जाति-मुक्ति के लिए आत्म बलि ही जाती है।

परम अमंगल क्रिया पूर्ण कृति कहलाती है।[113]

गुप्त जी के राम तो दूसरों के कष्ट एवं दुखों का सहन शक्ति से ही दूर करना चाहते हैं–

यदि संकट ऐसे हों जिनको, तुम्हें बचाकर मैं झेलूँ,

x x x x

कुछ निश्चय कर सकूँ कि कितनी, सहन शक्ति रखता हूँ मैं।[114]

गाँधी जी कहते थे यह याद रखना चाहिए कि सत्याग्रह अगर संसार की सबसे बड़ी ताकत है तो इसके लिए क्रोध और दुर्भाव रखे बगैर अधिक से अधिक कष्ट सहन की क्षमता भी आवश्यक है। 'गुरुकुल' में गुप्त जी ने गुरु हरगोविन्द जी के मुख से यही तत्त्व ज्ञान मुखरित किया है –

यह निशस्त्र युद्ध है, अपना क्रोध जयी निष्क्रय प्रतिरोध

शारीरिक संघर्ष सहज है कर लूँ प्रथम मनोबल बोध।[115]

विश्व इतिहास में सत्याग्रह का प्रयोग एक अनोखा एवं चमत्कारी प्रयोग था ।

सत्याग्रही व्यक्तिगत मानापमान को त्याग राष्ट्रीय अस्मिता के लिए नितान्त नैतिक मूल्यों को शिरोधार्य कर मर मिटने वाले थे। उनकी इस वीर भावना से देश-विदेश सभी प्रभावित हुए थे। कवियों ने बलिदानी सत्याग्रहियों के उत्साह और बंदी सत्याग्रहियों की सहिष्णुता के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। सबसे बड़े सत्याग्रही महात्मा गाँधी ने कवियों का ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट किया है।

साम्प्रदायिक एकता : गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रमों में यह प्रथम एवं महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम था। साम्प्रदायिक प्रश्नों को लेकर खड़ी गुत्थियों में सर्वाधिक उलझी गुत्थी हिन्दू-मुस्लिम एकता की थी। गाँधी जी अन्त तक इस समस्या को हल करने में लगे रहे। वे साम्प्रदायिता के घोर विरोधी थे। उनके अनुयायियों पर उनका गहन प्रभाव पड़ा। वे नहीं चाहते थे कि साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़े तथा कतिपय निहित स्वार्थी, उन्हें अपनी कुप्रवृत्ति का शिकार बनायें। गणेश शंकर विद्यार्थी इसी गुत्थी को सुलझाते हुए शहीद हो गए। नौआखाली के साम्प्रदायिक संघर्ष में महात्मा गाँधी ने अकेले पैदल घूम-घूमकर लोगों को प्रेम ओर सद्भावना का पाठ पढ़ाया –

परम पिता के पुत्र सभी, कोई नहीं घृणा के योग्य
भ्रान्त भाव पूर्वक रहकर सब, पाओ शौर्य शान्ति आरोग्य।[117]

सियारामशरण गुप्त के लिए धर्म का अभिप्राय था – मानव मात्र से प्रेम। उनकी दृष्टि में ईसु के समान बलिदानी लोग धार्मिक होते हैं, क्रूर-हत्यारे नहीं। इस धर्म भाव का प्रतिनिधित्व गणेशशंकर विद्यार्थी ने 'आत्मोत्सर्ग' में किया। उन्होंने 'नौआखाली में' शीर्षक कविता से साम्प्रदायिक कट्टरता का खण्डन किया है। डॉ. ललित शुक्ल के शब्दों में – हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की भावना कवि को गाँधीवाद के लोक में पहुँचाती है। विद्यार्थी जी के बलिदान से मर्मान्त व्यथा अपने हृदय में सँजोए कविवर सियारामशरण जी ने दोनों जातियों की एकता पर विशेष बल दिया है–

हिन्दू-मुसलमान दोनों ही एक डाल के हैं दो फूल,

और एक ही है दोनों का बड़ा बनाने वाला मूल।''[118]

वे पुनः कहते हैं –

अब मत भोगो अपने हाथों, अरे बहुत तुमने भोगा,

हिन्दू-मुसलमान दोनों का यह संयुक्त राष्ट्र होगा।[119]

श्रीधर पाठक भी गोखले के चरित्र का वर्णन करते हुए, उन्हें जाति, धर्म, मत से ऊपर उठाकर, परस्पर प्रेम को ही जग सेवा मानते हैं – जाति-पाँति मत जनित भेद-भ्रमजिय सों टारयौ, जग-सेवा-वृत-नैम प्रेम सन-पंथ प्रचारयौं।[120]

27 अक्टूबर, 1936 की शाम को गाँधी जी ने भारत माता-मन्दिर का उद्‌घाटन किया। उस अवसर पर गुप्त जी ने कहा था –

राम-रहीम-बुद्ध-ईसा का सुलभ एक सा ध्यान यहाँ,

x x x x

सबका शिव कल्याण यहाँ।[121]

हरिऔध जी का आह्वान है कि भारत से मत व पंथ के झगड़े खत्म हो जाये, जाति-पाँति के विचार निर्मूल हों। भारत की उन्नति तभी सम्भव है –

मतों और पंथों की अलल बोब्रो उड़ा देंगे।

x x x

भलाई को न भूलेंगे तुझे भारत सुधारेंगे।''[122]

उक्त पंक्तियों में हरिऔध जी ने गाँधी जी की भावना का साक्षात्कार किया है, जातिगत एवं सम्प्रदायगत दम्भों में भटकती जाति को साम्प्रदायिक सौहार्द की शिक्षा दी जाये और कहा जाये कि प्रत्येक मानव का धर्म एक है। सबकी मंजिल एक है। राह पृथक हो जाने पर यदि एक जगह आकर मिलना ही है तो राह के लिए झगड़ा व वैमनस्य क्यों किया जाये ।

हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई सबकों मिलजुकर रहना चाहिए –

हिन्दू मुसलमान क्रिस्तान, परम पिता की सब संतान,

लिखी नहीं माथे पर जाति, गुण कर्मों से उसकी जाति।[123]

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी भारत में रहने वाले हर व्यक्ति को भाईचारे का संदेश देते हुए लिखा है –

हिन्दू मुसलमान ईसाई, यश गावें सब भाई-भाई

सबके सब तेरे शैदाई, फूलो-फलो स्वदेश।।[124]

स्वतंत्रता संघर्ष में अंग्रेजों ने भारतीयों की साम्प्रदायिक संकीर्णता और धार्मिक असहिष्णुता का पर्याप्त लाभ उठाया। गाँधी जी ने साम्प्रदायिक सद्‌भाव का आदर्श रखा। गुप्त जी ने 'काबा और कर्बला' काव्य की रचना गाँधी जी से प्रेरित होकर की। कवि ने 'नमाज' कविता मेंपूजा-पाठ करते समय 'हजरत मुहम्मद' के मुँह से कहलवाया कि वह 'ईश' एक ही है –

खड़े हुए हजरत नमाज को दक्षिण भिमुख एक बार,

x x x x

पूरब-पश्चिम-उत्तर-दक्खिन सभी ओर वह ईश एक।[125]

अस्पृश्यता निवारण : समाज व्यवस्था संचालनार्थ भारतीय मनिषियों ने 'वर्ण' व्यवस्था दी। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रचार वर्ण निश्चित हुए। बौद्धिक कर्म से ब्राह्मण, शौर्य कर्म से क्षत्रिय, औद्योगिक कर्म से वैश्य तथा सेवा-सुश्रषा आदि की दृष्टि से शुद्रकहलाये। वे वर्ण मूलतः गुण कर्मानुसार थे, किन्तु धीरे-धीरे उत्तराधिकार के रूप में कर्म भी साथ चलता गया। कालान्तर में परकीय दासताजन्य विकास के कारण वर्ण को हीन मान लिया गया। उस वर्ण के साथ शोषण एवं उत्पीड़न की पराकाष्ठा हो गई। पुनर्जागरण में जहाँ अनेक सामाजिक कुरीतियों पर भी सुधारकों का ध्यान गया सभी ने इसका पुरजोर विरोध किया । गाँधी जी ने

शूद्र को हरिजन नाम से विभूषित किया। वे उनकी बस्ती में जाकर रहे। उनके समान जीवन व्यतीत किया। मैला भी उठाया। उनके अनुयायियों ने भी वैसा ही किया ।

कवियों ने पीड़ित दलित मानवों की मूक वेदना को वाणी प्रदान करने का प्रयत्न किया। गाँधी जी की भावना की सारे वर्ण कर्म प्रधान होने के कारण समान रूप से पूज्य व समानाधिकारी है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'हिन्दू' में इसी भाव को स्वर दिया है –

अपना चातुर्वर्ण्य प्रधान, है गुण कर्म स्वभाव प्रधान।

x x x

यों चारों ही मान्य समान, हो समाज में सबका मान।[126]

नाथूराम शर्मा 'शंकर' का मानना है कि जो लोग जाति-पाँति के बंधन को मानते हैं, वे लोग गँवार हैं –

जाति-पाँति के विकट जाल में जूझे फँसे गँवार।

मैं सबको सुलझा दूँगा करके एकाकार।[127]

सियारामशरण गुप्त ऊँच-नीच जाति की समाप्त करना चाहते थे। उन्होंने 'नकुल' में प्रताड़ितों, उपेक्षितों, दलितों एवं कुल-गोत्रहीनों की उदारता का संदेश दिया है। उनका मानना है यदि इन क्षुद्रों का सम्मान नहीं किया जाएगा तो क्रान्ति का विस्फोट अवश्यंभावी है–

लेना होगा निखिल क्षेम व्रत निर्भय होकर

देना होगा बड़ा भाग लघु से लघुतम को।[128]

श्रीधर पाठक भी जाति-पाँति का भेद हृदय से मिटाने को कहते हैं –

जाति-पाँति मत जनित

भेद-भ्रम जिय से टारयौ।[129]

गाँधी जी जानते थे कि जाति से विलग हुआ यह दलित वर्ग जब तक जाति का अभिन्न अंग नहीं बन जाता तब तक समाज की दशा नहीं सुधर सकती और जब तक समाज

की जीवन-शक्ति सुदृढ़ नहीं होती, देश में राजनीतिक स्वतंत्रता की कल्पना करना व्यर्थ है। इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर 'हरिऔध' ने लिखा है –

बाल-बाल बिके हैं बेहाल रहते हैं सदा,

इनके बवाल आज भी नहीं नकुते है

x x x

छाती से लगा लो कौन छूत इनमें लगी

छूते क्यों नहीं हो ये अछूते तो अछूते हैं।[130]

गाँधी जी हरिजनोद्धार के लिए भीख माँगना भी अपना कर्त्तव्य समझते थे। 'अधन' का नायक 'मध' जो गाँधी जी का ही प्रतिरूप है समाज के लोगों से आह्वान करता है –

कहकर नीच किसी को तुम क्या, आप ऊँच हो सकते हो ?

x x x

अरे वृद्ध हो क्यों अपने में, द्वार दया के खोलो।[131]

'साकेत' की सीता भील-कोल-किरातों के घर जाकर उनके साथ मिलकर काम करती हैं। उनके अन्दर ऊँच-नीच, छुआ-छूत आदि की भावना कोसों दूर थी –

''ओ भोली कोल-किरात-भिल्ल बालाओं

मैं आप तुम्हारे यहाँ आ गई आओ।''[132]

'पंचवटी' के राम अपने राज्य, चाहे वह अयोध्या हो या पंचवटी का वन, सबका ध्यान रखते हैं। राम की गुह-निषाद, प्रेम-भावना गाँधीवादी भावना से ओत-प्रोत है –

गुह निषाद शवरों तक का मन, रखते हैं प्रभु कानन में

इन्हें समाज नीच कहता है, पर हैं ये भी तो प्राणी।[133]

महावीर प्रसाद द्विवेदी का विचार है जो अपने लोग को उच्च मानते हैं ऐसे लोगों के घर कभी न जाएँ और न ही वहाँ अपनी पुत्री का विवाह करें –

जो अपने को उच्च मानते हैं, उनके न द्वार जावो,

ठहरौनी करके कौड़ी भी न उनको दिखलावो।

जो अपने को सम समझते हैं, जिनको नहीं उच्चता गर्व,

सालंकृत कन्या उनको ही दे, सम्बंध कीजिए सर्व।[134]

सत्यनारायण 'कविरत्न' गोरे-काले का भेद करने वाले लोगों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं –

गौरी को गोरे लागत जग अति ही प्यारे

मो कारी कौं कारे तुम नयननु के तारे।।[135]

मद्य निषेध : गाँधी जी सदाचार और नैतिकता को सर्वाधिक महत्त्व देते थे। मदिरा, तम्बाकू, अफीम आदि सेवन दुराचरण है। व्यक्ति की दृष्टि से तो इन मादक द्रव्यों के सेवन से उसे उस विशेष व्यक्ति की स्वास्थ्य की हानि होती है, परन्तु सामाजिक दृष्टि से वातावरण का दूषण तथा धन एवं श्रम का ह्रास भी होता है। इसलिए गाँधी जी इन द्रव्यों के प्रचलन के घोर विरोधी थे। क्योंकि इनसे समाज में अनैतिकता, आचरणहीनता, अनुशासनहीनता आदि अनेक बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं। गाँधी जी शराबखोरी को चोरी से भी बड़ा गुनाह समझते थे। गाँधी जी की इसी भावना से प्रभावित मैथिलीशरण गुप्त ने 'अधन' में मद्य निषेध की ओर संकेत किया है। 'अधन' का नायक 'मधु' शराबी की सेवा करता था तथा उसे समझा-बुझाकर दुर्व्यसन को छुटाना चाहता है। मद्य पीने से व्यक्ति कर्त्तव्य विमुख होता है –

'मद्य ने उसे ऐसा सजा,

व्यवसाय यह उसे तजा।[136]

मद्य पीने के बाद मानव, मानवता को भूल लड़ाई-झगड़ा करता है। अपनी मान-मर्यादा तक को भूल जाता है –

मनुज दनुज से गिरते हैं

निज गौरव से गिरते हैं।[137]

द्विवेदी जी तो माँसाहार को भी नशा ही मानते हैं तथा इसके खाने वाले की निंदा करते हैं। वे कहते हैं खाना है तो दूध-दही, घी खाओ –

रे आत्म-शत्रु ! यह निन्दित माँसु त्याग
हिंसादि पाप सन पामर ! भागु भागु !
घी, दूध, अन्न आदि है तन पुष्टिकारी
तो माँस खाये कत लूटतु पाप भारी।[138]

खादी : जवाहरलाल नेहरू का कहना था – खादी आजादी का बाना है, आजाद लोगों की पोशाक है । गाँधी जी कहते थे – खादी हमारी कामधेनु है। खादी में स्वराज है। खादी देश की करोड़ों दरिद्र नारायणों की सेवा, पूजा तथा उपासना का सबसे बढ़िया साधन है। खादी में हमारा धन, हमारा मान, हमारी मनुष्यता, हमारी इज्जत, आबरू, सब कुछ सुरक्षित है। काशीनाथ द्विवेदी ने लिखा है – खादी एक सजीव काव्य है। खादी में सत-चित-आनन्द का परम रम्य रूप समाया हुआ है। खादी शांत-शिव-अद्वैत का प्रतीक है। खादी मानवता का पोषण और दानवता का दलन करने वाला है।[139] गाँधी जी के अर्थशास्त्र में चरखा और खादी अर्थ स्वावलम्बन का स्तम्भ और ग्रामोद्योग का सूर्य है। उसका एक-एक सूत्र शोषित, पीड़ित ग्रामीण जनता के श्वास से बंधा हुआ है।[140] गाँधी जी की विचारधारा से प्रभावित होकर कवियों ने भी खादी एवं चरखे का गुणगान किया। कवियों ने स्वयं खादी को अपनाया। विदेशी वस्त्रों को त्याग खादी को अपनाने पर जोर दिया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'स्वदेशी वस्त्र स्वीकार' कविता में लिखा है –

विदेशी वस्त्र क्यों हम ले रहे है ? वृथा धन देश का क्यों दे रहे हैं ?

x x x x

रूई होती यहाँ कुछ कम नहीं है, न इतनी और देशों में कहीं है।[141]

साकेत के कवि गुप्त जी ने भी चरखे व खादी की महत्ता को स्वीकार कर सीता के मुख से

कहलवाया है –

तुम अर्ध नग्न क्यों रहो अशेष समय में,

आओ हम काते-बुने गान की लय में।[142]

खादी का प्रचार देश में आर्थिक स्वतंत्रता और समानता के प्रचार का साधन है। खादी के प्रयोग से स्वदेशी भावना जागृत होती है। धन का अधिकांश भाग मिल मालिकों के पास न जाकर किसान और जुलाहों के पास जाता है। कवियों ने इस राष्ट्रीय कार्य को सफल बनाने का भरसक प्रयत्न किया। अनेक देश प्रेमी कवियों ने स्वयं जीवन-पर्यन्त खादी पहनने का व्रत ले लिया और देशवासियों को खादी के राष्ट्रीय महत्त्व से अवगत कराने के लिए अनेक प्रेरणार्थक रचनाएँ लिखी। द्विवेदी युग के अनेक कवियों की पोषाक खादी ही थी। सियारामशरण गुप्त गाँधीवादी एवं खादी प्रिय थे। उनके काव्य का पात्र दुख की घड़ी में भी चरखा चला चादर बनाना नहीं भूला –

देखा आगे चरखा रखकर चम्पा कात रही है सूत,

x x x x

चारदर मैं तैयार हुई हूँ, धूम-धाम कितने ही घर।[143]

गाँधी जी की खादी प्रचार के पीछे भावना थी कि खादी प्रचार की सफलता से कारखानों का साम्राज्य तो जरूर लौटेगा। अंग्रेज यहाँ इसलिए जमें हैं कि उनका बाजार भारत बना है। जब भारत उनसका माल नहीं लेगा, तब अंगेजों की रीढ़ की हड्डी ही टूट जाएगी। मैथिलीशरण गुप्त यही सत्य व्यक्त करते हुए कहते हैं –

जो स्वतंत्र जीवन निर्वाह रहे किसी को आह न डाह,

कत जावे घर में ही सूत, लगे न लौकासूर की छूत।[144]

स्त्रियों की उन्नति : "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।"[145] इस सत्य को स्वीकार करने वाला यह भारत प्राचीन काल से ही नारी के प्रति श्रद्धालु रहा है। वेदों में नारी को मंत्र

द्रष्टा 'ऋषिका' के रूप में देखा गया। यज्ञों में उसे बहन का स्थान दिया गया। नारी पुरुष से किसी क्षेत्र में कम नहीं थी। अनेक स्थानों पर तो नारी का स्थान नर से बढ़कर माना गया है। मध्यकालीन भारत में विदेशी आक्रमणों के साथ भारत में कई बुराइयों ने पैर जमाए। उन्हीं विकारों में से नारी को भोग्या और संपत्ति के रूप में मानना भी एक विकार था। नारी को पर्दे के अन्दर पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ दिया गया। उसको चाहरदीवारी के अन्दर रहने पर मजबूर किया गया। पढ़ने-पढ़ाने के अधिकारों से वह वंचित कर दी गई। वह घर के अन्दर नर की दासी व भोग्या बनकर रह गई थी।

उन्नीसवीं सदी में नारी की दयनीय स्थिति की ओर सबका ध्यान गया। पुनर्जागरण काल में समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने के साथ-साथ नारी को पराधीनता से मुक्त कराने का पुरजोर प्रयास हुआ। ब्रह्म समाज एवं आर्यसमाज जैसी संस्थाओं के समाज सुधारकों ने नारी की दीन-हीन दशा पर करुणा प्रकट की। स्त्रियों को पढ़ने-लिखने का अधिकार प्रदान किया। नारियों के उत्थान के लिए संस्थान, कन्या विद्यालय आदि खोले गए। महात्मा गाँधी ने भी इस दिशा में प्रयास किया, उन्होंने पुरुषों के साथ-साथ नारियों को भी स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रिम पंक्ति पर खड़ा कर दिया। नारियों को माता तथा बहन के अतिरिक्त अर्द्धांगिनी सहधर्मिणी और मित्र के रूप में प्रतिष्ठित किया।

गाँधीवादी आदर्शों से प्रभावित राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने नारी को नर से कहीं उच्च और महिमा सम्पन्न माना है –

एक नहीं दो-दो मात्रायें
नर से भारी नारी।[146]

'मध्यकाल' में मात्र भोग्या रह जाने वाली नारी के प्रति क्षोभ प्रकट करते हुए मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं –

हाय । वधू में क्या वर विषयक एक वासना पाई,

नहीं और क्यों उसका पिता, नारी की नग्नमूर्ति ही आई।[147]

नारियों की शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। जो लोग नारी शिक्षा का विरोध करते हैं, सत्यनारायण 'कविरत्न' ऐसे लोगों को अनाड़ी व पापी मानते हैं –

नारी शिक्षा, निरारत जे लोग अनारी,

ते स्वदेश अवनति पचण्डपातक अधिकारी।[148]

महावरी प्रसाद द्विवेदी नारियों के सम्मान करने उन्हें उनके अधिकार देने के पक्षपाती थे, वे समाज में कन्याओं के प्रति हो रहे अन्याय से परिचित थे। वे कन्या के मनोभावों को प्रकट करते हुए कहते हैं –

पैदा जहाँ हुई हम घर में, सन्नाटा छा जाता है,

x x x

किसी किसी के ऊपर मानों वज्रपात हो जाता है।[149]

द्विवेदी जी नारी की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि यदि जगत् में नारियाँ न हो तो नरों का नाश हो जाये।

यदि न जगत् में होवे हम तो नाश नरों का हो जावे,

x x x

मनुज-रत्न जो हुए सभी को हमने गोद खिलाया है।[150]

सियारामशरण गुप्त जी की नारी युद्ध भूमि की सभी समाचारों को अपने पास रखती है और सेना नायिका बनकर सेना का मार्ग-दर्शन भी करती है –

एक महायान कही मृदुला बहन ने,

x x x

अधिक प्रदीप्त हुआ निर्वासन बेला में।[151]

बापू ने स्वयं अपने आचरण द्वारा तथा उपदेश द्वारा भारतीयों को विषय-वासना की भावना से असंपृक्त रखते हुए सामाजिक कार्य करने को अभीष्ट माना है। वैवाहिक जीवन उत्तम है किन्तु पत्नी को मात्र भोग्या या वासना पूर्ति का यंत्र नहीं मानना चाहिए। गुप्त जी कहते हैं –

स्त्रियाँ हैं देवियाँ मेरी, न भोग्या है न वे चेरी,

x x x

करूगा ब्याह मैं इससे, बनू सच्चा गृही जिससे।[152]

द्विवेदी युग भारतीय समाज और उन शक्ति के जागरण का युग था। इस युग को गाँधीवाद का बाल्यकाल कहा जा सकता है।

संदर्भ :

1. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 435
2. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ : डॉ. शिव कुमार शर्मा, पृ. 156
3. सागर वि. वि. पत्रिका : आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, पृ. 7
4. छायावाद युग : डॉ. शंभुनाथ सिंह, पृ 1
5. हिन्दी कविता में युगान्तर : डॉ. सुधीन्द्र, पृ. 44
6. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ : डॉ. शिव कुमार शर्मा, पृ. 475
7. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 454
8. वही, पृ. 454
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 464
10. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष : शिवदान सिंह चौहान, पृ 46
11. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 56
12. गुप्त जी की कला : डॉ. सत्येन्द्र, पृ. 5
13. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 455
14. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 50
15. साकेत एक अध्ययन : डॉ. नगेन्द्र, पृ 98
16. हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्यकार : सिंहासन राय, पृ. 114
17. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 566
18. सियारामशरण गुप्त रचनावली (खण्ड - 1) : सं. ललित शुक्ल, पृ. 2
19. सियारामशरण गुप्त : प्रेम शंकर, पृ. 10
20. सियारामशरण गुप्त रचनावली (खण्ड - 1) : सं. ललित शुक्ल, पृ. 4
21. सियारामशरण गुप्त : प्रेम शंकर, पृ. 10
22. सियारामशरण गुप्त रचनावली (खण्ड - 1) : सं. ललित शुक्ल, पृ. 2
23. सियारामशरण गुप्त : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 36
24. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृतियाँ : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 10
25. सियारामशरण गुप्त : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 8
26. सियारामशरण गुप्त : प्रेम शंकर, पृ. 12
27. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 538
28. सियारामशरण गुप्त : सृजन और मूल्यांकन : डॉ. ललित शुक्ल, पृ. 356
29. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 241
30. सियारामशरण गुप्त : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 98
31. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 516
32. हिन्दी साहित्य का इतिहास : विजयेन्द्र स्नातक, पृ 236

33. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 501
34. हिन्दी साहित्य का इतिहास : विजयेन्द्र स्नातक, पृ 237
35. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 578
36. हिन्दी साहित्य का इतिहास : विजयेन्द्र स्नातक, पृ 238
37. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 614
38. भ्रमरदूत संवेदना और शिल्प : डॉ. राजमोहनी सागर, पृ. 2
39. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचर्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 584
40. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 506
41. कविवर सत्यानारायण जी की जीवनी : बनारसी दास चतुर्वेदी, पृ. 10
42. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 584
43. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 614
44. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 487
45. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 438
46. हिन्दी साहित्य का इतिहास : विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 228
47. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 497
48. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 561
49. हिन्दी साहित्य का इतिहास : विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 228
50. महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली (खण्ड - 13) : सं. भारत यायावर, पृ. 15
51. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 439
52. हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्यकार : श्री सिंहासन राय 'सिद्धेश', पृ. 90
53. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 450
54. आधुनिक हिन्दी कविता में गाँधीवाद : डॉ. मिताली भट्टाचार्जी, पृ. 150
55. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 297
56. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 576
57. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 495
58. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 297
59. हिन्दी साहित्य का इतिहास : विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 225
60. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 495
61. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 298
62. गाँधी अभिनंदन ग्रंथ : सं. सोहनलाल द्विवेदी, 1944 ई.
63. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 22
64. प्रियप्रवास : हरिऔध, पृ. 30
65. वही, पृ. 56
66. हरिऔध : मुकुन्ददेव वर्मा, पृ. 55

67. साकेत : एक अध्ययन : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 245
68. सियारामशरण गुप्त : प्रेमशंकर, पृ. 44
69. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 627
70. सियारामशरण गुप्त : प्रेमशंकर, पृ. 74
71. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 465
72. वही, पृ. 466
73. वही, पृ. 470
74. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 627
75. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, पृ 15
76. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 606
77. महावीर प्रसाद रचनावली (खण्ड - 13) : सं. भारत यायावर, पृ 13
78. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 229
79. श्रीधर पाठक : रघुवंश, पृ. 32
80. साकेत : मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 53
81. सियारामशरण गुप्त रचनावली (खण्ड - 2) : सं. ललित शुक्ल, पृ. 369
82. वही, पृ. 186
83. महावीर प्रसाद रचनावली (खण्ड - 13) : सं. भारत यायावर, पृ 125
84. भारत-भारती : मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 14
85. वैदेही-वनवास : अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' , पृ. 40
86. बापू : सियारामशरण गुप्त, पृ 18
87. वही, पृ. 20
88. सियारामशरण गुप्त रचनावली (खण्ड - 2) : सं. ललित शुक्ल, पृ. 318
89. पंचवटी : मैथिलीशरण गुप्त, पृ 65
90. वैदेही-वनवास : अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' , पृ. 42
91. वही, पृ. 116
92. द्वापर : मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 56
93. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 58
94. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ 36
95. द्वापर : मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 127
96. उन्मुक्त : सियारामशरण गुप्त, पृ. 157
97. वही, पृ. 84
98. साकेत : 'मैथिलीशरण गुप्त, पृ 232
99. गुरुकुल, ,, पृ. 58
100. द्वापर, ,, पृ 26

101. सियारामशरण गुप्त रचनावली : सं. ललित शुक्ल, पृ. 275
102. साकेत : 'मैथिलीशरण गुप्त, पृ 105
103.हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ 807
104.विचार के क्षण : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 41
105.सिद्धराज : मैथिलीशरण गुप्त , पृ 86
106.हिन्दी कविता में युगान्तर : डॉ. सुधीन्द्र, पृ 201
107.वैदेही-वनवास : अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' , पृ. 93
108.वही, 97
109.साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 14 अप्रैल, 1963
110.वही, 2 जून, 1963
111.सियारामशरण गुप्त रचनावली (खण्ड - 1) : सं. ललित शुक्ल, पृ. 395
112.हिन्दी कविता में युगान्तर : डॉ. सुधीन्द्र, पृ. 205
113.वैदेही-वनवास : अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' , पृ. 97
114.पंचवटी : मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 66
115.गुरुकुल : ,, पृ. 72
116. वही, ,, पृ. 43
117. सियारामशरण गुप्त : सृजन और मूल्यांकन : ललित शुक्ल, पृ. 47
118. आत्मोत्सर्ग : सियारामशरण गुप्त, पृ. 49
119. वही, पृ. 47
120. श्रीधर पाठक : रघुवंश, पृ. 52
121. मंगलघट : मैथिलीशरण गुप्त, पृ 63
122. चुभते-चौपदे : अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पृ 85
123. हिन्दू : मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 192
124. महावीर प्रसाद रचनावली (खण्ड - 13) : सं. भारत यायावर, पृ 259
125. काबा-कर्बला : मैथिलीशरण गुप्त, पृ 34
126. हिन्दू : ,, पृ. 171
127.शंकर सर्वस्व : नाथूराम शर्मा 'शंकर', पृ 6
128.सियारामशरण गुप्त रचनावली (खण्ड - 2) : सं. ललित शुक्ल, पृ. 25
129.श्रीधर पाठक : रघुवंश, पृ. 62
130.मर्मस्पर्श : अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पृ. 164
131.अघन : मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 66
132. साकेत : ,, पृ. 176
133.पंचवटी : वही, पृ. 16

134.महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली : सं. भारत यायावर, पृ. 243
135.भ्रमरदूत : संवेदना और शिल्प : डॉ. राजमोहिनी सागर, पृ 83
136.अघन : मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 71
137.अघन : मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 31
138.महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली (खण्ड - 13) : सं. भारत यायावर, पृ 135
139.जीवन साहित्य, अगस्त 1941, पृ. 157
140.गाँधी ग्रंथ : सं. सुधीन्द्र, पृ. 100
141.महावीर प्रसाद रचनावली (खण्ड - 13) : सं. भारत यायावर, पृ 171
142.साकेत : मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 175
143.सियारामशरण गुप्त रचनावली (खण्ड - 1) : सं. ललित शुक्ल, पृ. 145
144.हिन्दू : मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 228
145.मनुस्मृति - 3/51
146.द्वापर : मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 26
147.वही, पृ. 30
148.भ्रमरदूत : संवेदना और शिल्प : डॉ. राजमोहिनी सागर, पृ. 80
149.महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली (खण्ड - 13) : सं. भारत यायावर, पृ 230
150. वही, पृ. 250
151.सियारामशरण गुप्त रचनावली (खण्ड - 1) : सं. ललित शुक्ल, पृ. 489
152.अनघ : मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 95

चतुर्थ अध्याय

छायावादी युग में गाँधीवादी चेतना

चतुर्थ अध्याय

छायावादी युग में गाँधीवादी चेतना

छायावाद की अवधि सन् 1918 से 1938 तक मानी जाती है। देश की राजनीतिक परिस्थिति, इस काल में अत्यन्त विकट थी। प्रथम महायुद्ध ने भीषण वातावरण उत्पन्न किया था। देश की आर्थिक दशा अत्यंत शोचनीय थी। विशेषतः भारत जो कि अंग्रेजी शासन के शिकंजों में पड़ा कराह रहा था, हर घड़ी स्वतंत्रता प्राप्ति की बात सोच रहा था। कई समाज सुधारक, लोगों को आजादी का मूल्य समझाने में लगे थे। गाँधी जी ने भी भारत आकर, यहाँ की वास्तविकता को समझकर, जी-जान से आजादी की लड़ाई में कूद गए। गाँधी जी के अतिरिक्त भारत के अन्य समाज सुधारकर, जैसे राजाराम मोहन राय, स्वाधीनता के पुजारी गोपाल कृष्ण गोखले एवं बालगंगाधर तिलक, वैदिक मनीषी स्वामीदयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस और स्वामि विवेकानन्द ने भी परतंत्र भारत के निद्रामग्न लोगों के हृदय को झकझोरा। निराशा में आशा के स्वर सुनाई देने लगे थे। यही समय था जब, अन्तर्मुखी हिन्दी कवि आत्मतृप्ति के लिए संघर्ष से दूर रहकर, छाया चित्र अंकित कर रहे थे। अतः इस काल के साहित्य में राष्ट्रीय भावना का स्वर सबसे ऊँचा रहा। भारतीय चिंतकों एवं मनीषियों की आवाज को, विचारों को, जनता तक पहुँचाने का श्रेय इन्हीं साहित्यकारों को जाता है।

छायावादी युग में राजनीतिक उथल-पुथल आर्थिक विषमता, पुरातन रूढ़ियों के संघर्ष, नवीन शिक्षा प्रणाली आदि विशेष रूप से दृष्टत्य थी। इसी प्रकार चिन्तन के क्षेत्र में मानवतावाद, बुद्धिवाद, सन्देहवाद, अस्तित्ववाद, गाँधीवाद और अरविन्द दर्शन के उदय एवं समाजवाद और मार्क्सवाद के प्रचार का युग था। पुनर्जागरण के वातावरण में इस युग के कवियों ने पलायनवादिता व नैराश्य को छोड़ व्यक्ति, जाति और मानवमात्र के जीवन का भावात्मक पक्ष भी लिया। अतः रचनाओं में मानवतावाद का पुट मिलता है, जो गाँधीवाद से सर्वथा प्रभावित रहा। कहीं-कहीं तो भूलवश इस युग को ही गाँधीवाद का शुभारम्भ मानते हैं ।

वस्तुतः गाँधीवादी युग का श्रीगणेश द्विवेदी-युग में ही हो गया था। यही कारण रहा कि छायावादी युग के हिन्दी कवियों पर गाँधी जी का दुगुना प्रभाव पड़ा। सत्याग्रह, असहयोग, धर्मयुद्ध आदि काव्य के अभिन्न अंग बने।

डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है – "छायावाद-युग ने भारतीय जीवन के विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह युग भारत के लिए आधुनिकीकरण का युग है, किन्तु यह प्रक्रिया उसकी आन्तरिक शक्ति से उद्भुत न होकर विदेशी शासन के परिणामस्वरूप आयी। विदेशी शासन ने आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को अत्यन्त जटिल बना दिया। वैसे उसका एक और आयाम भी है जो देश के पुनर्जागरण से सम्बद्ध है और उसका अतीत साहित्य धार्मिक एवं दार्शनिक आदि परम्पराओं को रूपायित करता है। इस युग के कवियों ने द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध सूक्ष्म भावनाओं की प्रतिष्ठा की तत्कालीन रूढ़ियों और ईसाई धर्म प्रचारकों के आक्षेपों के विरुद्ध अतीत भारत की प्राणवान मूल्यों की प्रतिष्ठा की। आर्थिक, राजनीतिक दासता के विरुद्ध स्वाधीनता केवल राष्ट्रीय ही नहीं मानव मात्र की स्वाधीनता के मूल्य की प्रतिष्ठा की।"[1]

नेहरू जी के शब्दों में –"गाँधी जी को भारत की कोटि-कोटि जनता ने अपना राजा घोषित कर दिया था। राष्ट्रीय आन्दोलन के दीर्घकाल में गाँधी जी ने सदा नीति और वैधानिकता से लक्ष्य प्राप्ति का प्रयास किया। साथ ही उन्होंने जातीय भेद-भाव समाप्त करने की चेष्टा की। अब दोनों जातियों के नेता बस इसी एकता की रट लगाए हुए थे। यह मातृभाव का एक अद्भुत दृश्य था।"[2] राजनीतिक दृष्टि से यह युग गाँधी युग था।

4. क गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख कवि :

माखनलाल चतुर्वेदी : माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म 4 अप्रैल, सन् 1988 को मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के 'बाबई' नाम ग्राम में हुआ था।[3] पिता नन्दलाल चतुर्वेदी एक शिक्षक और वैष्णव भक्त थे । इनके माता का नाम श्रीमती सुन्दरबाई था । इनकी आरम्भिक शिक्षा

ग्रामीण पाठशाला में हुई। इन्हें पढ़ाने के लिए बाबई के तिमरनी ग्राम जहाँ इनकी बुआ रहती थी, वहाँ भेजा गया। ये बचपन से अति चंचल स्वभाव के थे तथा शैतानियों में भी लगे रहते। इनकी करतूतों से घर के लोग परेशान रहे ही साथ ही स्कूल के अध्यापक भी। बचपन से ही तुकबंदियाँ करते थे, लेकिन ये अध्यापकों, स्वजनों एवं परिचितों का मजाक उड़ाने के लिए होती। अपने फूफा के बड़े भाई जिनका नाम धनीराम था, जो इन्हें पसन्द न थे, उन पर तुकबंदी कविता बना पेड़ पर चिपका दी थी –

धनीराम ने पोली पाई, उससे निकली द्रौपदीबाई

x x x

धनुवा बामन ने बिछाई खाट, उससे निकले काशी भाट।

इन पंक्तियों को पढ़कर धनीराम बहुत नाराज हुए, उनके पीछे लाठी लेकर दौड़े।[4] गाँव की पाठशाला से ही मिडिल पास कर संवत् 1990 में नार्मल पास किया। इसके बाद आप अध्यापन कार्य करने लगे। साथ ही संस्कृत, मराठी, गुजराती, बंगला आदि भाषाओं का अध्ययन किया। इनके पिता कविता-प्रेमी थे सूर और तुलसी की कविताओं का पाठ सदैव करते। पिता के कविता-प्रेम और भक्ति-रसपूर्ण हृदय का प्रभाव इन पर भी पड़ा। ये अति भावुक थे। इसी बीच गाँधी जी का स्वराज्य आन्दोलन चल पड़ा। आपकी भावुकता ने राष्ट्रीयता और देश भक्ति का बाना धारण कर लिया। देश-सेवा के लिए आत्म-विसर्जन कर दिया। भारत के दुःख-दैन्य की कहानी आप प्रत्येक भारतीय के पास अपनी कविताओं द्वारा पहुँचाना चाहते थे। सम्भवतः इसलिए अपने अपना उपनाम 'एक भारतीय आत्मा' रखा। उत्कृष्ट राष्ट्र-प्रेमी होने के कारण, आपको अनेक यंत्रणाएँ सहनी पड़ी, ब्रिटिश राज में आपके घर की अनेक बार तलाशी हुई तथा अनेक बार जेल भी जाना पड़ा।

चतुर्वेदी जी की साहित्य-सेवा और राष्ट्र-सेवा कवि के रूप में सर्वोपरि है। साथ ही सम्पादक एवं पत्रकार के रूप में भी स्मरणीय हैं। सन् 1904 में जब ये मात्र सोलह साल के

थे, पहले पद की रचना की। सोलह वर्ष की आयु के किशोर हृदय से निकले ये पद्य बोल, जहाँ आने वाले समय में महान कवि साहित्यकार, विचारक और राष्ट्रीय नेता बनने वाले व्यक्ति की झलक देने वाला था, वहीं बालक के जीवनादर्श का झलक देने वाले थे। अपना सम्पूर्ण जीवन निर्धनता में बिताया। राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने तथा क्रान्तियुक्त साहित्य, सृजन की साधना करते वक्त अनेक बार प्राणों पर आ बनी कई विपत्तियों ने घेरा लेकिन कभी अपनी निर्धनता व विपत्तियों का रोना नहीं रोया।

प्रसिद्ध विद्वान 'माधव सप्रे' आपकी विद्वता से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने आपकी सहायता से 'कर्मवीर' नामक पत्र निकालना प्रारम्भ किया। आपने 'प्रभा' एवं 'प्रताप' पत्रों का भी सफता पूर्वक सम्पादन किया। सफल कवि और पत्रकार होने के साथ चतुर्वेदी जी निर्भक और सफल वक्ता भी हैं। उनकी आलोचनाएँ खरी और पक्षपात होता। आपका स्थान गद्यकार और निबंध लेखक के रूप में भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। आपने विचारात्मक निबंधों को भी भावुकता के रंग में अच्छी तरह रंग दिया है।

माखनलाल चतुर्वेदी मूलतः गाँधी-दर्शन के कवि हैं। राष्ट्रीय जीवन में नये मोड़ उत्पन्न करने का जो कार्य गाँधी जी ने किया वही कार्य चतुर्वेदी जी ने राष्ट्रीय काव्यधारा में नई चेतना और गीत गाकर किया। गाँधी जी से प्रभावित होकर ही उन्होंने सशस्त्र क्रान्ति का पथ त्यागकर गाँधी विचारधारा को अपनाया। इनके काव्य में देश-प्रेम और आत्म-बलिदान की भावना गाँधीवाद के अनुरूप है। उनके काव्य को संश्लिष्ट 'राष्ट्रीय चेतना का काव्य' की संज्ञा दी जा सकती है, जिसकी विशेषताएँ है – बलिदान भावना, देशप्रेम और वीरपूजा की भावना, गाँधीवादी राष्ट्रीयता तथा सामयिक राष्ट्रीय चेतना । डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार – ''हिन्दी कविता से गाँधीवादी विचारधारा का सबसे अधिक और प्रबल समर्थन माखनलाल जी ने किया है। जिस प्रकार उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द की रचनाएँ गाँधीवाद से परिपूर्ण है वैसे ही माखनलाल की कविताएँ भी।[5]

चतुर्वेदी जी की हिमकिरीटनी, हिमतरंगिनी, माता, युग चरण, वेणु तो गूँज आदि काव्य कृतियों पर गाँधी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का प्रभाव देखा जा सकता है। गाँधी द्वारा परवर्तित सिद्धान्तों से प्रभावित होकर लिखी गई कविताओं में 'निःशस्त्र सेनानी हृदय' 'पुष्प की अभिलाषा', 'बलिपंथी से जीवित जोश', 'युगध्वति', 'युग और तुम', युग-पुरुष' 'सत्याग्रही', 'राष्ट्रीय झण्डें की भेंट' आदि रचनाएँ महत्त्वपूर्ण है, जिसमें अहिंसा, असहयोग, निष्काम कर्म, हिन्दू-मुस्लिम एकता आदि का चित्रण हुआ है। इन कविताओं में कवि ने गाँधी जी के व्यक्तित्व के उज्ज्वल पक्षों का उद्घाटन तथा उनेक प्रति अपूर्व श्रद्धा व्यक्त की है।

सुभद्राकुमारी चौहान : सुभद्रा जी (सन् 1905-1948 ई.) का जन्म प्रयाग जिले के निहालपुर गाँव में हुआ था।[6] आपके पिता ठाकुर रामनाथ सिंह शिक्षा प्रेमी व्यक्ति थे। पूरे परिवार में राष्ट्र-प्रेम कूट-कूट कर भरा था। सुभद्राकुमारी ने आरंभिक शिक्षा प्रयाग में ही प्राप्त की। जिस समय ये 'क्रास्थवेट' गर्ल्स स्कूल में पढ़ रही थी, उसी समय इनका विवाह खण्डंवा निवासी ठाकुर लक्ष्मण सिंह चौहान के साथ हुआ। इनके पति एक शिक्षित व्यक्ति थे, उन्होंने बी. ए. एल. एल. बी किया था। परिणामस्वरूप विवाहोपरान्त भी आप काशी के थियोसोफिकल स्कूल में अध्ययन करती रहीं।

सन् 1921 ई. में असहयोग आन्दोलन के प्रभाव से इन्होंने शिक्षा अधूरी ही छोड़ दी और राजनीति में सक्रीय भाग लेने लगी। आपके पति लक्ष्मण सिंह ने भी वकालत छोड़ दी और जबलपुर जाकर 'कर्मवीर' के सम्पादन में माखनलाल चतुर्वेदी की सहायता करने लगे। सुभद्राकुमारी भी जबलपुर आकर तत्परता से असहयोग आन्दोलन में भाग लेने लगीं। अपने राजनीतिक कार्यों के कारण इन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। जेल जीवन की कठिनाइयों को भी आपने उत्साहपूर्वक अपनाया।

सुभद्राकुमारी के सरल व्यक्तिगत जीवन का प्रभाव इनकी रचनाओं पर भी पड़ा। खद्दर को ये बड़े शौक और गौरव के साथ पहनती थी । आभूषणों से अपने को सजाना ये

निरर्थक मानती। सजावट एवं बनावट से इन्हें घृणा थी। हृदय से साहसी एवं विचारों तथा कर्मों से अत्यन्त निर्भीक थी। ये भाषा भी अलंकारहीन पसन्द करती थीं। काव्य-रचना के प्रति लगाव अध्ययन काल से ही था। माखनलाल चतुर्वेदी के सम्पर्क में आने पर काव्य-रचना की प्रवृत्ति को और अधिक प्रोत्साहन मिला। इनकी सरल तथा भावपूर्ण कविताओं ने इन्हें हिन्दी के सरल कलाकारों की श्रेणी में खड़ा कर दिया।

सुभद्रकुमारी कवयित्री एवं लेखिका के रूप में हिन्दी जगत् में प्रसिद्ध हैं। 'मुकुल' और 'त्रिधारा' इनके कविता संग्रह हैं। इनकी कविताएँ मुख्यतः तीन प्रकार की हैं – राष्ट्र-प्रेम सम्बंधी, मातृ-प्रेम सम्बंधी और प्रणय सम्बंधी। "आपकी राष्ट्रीय कविताओं में समसामयिक देश-प्रेम और भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की गहरी छाप है। सुभद्रा जी ने अपनी राष्ट्रीय रचनाओं में जिस प्रतिभा के साथ, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक जीवन के तात्कालिक संदर्भों से जोड़ा था उससे उनकी प्रतिभा का विशेष परिचय मिलता है। सुभ्रद्रा जी की काव्य-शैली की विशेषत यह थी कि वह किसी भी जटिल से जटिल भाव को सम्पूर्ण सरलता के साथ रखती थी, भाव और अभिव्यक्ति दोनों को एक दूसरे में ऐसा पिरोकर रखती थी कि कहीं भी उनकी शैली में राष्ट्रीय भावना आरोप के समान नहीं लगता।"[7]

जयशंकर प्रसाद : "कविता, नाटक, उपन्यास और कहानी सभी क्षेत्रों में अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा से कार्य करने वाले इस महान रचनाकार ने अपने समय की सांस्कृतिक चेतना का नया संस्कार साहित्य में प्रस्तुत किया है। उनके साहित्य में वे अनुभुतियाँ मिलती है जिनका सम्बंध परम्परा और सर्वपीठिका से भी है। द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के विरोध में जो छायावाद उठा था उसका विकास कवि प्रसाद में स्पष्ट है। कवि का राष्ट्रीय प्रेम, अतीत के प्रति अनुराग और सांस्कृतिक राग में प्रस्फुटित हुआ है। किन्तु इस कथानक के अतिरिक्त प्रसाद जी ने उसे सांस्कृतिक परम्परा से प्ररेणा ग्रहण की जिस पर भारतीय साहित्य आधारित है।"[8]

काशी की पवित्र नगरी में श्री जयशंकर प्रसाद का जन्म माघ शुक्ल दशमी, संवत् 1940 को एक सुप्रसिद्ध वैश्य घराने में हुआ था। इनके पितामह स्वर्गीय 'शिवरत्न साहु' के नाम से विख्यात थे।"[9] वे तम्बाकू के नामी व्यापारी थे और एक विशेष प्रकार की सुरती बनाने के कारण सुंघनी साहु के नाम से प्रसिद्ध हुए। घर, धन-धान्य से परिपूर्ण था। कोई भी विद्वान काशी में आता तो साहु जी उसका हार्दिक स्वागत करते। खुले हाथों से दान करते, उनके यहाँ प्रायः कवियों, गायकों, कलाकारों की गोष्ठी होती रहती। वे इतने उदार थे कि मार्ग में बैठे भिखारी को अपने शरीर के वस्त्र तक उतारकर दे देते थे। प्रसाद के पिता, देवी प्रसाद साहु भी अपने पिता तुल्य विशाल एवं उदार ह्रदय वाले थे। देवी प्रसाद के दो पुत्र थे, शम्भुरतन तथा जयशंकर प्रसाद।

प्रसाद जी का बाल्यकाल बड़े लाड़-प्यार के साथ व्यतीत हुअ। जब यह तीन वर्ष के थे तब इनका क्षौर संस्कार हुआ। इनके माता-पिता तथा समस्त परिवार ने पुत्र के लिए इष्ट देव शंकर से प्रार्थना की थी। वैद्यनाथ धाम से लेकर महाकाल के ज्योतिलिंगों तक की आराधना के फलस्वरूप इनका जन्म हुआ था। अतः नामकरण संस्कार वैद्यनाथ धाम में ही कराया गया। प्रसाद जी की जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना पर प्रकाश डालते हुए उनके मित्र, डॉ. राजेन्द्र नारायण शर्मा लिखते हैं – "अन्नप्राशन संस्कार के बाद उसी पूजाविधि में पुस्तक बही, मसिपात्र, लेखनी तथा बच्चे मन को लुभाने वाली बहुत सी सप्तरंगी वस्तुओं तथा खेलने के योगय लाल, पीली पदार्थावलियों के बीच शिशु प्रसाद को अपने मन की चीज चुन लेने के लिए छोड़ दिया गया। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब सब कुछ छोड़ प्रसाद जी ने केवल लेखनी उठा ली और उसी से खेलना वरण किया ।[10] प्रसाद का परिवार दानियों का परिवार था। इस परिवार से कई कलाकारों को प्रोत्साहन मिला था, अतः प्रसाद पर इसका अदृश्य प्रभाव तो पड़ा ही था।

बाल्यकाल से ही प्रसाद जी की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया । पिता ने घर

पर संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, फारसी आदि भाषाओं को पढ़ाने की व्यवस्था कर दी थी। घर पर कई अध्यापक पढ़ाने आया करते थे। स्वर्गीय सोहिनीलाल जी 'रसमयसिद्ध' उनके प्रधान गुरु थे। काशी के 'क्वीन्स कॉलेज' से सावतीं तक की शिक्षा प्राप्त की। आठ-नौ वर्ष की अवस्था में ही 'अमर-कोश' तथा 'लघु-कौमुदी' कंठस्थ कर ली थीं। ''यह बालक की असाधारण वृद्धि का परिचायक है। नौ वर्ष की अवस्था में इन्होंने अपनी माताजी के साथ धारा-क्षेत्र ओंकारेश्वर पुष्कर उज्जैन, जयपुर ब्रज क्षेत्र अयोध्या आदि सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्थलों की यात्रा की। यात्रा काल में इनके सुकमार हृदय पर प्राकृतिक सौन्दर्य और गौरव की बड़ी गहरी छाप पड़ी। प्रकृति के मनोरम दृश्यों पर वे रीझ उठे होंगे। इसी समय उन्होंने 'कलाधर' उपनाम से अपनी सर्वप्रथम कविता रचकर अपने गुरु रसमयसिद्ध को दिखाई थी।

प्रसाद लगभग बाहर वर्ष के थे तभी सन् 1901 ई. में इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। घर का समस्त भार भाई शम्भूरतन पर आ पड़ा। प्रसाद जी का जीवन बड़ा नियमित था। प्रातःकाल उठकर नित्य व्यायाम करते फिर भोजन कर दुकान पर जाकर अपना व्यवसाय संभालते। घर की आर्थिक स्थिति पहले जैसी नहीं थी। मुकदमें आदि में आर्थिक नुकसान हुआ। जिससे पैतृक व्यवसाय चौपट हो गया। जब ये पन्द्रह वर्ष के थे तब माँ की गोद का बिछोह सहना पड़ा। माता-पिता के बिछोह के आँसू सूखे भी न थे कि सत्रह वर्ष की अवस्था में अपने बड़े भाई के स्नेह और पथ-प्रदर्शन से वंचित होना पड़ा। वे भी संसार से कूचकर गए। परिवार पालन का सारा उत्तरदायित्व उन्हीं के ऊपर आ पड़ा। भाई के उदार स्वभाव के कारण ऋण-भार हो गया था। इस विषम परिस्थिति में भी उन्होंने धैर्य से काम लिया। इन्होंने विवाह किया लेकिन प्रथम पत्नी का निधन हो गया । इन्होंने भाभी के अनुरोध से पुनः विवाह किया। व्यवहार और व्यापार कुशलता तथा कठिन अध्यवसाय के सहारे प्रसाद जी ने अपने परिवार की स्थिति सम्भाल ली। परिवार ऋण मुक्त होकर सुख-शान्ति के साथ रहने लगा।

इतना अस्त-व्यस्त रहते हुए भी प्रसाद जी साहित्य-प्रेम और साहित्य-सेवा से

विमुख नहीं हुए। इनके घर पर कवियों और विद्वानों का जमघट लगा ही रहता था। स्वाध्याय ही करते रहे। स्वाध्याय के बल पर ही ये इतने बड़े दार्शनिक और साहित्यकार हो गये। नागरी-प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में ये नियमित रूप से जाते। कविता लिखने का ऐसा शौक इन्हें लगा कि दुकान में बैठे-बैठे भी, ये हिसाब-किताब की कापी के पन्नों पर कविता की पंक्तियाँ लिखा करते। कवि जीवन के आरम्भ में जिन व्यक्तियों से उन्होंने विशेष प्रेरणा ली उनमें से एक उनके पड़ोसी मुंशी कालिन्दी प्रसाद और दूसरे रीवा निवासी श्री रामानन्द थे। प्रसाद जी की कविता का आरम्भ ब्रजभाषा से हुआ। उनकी प्रथम रचना 'भारतेन्दु' पत्र में जुलाई, 1906 ई. में प्रकाशित हुई।[11]

उस समय द्विवेदी जी के सम्पादकत्व में 'सरस्वती' का प्रकाशन बड़ी धूमधाम से हो रहा था। प्रसाद जी ने अपनी एक कविता 'सरस्वती' में प्रकाशित करने के लिए द्विवेदी जी के पास भेजी। चूँकि कविता द्विवेदी जी के काव्य आदर्श के अनुकूल नयी थी इसलिए उसे सरस्वती में स्थान नहीं मिला। प्रसाद जी हताश होने वाले व्यक्ति नहीं थे। इनकी प्रेरणा से 'इन्दु' और 'जागरण' दो-दो पत्र काशी से निकलने लगे। उन पत्रों के पृष्ठ इनकी कविताओं से अलंकृत होने लगे। हालाँकि उस समय प्रसाद जी का बड़ा विरोध हुआ। प्रसाद जी ने इस विरोध में भी अपना मानसिक सन्तुलन नहीं खोया और वे बराबर सृजनरत रहे। आचार्य वाजपेयी ने इस विरोधी स्थिति के विषय में लिखा है – "एक महाशय ने कह दिया कि प्रसाद जी तो बाबा आदम के जमाने के चरित्रों को अपने नाटकों में रखते हैं, गड़े मुर्दे उखाड़ते हैं, तो दूसरे महाशय नयी भाषा में कहने लगे प्रसाद जी तो 'एस्केपिस्ट' हैं, जीवन से भागते हैं। एक तीसरे महाशय रहस्यवाद के नाम से भी इतने घबरा उठे कि प्रसाद जी का सारा रहस्यवाद उन्हें रूढ़िवाद जँचने लगा। एक चौथे महाशय इधर-उधर की टोह लगाकर कहने लगे प्रसाद जी के साहित्य में मध्यकालीन विलास और खुमारी ही उन्हें मिलती है। बस समालोचनाओं का ताँता इसी तरह बँध गया और लोग मनमानी हाँकने लगे।[12]

प्रसाद जी ने सभी आरोपों का उत्तर अपने गतिमान साहित्य से दिया और अनेक प्रकार के आक्षेप उनसे टकराकर लौट गए। वे निरन्तर सृजन करते रहे और एक दिन साहित्य के महारथियों को उनहें स्वीकार करना पड़ा। उस समय उसके विरोधी को देखकर कई मित्रों ने उनसे कहा कि आप आज्ञा दे तो लिखूँ, तो उन्होंने हँसकर कहा "समय स्वयं सब प्रकट कर देगा।" और वास्तव में यही हुआ। पं. रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार सम्वत् 1970 में ये खड़ी बोली की ओर आये।[13]

स्फुट रचनाओं की दृष्टि से 'कानन-कुसुम' प्रसाद जी की खड़ी बोली कविताओं का प्रथम संग्रह है। 'प्रेम-पथिक' काव्य में कवि की प्रकृति-प्रेम सम्बंधी गम्भीरता धारण करती है। सन् 1918 ई. में प्रसाद की चौबीस कविताओं का संग्रह 'झरना' प्रकाशित हुआ। उसमें छायावादी कविता का प्रथम प्रयास है। 'आँसू' काव्य का प्रकाशन सन् 1925 ई. में हुआ। 'लहर' काव्य प्रसाद के रहस्यवाद तथा प्रौढ़तम प्रगीतों का संग्रह है। सन् 1935 ई. में छायावाद युग के महाकाव्य 'कामायनी' का प्रकाशन हुआ।[14] यह आधुनिक साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी गई है।

प्रसाद जी कवि होने के साथ-साथ कहानीकार, नाटककार तथा उपन्यासकार भी हैं। उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं में लिखकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। डॉ. प्रेमशंकर लिखते है – "प्रसाद जी का साहित्य एक सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित हैं। वे युग, देश, समाज और मानव की जिन समस्याओं को उठाते हैं उनका समाधान भी प्रस्तुत करना चाहते हैं"[15] भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रति अनुराग के मूल में प्रसाद जी की राष्ट्रीय भावना कार्य करती है । वे एक ऐसे युग में उत्पन्न हुए थे जब कि देश दासता के बंधनों से मुक्त होने का प्रयत्न कर रहा था। अन्य रचनाकारों की भाँति उन्होंने भी इसमें सहयोग दिया। उनकी भावना साधारण राष्ट्रीयतावादी कवि से किंचित भिन्न है। उनका दृष्टिकोण सांस्कृतिक अधिक है। वे किसी क्रान्तिकारी कवि की भाँति उद्‌बोधन-गीत नहीं गाने

लगते, किन्तु क्रमशः एक ऐसी परिस्थिति की योजना करते हैं, जिसमें राष्ट्र की संस्कृति और परम्परा का चित्र हो। अपने राजनीतिक जीवन में प्रसाद देश-भक्त थे। उन्होंने स्वयं राजनीति में सक्रिय भाग नहीं लिया, किन्तु अपने विचारों में वे देश-प्रेमी थे और गाँधी जी के व्यक्तित्व ने उन्हें अधिक प्रभावित किया। काशी में 'अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन' के अवसर पर गाँधी जी के दर्शन किए थे। वे अहिंसा के पुजारी थे। कारूणा पर उन्हें अत्यधिक विश्वास था। उनकी धारणा थी कि करूणा ही मानव का कल्याण कर सकती है इसलिए उनके साहित्य में दया और ममता का स्वर है। नारी उद्धार, अछूत समस्या, रूढ़िवादिता धर्म आदि पर भी उन्होंने अपना विचार व्यक्त किया।

प्रसाद का व्यक्तित्व बहुमुखी है। जीवन के अंतिम समय तक उन्हें पर्याप्त यश प्राप्त हो चुका था। साहित्य में उनका स्थान भी बन चुका था पर अत्यधिक परिश्रम के कारण उनका शरीर भी शिथिल हो गया था। उनके जीवनकाल में ही 'जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' ने रेखाचिह्न प्रस्तुत करते हुए लिखा था – ''किसी का इन्हें अभिमान नहीं था । विद्या, बुद्धि, बल, वैभव, रूप, यश, काल-कौशल सब कुछ पाकर भी मानों ये इन सबसे भागे-भागे फिरते हैं। इनका प्रत्येक व्यवहार इनके निःस्वार्थ एवं निःस्पृह प्रेम का द्योतक है। ये औरों से कभी कुछ नहीं लेना चाहते, अपनी ओर से ही बराबर देते रहना चाहते हैं। सच्चे प्रेम की यह ज्योति व्यापार की प्रत्येक दिशा में सदैव छिटकी रहती है। इनमें केवल परिवार-प्रेम अथवा मित्र-प्रेम ही नहीं ; अपने देश, समाज, साहित्य, संस्कृति और धर्म के प्रति भी अगाध अनुराग भरा हुआ है। अपनी प्राचीन सभ्यता के तो ये भक्त हैं। यही भक्ति इनके रहन-सहन और स्वभाव की सादगी के रूप में हमारे सामने आती है ; किन्तु यह सादगी, सुरूचि और स्वाभाविकता का कभी साथ नहीं छोड़ती।''[16]

हिन्दी का ऐसा यशस्वी रचनाकार 15 नवम्बर, सन. 1937 ई. को प्रातःकाल नश्वर देह को त्याग परलोक सिधार गया। अपने पीछे छोड़ गया, अपने व्यक्तित्व और कृतित्व

का सौरभ, जो युगों तक मानवता को आनन्द देता रहेगा।

डॉ. रामकुमार वर्मा : रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य के अत्यन्त सशक्त एवं समर्थ सर्जक हैं। उनकी विलक्षण प्रतिभा का विकर्णन कवि, नाटककार, एकांकीकार, निबंधकार, इतिहासकार, आलोचक, सम्पादक एवं चिन्तक के रूप में हुआ है। जहाँ वर्मा जी ने काव्य को एक नया आयाम प्रदान किया वहीं साहित्य इतिहास लेखन एवं पत्रिका सम्पादन जैसी चुनौतिपूर्ण कार्यो को भी वाखूबी निभाया। जिस युग में वर्मा जी ने साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया, उस युग में भारत में सुधारवादी सामाजिक संस्थाओं का बोलबाला था, क्योंकि उस समय आपसी भेद-भाव, अस्पृश्यता, स्वार्थ, पारस्परिक, ईर्ष्या-द्वेष, सामाजिक अत्याचार, धार्मिक संकीर्णताएँ, अशिक्षा आदि कुप्रवृत्तियाँ समाज को घेरे हुए थी। तत्कालीन युग को आन्दोलित करने वाली अनेक समस्याओं एवं विचारधाराओं को वर्मा जी ने अपने साहित्य में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्फुटित किया है।

डॉ. रामकुमार वर्मा का जन्म 15 नवम्बर सन् 1905 ई. को सागर जिले के 'गोपालगंज' मुहल्ले में हुआ।[17] जिस वंश एवं कुल में डॉ. वर्मा का जन्म हुआ वह पूर्णरूप से देश-भक्त, लोक-सेवी एवं मातृभूमि का अनन्य उपासक था। सन् 1857 ई. की क्रान्ति में नाना साहब पेशवा ने अत्यन्त शौर्य एवं अद्भुत वीरता के साथ 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के विरुद्ध संघर्ष किया। उस समय नाना साहब का अनुगमन करने वाले उनके एक सहायक थे जिनका नाम विश्राम सिंह था। ये विश्राम सिंह डॉ. रामकुमार वर्मा के प्रपितामह थे। वर्मा जी के पितामह श्री शोभाराम जी राम के अनन्य भक्त थे। वे स्वयं कविताएँ लिखते थे। उनकी कविताएँ भक्ति रस से ओत-प्रोत होती थीं। इनके पिता श्री लक्ष्मी प्रसाद वर्मा 'डिप्टी कलेक्टर' थे। वे काव्य प्रेमी थे और स्वयं काव्य-रचना करते थे। वर्मा जी की माता श्रीमती राजरानी देवी भी साहित्यिक अभिरूचि के कारण विख्यात थी। वे भी कविताएँ लिखा करती थी। बड़े भाई श्री रघुवीर प्रसाद वर्मा भी कवि थे । इस प्रकार वर्मा जी को एक शिक्षित परिवार का वातावरण

मिला। साहित्य सृजन उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुआ। माता-पिता एवं गुरुजन इस दिशा में सदैव ही उनका उत्साह बढ़ाते थे।

इन्हें प्रारम्भिक अक्षर ज्ञान माँ द्वार ही कराया गया। बचपन में ही माता जी से काव्य एवं संगीत की शिक्षा मिली। रामटेक एवं नागपुर के मराठी स्कूलों से शिक्षा प्राप्त की। हिन्दी अभ्यास घर पर ही किया। उच्च शिक्षा के लिए सन् 1919 में जबलपुर के 'क्रिश्चियन मिशन' स्कूल में प्रवेश किया, परन्तु सन् 1921 ई. में स्वतंत्रता असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। पढ़ाई पर भी इसका असर पड़ा। परिवार के सभी सदस्यों ने स्कूल जाने का आग्रह किया लेकिन इनका निश्चय था, ये हरिजन उद्धार, खादी-प्रचार और कांग्रेस के सदस्य बनाने के लिए गाँव-गाँव घूमने लगे। हाथ में राष्ट्रध्वज लिए गाँव-गाँव फिरा करते। उन्हीं दिनों स्वयं भी राष्ट्रीय गीतों की रचना की। सभी गीतों को पसन्द किया गया। 17 वर्ष की आयु में राष्ट्रीय काव्य प्रतियोगिता में भाग लेकर 51 रुपया का 'खन्ना पुरस्कार' प्राप्त किया। सन् 1923 में माताजी के विशेष आग्रह पर पुनः स्कूल जाना आरंभ किया तथा इन्ट्रेस परीक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त किया। सन् 1925 ई. में जबलपुर के 'राबर्टसन् कॉलेज' से इन्टर की परीक्षा पास की। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सन् 1927 में बी. ए. तथा सन् 1929 में एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। प्रयाग विश्वविद्यालय में एम. ए. हिन्दी प्रथम श्रेणी में प्राप्त करने वालों में सर्वप्रथम विद्यार्थी थे। इलाहाबाद में ये ''हॉलैंड हॉल हॉस्टल'' में रहते थे। अध्ययन, खेलकूद शिष्टता एवं स्वभाव की सफलता के कारण इनको हॉस्टल का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार 'हॉलैंड मेडल' दिया गया। इसी वर्ष विश्वविद्यालय के प्रवक्ता पद पर इन्हें नियुक्त किया गया। सन् 1937 में वरिष्ठ प्रवक्ता एवं सन् 1948 ई. में रीडर तथा सन् 1959 ई. में प्रोफेसर बने। प्रोफेसर बनने के बाद ये मास्को भी गए। रूस एवं भारत के सांस्कृतिक सम्बंधों को सुदृढ़ बनाने के कारण सन् 1963 ई. में भारत सरकार ने इन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि देकर सम्मानित किया । प्रयाग विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त होने के पश्चात् श्रीलंका के 'पैरेडीनिया'

विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष बने।

डॉ. रामकुमार वर्मा स्वभाव से ही राष्ट्रीय भावना से प्रेरित व्यक्ति थे। छात्र जीवन से किशोरावस्था तक उन्होंने जो भी लिखा, वह प्रसिद्ध हुआ। वे ख्याति प्राप्त कवि ही नहीं एक आलोचक के रूप में भी पहचान बनाने में समर्थ हुए। अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन ने उन्हें सन् 1968 ई. में 'साहित्य वाचस्पति' उपाधि प्रदान की। मध्यप्रदेश सरकार ने 'कालिदास पुरस्कार' से सम्मानित किया। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं – "डॉ. वर्मा उन थोड़े से हिन्दी लेखकों कवियों और शिक्षकों में से हैं जो निरंतर विकासशील रहे हैं और जिन्होंने अपनी प्रौढ़ावस्था में पहुँचकर साहित्य का नेतृत्व किया है।"[18]

धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं – "डॉ. वर्मा का कवि व्यक्तित्व द्विवेदी-युगीन प्रवृत्तियों से उदित होकर छायावाद क्षेत्र में मूल्यवान उपलब्धि सिद्ध हुआ। इनकी काव्यगत विशेषताओं में कल्पनावृत्ति, संगीतात्मकता सहस्य में सौंदर्य दृष्टि का स्थान अनन्य है।"[19]

श्री सुमित्रानंदन पंत : "आधुनिक हिन्दी कविता में श्री सुमित्रानंदन पंत ऐसे कवि है, जिनके काव्य का विकास सीधा हुआ है और जिनके प्रगति चिह्नों को आसानी से पढ़ा जा सकता है। आधुनिक हिन्दी कविता में पंत को छोड़कर एक भी ऐसा कवि नजर नहीं आता, जिसने सौंदर्य को अपनी काव्य-चेतना का मूलाधार बनाया हो। पंत जी की दृष्टि में प्रकृति और उसका सौंदर्य अमर है, अजय है अप्रतिम है।"[20] श्री सुमित्रानंदन पंत का जन्म 20 मई, सन् 1900 ई. को कूर्मांचल प्रदेश के 'कौसानी' नामक ग्राम में हुआ था।"[21] पिता का नाम श्री जगादत्त पंत और माता का नाम श्रीमती सरस्वती देवी था। पिता एक अंग्रेज के चाय के बगीचे के मुकीम और लकड़ी के ठेकेदार होने के कारण बहुत रुपये कमाते थे। पंत जी के तीन बड़े भाई थे। इनका लालन-पालन इनकी फूफी के यहाँ हुआ। बालपन में स्वभाव बड़ा ही मधुर था। इनकी प्रकृति शान्त थी। बाल-सुलभ चंचलता इनमें नहीं के बराबर थी। खेलने-कूदने का शौक इन्हें बिल्कुल नहीं था । प्रातःकालीन रवि-रश्मियों को देख उन्हें कौतुहल होता था ।

प्रातःकाल और सन्ध्या बेला के स्वर्णिम हिम-शिखरों में इन्हें अद्‌भुत सौंदर्य के दर्शन होते थे। खुले नीले-आकाश की गहराई पर ये मुग्ध होते थे। घर के समीप के वृक्षों को ये घण्टों तक देखते रहते थे।

पाँच वर्ष की अवस्था में इनका अक्षर-ज्ञान प्रारम्भ हुआ। ग्यारह वर्ष की अवस्था में इन्हें अलमोड़ा के 'गवर्नमेंट' हाईस्कूल की चौथी कक्षा में भर्ती कराया गया। हिन्दी के प्रति उनका प्रेम तभी आरम्भ हुआ। इनकी एक कविता 'अलमोड़ा' अखबार में सन् 1916 ई. में छपी। इन्होंने कविता-रचना की जानकारी प्राप्त करने के लिए 'छन्द प्रभाकर' का अध्ययन किया। रीतिकाल के कवियों की रचनायें ये बड़े प्रेम से पढ़ते।

मतिराम और सेनापति इनके प्रिय कवि थे। ये प्रतिदिन कविता करते जबकि ये मिडिल कक्षा के ही छात्र थे। अलमोड़ा से नवीं कक्षा उतीर्ण कर पंत काशी आ गए। वहाँ के 'जयनारायण हाईस्कूल' से स्कूल लीभिंग परीक्षा पास की। काशी से सम्वत् 1976 में प्रयाग आ गए। यहाँ 'म्योर सेन्ट्रल कॉलेज' में अध्ययन करने लगे। अंग्रेजी के साथ-साथ संस्कृत तथा बंगला का अच्छा अभ्यास किया। सरोजनी नायडू की कविताएँ इन्हें प्रिय थीं। इसी बीच प्रसाद का 'झरना' काव्य इन्होंने पढ़ा। पं. शिवाधर पाण्डे उस समय अंग्रेजी साहित्य के अच्छे विद्वान थे। उनके संपर्क में आकर पंतजी ने अंग्रेजी और संस्कृत साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करना आरम्भ किया जिसमें उन्हें बड़ा आनंद आता। इनकी रुचि धीरे-धीरे काव्य रचना की ओर बढ़ती गई। कीट एवं शैली की रचनाओं ने इन्हें आकर्षित किया। वर्डसवर्थ का प्रकृति-प्रेम उन्हें अपने हृदय के अनुरूप लगा।

सन् 1921 के असहयोग आन्दोलन में इन्होंने कॉलेज छोड़ दिया।[22] यद्यपि राजनीति के प्रति ये उदासीन ही रहते । घर पहुँचकर स्वतंत्र रूप से अध्ययन और मनन करना आरम्भ कर दिया। असहयोग आन्दोलन ने इन्हें कॉलेज से तो अलग कर दिया पर यह अलग होना इन्हें वरदान सिद्ध हुआ । शिक्षा-संस्था से संन्यास ग्रहण कर ये 'सरस्वती-सदन'

के एकान्त साधक बन गए। इनका कवि रूप जनता के सामने आया। इनकी कविताओं की मांग बढ़ी। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठ इनके काव्य पंक्तियों से सजने लगे। इनकी उपस्थिति से सभाओं एवं सम्मेलनों की शोभा बढ़ने लगी। अपनी तपस्या से पंत लोकप्रिय कवि पंत बन गए। विद्वान समालोचक, उनकी काव्य प्रतिभा के प्रशंसक बन गए। आपको काव्य क्षेत्र में लाने का बहुत कुछ श्रेय प्रोफेसर 'शिवाधार पाण्डेय' को है।[23]

तत्कालीन देश की स्थिति ने इन्हें सर्वसाधारण की जीवन-समस्याओं की ओर आकर्षित किया। इनके काव्य पर देश और समाज की अवस्था का प्रभाव पड़ा। सन् 1930 ई. में इन्हें कालाकांकर जाना पड़ा।[24] वहाँ इन्होंने गाँवों के असली रूप को देखा, लोगों की समस्याओं को जाना। प्रकृति-प्रेमी पंत संसार की समस्याओं को सुलझाने में लग गए। दो वर्ष तक काल-कांकर में रहकर लोगों का निर्मम दर्द देखा और सन् 1933 ई. में अलमोड़ा लौट आए। इसके पश्चात् प्रसिद्ध नृत्कार 'उदयशंकर भट्ट' के साथ इन्हें कानपुर, लखनऊ, बड़ौदा, बम्बई आदि शहरों में जाने का अवसर मिला। भ्रमण के दौरान अरविन्द की सेक्रेटरी 'कन्या अनसूर्या' के मुख से अरविन्द के दार्शनिक विचारों को सुनने का अवसर मिला। यही से अरविन्द साहित्य का अध्ययन आरम्भ किया। अरविन्द का जीवन दर्शन उनके आधुनिकतम काव्य का विषय बन गया।

पंत जी की पहली कविता 'गिरजे का घंटा' सन् 1916 ई. की रचना है।[25] डॉ. शिवकुमार लिखते हैं – ''पंत सुकोमल भावनाओं के कवि हैं। उनमें निराला जैसी संघर्षमयता और पौरुष नहीं है। यद्यपि इनके काव्य में अनेक करुणता है किन्तु वे अपनी सौंदर्य-दृष्टि और सुकुमार उदात्त कल्पना के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। विसर्गता वे प्रकृति के सुकुमार कवि हैं।[26] पंत जी की प्रकृति-प्रियता को देख शुक्ल जी ने लिखा - छायावाद के भीतर माने जाने वाले सब कवियों में प्रकृति के साथ सीधा प्रेम-सम्बंध पंत जी का ही दिखाई पड़ता है। प्रकृति के अत्यन्त रमणीय खण्ड के बीच उनके हृदय ने रूप रंग पकड़ा है। पल्लव, उच्छ्वास और

आँसू में हम उस खण्ड की प्रेमार्द स्मृति पाते हैं। यह अवश्य है कि सुषमा की ही उमंग भरी भावना के भीतर हम उन्हें रमते देखते हैं।[27] डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं – पंत काव्य में प्रकृति के मनोरम रूपों का मधुर और सरस चित्रण मिलता है। आँसू की बालिका 'पर्वत प्रदेश में पावस' आदि कविताओं में प्रकृति के मनोहर चित्र विद्यमान है जिनमें कवि की जन्मभूमि के प्राकृतिक सौंदर्य का वैभव दिखायी देता है।[28]

पंत जी ने वीणा ग्रंथि, पल्लव, गुन्जन, युगान्त, युगवाणी, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि और उतरा नामक काव्य पुस्तक तो लिखी ही हैं। परी, क्रीड़ा, रानी और ज्योत्स्ना इनके गीत नाट्य हैं। 'पाँच कहानियाँ' इनका कहानी संग्रह है और 'हार' उपन्यास है। मधु-ज्वाल नाम से अमर खैयाम की रूबाइयों का अनुवाद भी किया है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार – ''पंत का कृतित्व हिन्दी साहित्य की आधुनिक चेतना का प्रतीक है जो इहलौकिक जीवन मूल्यों के निर्माण की ओर अग्रसर है।''[29]

गाँधी जी का प्रभाव भी उन पर पड़ा। शुक्ल जी लिखते हैं – ''पंत जी ने समाजवाद के प्रति भी रूचि दिखाई है और 'गाँधीवाद' के प्रति भी ऐसा प्रतीत होता है, कि लोक व्यवस्था के रूप में 'समाजवाद' की बातें उन्हें पसन्द हैं और व्यक्तिगत साधना के लिए गाँधीवाद की बातें।''[30] इनके 'ग्राम्य' काव्य में गाँधी के सिद्धांतों का प्रतिपादन है। गाँधी जी का मानना था असली भारत गाँवों में ही है। पंत जी ने ग्राम दशा का यथार्थ चित्रण किया है। पंत की रचनाएँ भारतीय जीवन की समृद्ध सांस्कृतिक चेतना से गहन साक्षात्कार कराती हैं। उन्होंने खड़ी बोली की प्रकृति-शक्ति और सामर्थ्य का अभियान चलाया और उसे वाक्य-विन्यास तथा शब्द सम्पदा से भी समृद्ध किया। उनकी मृत्यु प्रयाग में 29 दिसम्बर, सन् 1977 ई. को हुई।

पंत जी की प्रबुद्ध मनीषा का यह प्रबल प्रमाण है कि विविध भाव धाराओं से प्रभावित होने पर भी उन्होंने गाँधी विचार धारा का विशेष रूप ग्रहण किया है । इस सम्बंध में

वे स्वयं लिखते हैं – ''युग कवि (रवीन्द्र) अंतर्मुख कल्पना सौंदर्य तथा युग-नायक मानव में बहिर्मुख यथार्थ के बीच तब जैसे मेरा मन आँख मिचौली खेला करता था।''[31] लेकिन गाँधी के प्रभाव को स्वीकार करते हुए वे कहते हैं – ''मेरे जीवन मन के सद्यमुकुलित क्षितिज में जो सदैव नवीन चैतन्य के गरिमादीप्त सूर्य की तरह शुभ, सजीव आलोक किरण बरसाते रहे, जिन्होंने हमारी पीढ़ी के आशा उत्फुल्ल आकाश को अपनी अतुल उज्ज्वल कीर्ति की दीप्ति से व्याप्त रखा।''[32] गाँधी जी के महिमाशाली व्यक्तित्व की कोई भी देशवासी उपेक्षा नहीं कर सकता। तब फिर पंत जैसे भावकुक कवि कैसे अछूते रहते ? गाँधी जी के एक भाषण से ही वे इतने प्रभावित हुए कि छात्र जीवन को त्याग उनकी विचारधारा का अध्ययन करने लगे –

'वह पहला ही असहयोग था, बापू के शब्दों से प्रेरित,
विदा छात्र जीवन को दे मैं करने लगा स्वयं को शिक्षित।[33]

अपने काव्य में गाँधीवाद को स्थान देने के विषय पर उन्होंने कहा – ''मैंने भारत के हितों का ध्यान रखा है, क्योंकि स्वभावतः ही यह मेरा प्रथम कर्त्तव्य था। मैंने सदैव भारत के हित को विश्व के हित का ही एक अंग माना है। हमारे गुरु महात्मा गाँधी ने हमें यही शिक्षा दी है। उन्होंने इसे भारत के स्वातंत्र्य और गौरव की रक्षा करते हुए दूसरे के साथ शान्ति और मित्र-भाव से रहने का उपदेश दिया है। आज संसार में स्थान-स्थान पर संघर्ष और द्वेष फैला हुआ है तथा सामने विनाश दिखाई दे रहा है। इसलिए हमें ऐसे प्रत्येक कार्य का जिससे यह द्वन्द्व कम हो स्वागत करना चाहिए।''[34] उन्होंने गाँधी जी के आगमन को ऐसे दूत का आगमन कहा जो सबका कल्याण करने आता है –

बापू तुम से क्षुन आत्मा का तेज राशि आह्वान,
x x x
आत्मा के उद्धार के लिए आर्य तुम अनिवार्य।[35]

महादेवी वर्मा : महादेवी वर्मा का जन्म सन् 1907 में फरुखाबाद के एक सुसम्पन्न परिवार में हुआ था।[36] उनके पिता का नाम गोविन्द प्रसाद वर्मा और माता हेमरानी एक विद्विषी महिला थीं। सूर, मीरा और तुलसी की कविताएँ सदा पढ़ा करती। फलस्वरूप बाल्यकाल से ही महादेवी जी को भक्ति काल के साहित्य से प्रेम हो गया। इनके नाना ब्रजभाषा के कवि थे। कविता का योग्य वातावरण इन्हें बचपन से ही मिला। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में हुई। चित्रकला और संगीत की शिक्षा भी वहीं से प्राप्त की। जब महादेवी तेरह वर्ष की थीं तभी इनका विवाह डॉक्टर स्वरूप नारायण वर्मा के साथ हो गया। इनके श्वसुर स्त्री शिक्षा के कट्‌टर विरोधी थे अतः शिक्षाक्रम विवाहोपरान्त टूट गया। श्वसुर जी के स्वर्गवास के उपरान्त शिक्षाक्रम जारी हुआ। इनको मिडिल और हाईस्कूल की परीक्षाओं में अच्छी सफलता मिली दोनों में सर्वप्रथम रहीं। छात्रवृत्ति प्राप्त कर ये आगे बढ़ती गई। प्रयाग के 'क्रास्थबेट' कॉलेज से इन्टर और बी. ए. की परीक्षाएँ पास कर लीं। बी. ए. में इनका एक विषय दर्शनशास्त्र भी था। इन्होंने भारतीय दर्शन का गहन अध्ययन किया। एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर ये प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाध्यापिका बन गई।[37] इन्हीं दिनों प्रयाग से प्रकाशित होने वाली 'चाँद' मासिक पत्र में भी अवैतनिक रूप से कार्य करती रहीं। बच्चों के शिक्षा के प्रति ये अति उत्सुक थी इसलिए उन्होंने प्रयाग के आस-पास के गाँवों में जाकर बच्चों को पढ़ाया करती।

साहित्य में उनका प्रवेश 'नीरजा' शीर्षक कविता संग्रह के प्रकाशन के साथ हो गया था और उन्हें इस रचना पर साहित्य सम्मेलन की ओर 'शेखसरिया' पुरस्कार प्राप्त हुआ। प्रयाग महिला विद्यापीठ के निर्माण में महादेवी का अमिट योगदान है। ये आरम्भ में ब्रजभाषा में कविता लिखती थी बाद में खड़ीबोली में लिखने लगीं और शीघ्र ही इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। ये कुशल चित्रकार भी थीं इसलिए इनकी कविताओं में चित्रों जैसी संरचना की आभास मिला करता है। महादेवी स्वयं अपनी काव्य-यात्रा के आरम्भ के विषय में लिखती हैं – एक व्यापक विकृति के समय निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़भूत

वर्ग में मुझे जन्म मिला है, परन्तु एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावकु माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमें भावुकता, बुद्धि के कठोर धरातल पर साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय किसी वर्ग या सम्प्रदाय में बंधनेवाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्वभूमि पर माँ से पूजा आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि का था। स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद रचना आरंभ की थी। मेरे प्रथम हिन्दी 'गुरु' भी ब्रजभाषा के ही समर्थक निकले अतः उलटी-सीधी पद रचना छोड़कर मैंने समस्यापूर्तियों में मन लगाया।

बचपन में जब पहले पहल खड़ीबोली की कविता से मेरा परिचय पत्रिकाओं द्वारा हुआ तब उसमें बोलने की ही भाषा में लिखने की सुविधा देखकर मेरा अबोध मन उसी ओर उत्तरोत्तर आकृष्ट होने लगा। गुरु उसे कविता ही न मानते, अतः छिप-छिपाकर मैंने रोला ओर हरिजीतिका में भी लिखने का प्रयत्न आरम्भ किया। माँ से सुनी एक करूण कथा का प्रायः सौ छन्दों में वर्णन कर मानो खण्डकाव्य लिखने की इच्छा भी पूर्ण कर ली।''[38] डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में – ''महादेवी की कविताओं में आरम्भ से ही विस्मय, जिज्ञासा, व्यथा और आध्यात्मिकता के भाव मिलते हैं। ये भाव निरंतर प्रौढ़ और परिमार्जित होते गए हैं।[39] महादेवी वर्मा के विचारधारा के संबंध में विजयेन्द्र स्नातक स्पष्ट शब्दों में अंकित करते हैं – ''महादेवी वर्मा के संस्कार भारतीय जीवनदर्शन से जुड़े हुए थे। भारत देश को वो एक विशाल देश ही नहीं अपितु विद्या आस्था और वाणी का केन्द्र भी मानती थी । भारत के तीर्थ स्थानों के प्रति भी उनके मन में श्रद्धा थी । बद्रीनाथ की यात्रा तो उन्होंने दो बार पैदल ही की थी । दक्षिण भारत की साहित्यिक यात्रा में तो कन्याकुमारी तक गयी और अपने साथ दिनकर, इलाचन्द्र जोशी को भी ले गयी थी। महादेवी की काव्य यात्रा को पाँच खण्डों में विभाजित कर देखा जा सकता है । उनके संग्रहों के नाम उनकी काव्य-यात्रा को संकेतीत करते हैं । पहली

रचना 'निहार' में जीवन के प्रति एक रहस्यमय व्याकुल भाव दृष्टिगत होता है। 'रश्मि' की कविताओं में उस रहस्यमयता का स्पष्टीकरण है। 'नीरजा' अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनका सुन्दर काव्य संग्रह है। अभिव्यक्ति का जो स्तर आरम्भ में मिलता है वह आगे चलकर और अधिक संवेदनीय बन गया है। सान्ध्यगीत में एक समापन का आग्रह-सा लगता है।[40]

शुक्ल जी ने महादेवी को छायावाद का मूल अर्थ कहा है – "छायावाद का केवल पहला अर्थात् मूल अर्थ लेकर चलने वाली श्री महादेवी वर्मा हैं। पंत, प्रसाद, निराला इत्यादि ओर सब कवि प्रतीक पद्धति या चित्र भाषाशैली की दृष्टि से ही छायावादी कहलाए।[41] डॉ. शिवकुमार शर्मा के अनुसार – "सजल गीतों की गायिका महादेवी वर्मा आधुनिक युग की मीरा कहीं जाती हैं। इनकी कविता में संगीतकला, चित्रकला तथा काव्यकला का अपूर्व समन्वय है। हिन्दी साहित्य की कवियित्रियों में देवी जी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है ही साथ ही इनमें आधुनिक रहस्यवाद तथा छायावाद की सभी प्रमुख प्रवृत्तियाँ बहुत सुन्दर तथा उभरते हुए रूप में मिलती है।[42]

हिन्दी-साहित्य के विपुल भंडार की श्रीवृद्धि में महादेवी वर्मा का योगदान अविस्मरणीय है। डॉ. विजयेन्द्र के अनुसार - महादेवी की कविता छायावादी काव्य में कई दृष्टियों से अपना स्वतंत्र स्थान रखती है। प्रबंधात्मकता से बचते हुए प्रतीकों का आश्रय लेकर उन्होंने जो गीत रचना की है। वह छायावादी काव्य में अपना स्वतंत्र स्थान रखती है। महादेवी की रचनाओं में 'सप्तपूर्णा' एक विशेष प्रकार की रचना है। उसमें महादेवी जी ने वैदिक ऋचाओं तथा भारतीय वाङमय के सुप्रसिद्ध ग्रंथों से कुछ अंश लेकर उन्हें हिन्दी में रूपान्तरित किया है। महादेवी का संस्कृत भाषा और साहित्य से विद्यार्थी जीवन से ही घनिष्ठ संबंध था । उन्हें देश के जागरण की प्रेरणा संस्कृत साहित्य से ही मिलती है।[43]

महादेवी वर्मा को साहित्य में अक्षुण्ण योगदान के लिए अनेक संस्थाओं से सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त हुए । 'स्मृति की रेखाएँ' शीर्षक गद्य पर 'द्विवेदी पदक' रश्मि और नीरजा

पर मंगल प्रसाद पुरस्कार, भारत सरकार से 'पद्मभूषण' उपाधि से सम्मानित उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा प्रथम 'भारत-भारती' पुरस्कार, यामा और दीपशिखा के लिए सन् 1982 ई. में 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार आदि। महादेवी ने कवि निराला की श्रेष्ठ कविताओं को एक संकलन 'अपरा' नाम से सन् 1952 ई. में साहित्यकार संसद की ओर से प्रकाशित किया। वे 'साहित्य अकादमी' सम्मानित सदस्या थी तथा सन् 1981 ई. में इसकी फेलोशिप से सम्मानित हुई। इनका निधन सितम्बर, सन् 1987 को प्रयाग में हुआ।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : नवीन का जन्म सन् 1897 ई. में ग्वालियर राज्य के भयावह गाँव में हुआ था।[44] पिता का नाम जमुना प्रसाद शर्मा था। वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी होने के कारण आप उदयपुर के श्रीनाथ द्वार नामक तीर्थ स्थान में रहते थे। कुछ बड़े होने पर नवीन जी भी अपनी माता के साथ वही चले गए। लेकिन वहाँ इनकी शिक्षा की व्यवस्था नहीं हो सकी, अतः पुनः अपनी माताजी के साथ भमाना आ गए। प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई। सुजालपुर से अंग्रेजी माध्यम से मिडिल और उज्जैन से मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा पास की । इसी वर्ष कांग्रेसी अधिवेशन देखने लखनऊ गए। वहाँ इनका परिचय गणेश शंकर विद्यार्थी से हुआ। विद्यार्थी जी के सम्पर्क में आते ही राष्ट्रीयता की ओर झुकाव हुआ। जिस वर्ष ये बी. ए. में अध्ययन कर रहे थे। उसी वर्ष सन् 1921 ई. में असहयोग आन्दोलन छिड़ गया। गाँधी जी के आह्वान पर कॉलेज छोड़कर राजनीति में सक्रीय भाग लेने लगे।[45] विद्यार्थी जी के पत्र 'प्रताप' में सह-सम्पादक का कार्य किया और छात्र जीवन से ही राजनीतिक विषयों पर लेख, कविता आदि लिखना आरम्भ किया। लम्बे समय तक राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेने के कारण कई बार जेल यात्रा की। सन् 1921 ई. में डेढ़ वर्ष के लिए पहली बार, सन् 1930 ई. में दूसरी बार, सन् 1932 ई. में ढाई वर्ष के लिए जेल गए। अपने जेल जीवन में ही आपने विस्तृता, उर्मिला नामक महाकाव्य की रचना की, जिसमें उर्मिला का चरित्र बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है।

नवीन जी का रचना काल सन् 1917 ई. से प्रारम्भ होता है। आपकी प्रथम रचना 'संत' नामक कहानी है जो 'सरस्वती' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद कविता 'जीव और ईश्वर से वार्तालाप', 'प्रतिभा' पत्रिका में निकली। सन् 1925 ई. में आपकी प्रारम्भिक रचनाओं का संग्रह 'कुकुम' नाम से निकला। सन् 1951 ई. में गीतों का संग्रह 'अपलक' नाम से प्रकाशित हुआ। इसके बाद 'क्वासि' और 'रश्मिरेखा' का प्रदर्शन हुआ। नवीन जी की कविता में मुख्यतः दो प्रकार की काव्य प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक राष्ट्रीयता से परिपूर्ण और दूसरा श्रृंगार रस प्रधान। डॉ. शिवकुमार शर्मा लिखते हैं – ''इनकी कविता पर राष्ट्रीय आन्दोलनों, सामाजिक घात-प्रतिघात, दार्शनिक अनुभूतियों, स्वच्छंदतावादी काव्य एवं प्रगतिवाद के अनेक प्रभाव पड़े हैं, किन्तु हिन्दी जगत् में इनकी प्रतिष्ठा क्रान्तिकारी कवि के नाते हैं।''[46] इनकी रचनाओं को लक्ष्यकर डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं – ''नवीन की रचनाओं में प्रणय और राष्ट्रप्रेम दोनों भावों की शक्तिशाली अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी प्रणय संबंधी रचनाओं में छायावादी प्रणय के समान स्वच्छंदता तथा प्रेम और मस्ती के काव्य जैसी मार्मिकता दिखाई देती है। इस रूप में नवीन जी को परवर्ती प्रेम और मस्ती के काव्य के अग्रदूत के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इनकी राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविताओं में अनुभूतियों का सीधा सम्बन्ध इनके जीवन के साथ है। देश की स्वतंत्रता तथा समाज की नई रचना के लिए इन्होंने जो अथक साधना की थी वही साधना निश्छल और सहज शक्ति के साथ इनकी राष्ट्रीय रचनाओं में भी दिखाई देती है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के अन्य कवियों के समान ही इनके काव्य के प्रधान विषय हैं – अतीत की महिमा का गौरव-गान, तत्कालीन भारतीय समजा की रूग्ण अवस्था के प्रति व्यथा और आक्रोश, भविष्य को अवतरित करने की कामना आदि।''[47]

नवीन जी ने भारत के स्वतंत्र होने के बाद संसद में राज्यसभा के सदस्य के रूप में भी देश को देखा और जीवन के अन्तिम वर्षों में अस्वस्थ होने पर भी अपनी वांग्मिता से

राष्ट्रीय चरित्र के उन्नयन के लिए ओजस्वी वाणी में कुछ न कुछ करते रहे। भारतीय 'संविधान-निर्मात्री परिषद्' के सदस्य के रूप में हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार कराने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। सन् 1955 ई. में स्थापित राजभाषा आयोग के सदस्य के रूप में भी कई महत्त्वपूर्ण कार्य किए।

कवि बाल्कृष्ण शर्मा 'नवीन' पर गाँधी जी के सिद्धान्तों का प्रभाव पूर्णतः देखा जा सकता है। उनकी सक्रीय राजनीतिक जीवन, गाँधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन से ही प्रारंभ हुआ। गाँधी विचारधारा का सबसे अधिक प्रभाव उनके काव्य की मानवतावादी रचनाओं 'उर्मिला' और 'विनोवास्तवन' में देखा जा सकता है। गाँधीय दर्शन की स्पष्ट छाप राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता के संदर्भ में सर्वप्रथम विचार नवीन जी की 'उर्मिला' में प्राप्त होती है । वे अपनी पूर्ण सच्चाई और निष्ठा के साथ मानवता के गायक थे। नवीन जी साहित्यकार ही नहीं थे अपितु सक्रिय स्वतंत्रता सेनानी थे। गाँधी प्रवर्तित और निर्देशित कार्यक्रमों पर आचरण करने वाले नवीन कर्म व मन दोनों से गाँधीवादी थे।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : ''हिन्दी के छायावादी कवियों में सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' कई दृष्टियों से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। उनका व्यक्तित्व अतिशय विद्रोही और क्रान्तिकारी तत्त्वों से निर्मित हुआ है। इसके कारण वे एक ओर जहाँ अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तनों के स्रष्टा हुए वहाँ दूसरी ओर परम्पराभ्यासी हिन्दी काव्य प्रेमियों द्वारा अरसे तक सबसे गलत भी समझे गए। उनके विविध प्रयोगों, छन्द, भाषा, शैली, भाव संबंधी नव्यतर दृष्टियों ने नवीन काव्य को दिशा देने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योग दिया। इसलिए घिसी-पीटी परम्पराओं को छोड़कर नवीन शैली के विधादय कवि का पुरातनता पोषक पीढ़ी द्वारा स्वागत का होना, स्वाभाविक था, पर प्रतिभा का प्रकाश उपेक्षा और अज्ञान के कुहासे से बहुत देर तक आच्छन्न नहीं रह सकता।''[48]

निराला का जन्म महियादल स्टेट मदिनीपुर (बंगाल) में सन् 1897 की वसन्त

पंचमी के दिन हुआ था। उनका शैशव अभावों की पीड़ाओं को झेलते हुए व्यतीत हुआ। यों तो इनका अपना घर गंढ़कोला गाँव में हैं।[49] उनके पिता मदिनीपुर में सैनिक के रूप में कार्य करते थे। बंगाल में रहने का परिणाम यह हुआ कि बंगला भाषा एक तरह से इनकी मातृभाषा हो गई। निराला के माँ की मृत्यु शैशव काल में ही हो गई थी अतः उन्हें पिता के संरक्षण में रहना पड़ा। लेकिन पिता का संरक्षण भी उन्हें ज्यादा दिन नहीं मिला, उनकी भी असामयिक मृत्यु हो गई। इन्फ्लुएंजा के विकराल प्रकोप से घर के अन्य प्राणी भी चल बसे। माता और पिता के प्रेम से वंचित होकर निराश्रय बालक ने तुलसी की रामायण का आश्रय प्राप्त किया। स्वभाव से चंचल होने के कारण निराला को हनुमान का चरित्र बड़ा पसन्द आया। वे राम और हनुमान के उपासक बन गए। इन सब परिस्थितियों का प्रभाव आगे चलकर उनके काव्य पर पड़ा।

निराला की शिक्षा नवीं कक्षा तक बंगाला में ही हुई। बंगला-साहित्य से भी परिचय हुआ। जब पिता का देहान्त हो गया तो कुछ समय तक राज्य की नौकरी करनी पड़ी। ये बड़े निश्चिन्त स्वभाव के व्यक्ति थे। कसरत करते, कुश्ती लड़ते, घुड़सवारी करते और संगीत विद्या का भी अभ्यास करते थे। आगामी संकटों का सामना करने के लिए इनका फौलादी ढाँचा तैयार हो गया था। नौकरी में आत्म सम्मान के विरूद्ध कोई स्थिति उत्पन्न हो गई और ये नौकरी त्याग कलकत्ता चले गए। अब इनका सम्पर्क हिन्दी-साहित्य प्रेमियों से होने लगा। तेरह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह मनोहरा देवी से हो गया था। पत्नी रूपवती होने के साथ-साथ गुणवती भी थी। हिन्दी के प्रति प्रेम पत्नी के साथ से ही हुआ था। इन्हें वैवाहिक सुख अधिक दिनों तक नहीं मिला। बाइस वर्ष की अवस्था में पत्नी चल बसी। पत्नी एक पुत्र रामकृष्ण और पुत्री सरोज को छोड़कर गई थी। उनकी पुत्री सरोज भी चौदह वर्ष की होकर काल का ग्रास बन गई । पुत्र था लेकिन नहीं के बराबर क्योंकि उसकी कभी उनसे बनी ही नहीं। उनके जीवन संघर्ष पर डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं – ''निराला जी का जीवन अनेक अभावों

व विपत्तियों से पीड़ित रहा, किन्तु इन्होंने किसी विपत्ति के सामने झुकना नहीं सीखा। अभावों की तीव्र मर्मान्तक व्यथा को झेलते हुए भी साधना में तल्लीन रहें। मगर कबतक कोई इस तरह जी सकता है, निराला का मन और बुद्धि तो संघर्षों की उपेक्षा करते हुए अविचलित रहे किन्तु उनकी चेतना के भीतर जैसे कुछ टूट रहा था, घुल रहा था। उनके जीवन के अन्तिम वर्ष जहाँ उनकी चेतना के अथक-अविचल संघर्ष की कहानी कहते हैं, वहाँ उनके जीवन की विपत्तियों और व्यथाओं की दुर्निवार शक्ति को भी व्यंजित करते हैं।''[50]

नौकरी छूट जाने पर जीविका का प्रश्न था। आर्थिक संकट छाया हुआ था। इसी बीच निराला का परिचय महावीर प्रसाद द्विवेदी से हुआ। द्विवेदी जी के प्रयत्न से संवत् 1978 में रामकृष्ण मिशन के पत्र 'समन्वय' का सम्पादक बने। 'समन्वय' के सम्पादन काल में स्वामी रामतीर्थ विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस आदि की रचनाओं का अध्ययन किया। उनके दार्शनिक विचारों के पुष्ट होने का बहुत ही अच्छा अवसर मिला। कुछ दिनों के बाद कलकत्ता से प्रकाशित 'मतवाला' के सम्पादक बन गए। उनकी रचनाओं को हिन्दी-संसार में फैलाने का अवसर मिला। उन्हें पाठक मिले, प्रेमी नहीं विरोधी।

सन् 1916 ई. से 1958 ई. तक निरन्तर काव्य-साधना में तल्लीन रहे। उनकी सबसे पहली रचना 'जुही की कली' सन् 1916 में प्रकाश में आयी। यह उनकी प्रथम छायावादी रचना थी। सन् 1916 में ही उन्होंने हिन्दी बाङ्ला का तुलनात्मक व्याकरण लिखा जो 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ। 'मतवाला' का सम्पादन करते बहुत अच्छी कविताएँ लिखी जो 'परिमल' में संकलित है। उसका प्रकाशन वर्ष सन् 1929 है। डॉ. शिवकुमार शर्मा 'परिमल' को छायावाद का प्रतिनिधि काव्य कहते हैं – ''छायावादी काव्य के इतिहास में पंत के 'पल्लव' के समान निराला के 'परिमल' का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे छायावाद का प्रतिनिधि काव्य कहा जा सकता है । जूही की कली, पंचवटी, विधवा, भिक्षुक, कुछ बादल गीत एवं बहुत-सी अन्य कविताएँ हैं । इन रचनाओं में प्रेम-सौंदर्य, करूणा और रहस्य भावना

की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है। कुल मिलाकर 'परिमल' में छायावादी की अनेकमुखी प्रवृत्तियों की व्यंजना जितनी गंभीर और प्रौढ़ स्वरों से 'परिमल' में हुई है उतनी उस समय तक छायावाद के किसी अन्य कवि की वाणी में नहीं हो पायी 'परिमल' की कविताओं से सचमुच समूची जाति के मुक्ति प्रयास का पता चलता है।[51]

'परिमल' एवं 'जूही की कली' के अलावा इनकी प्रमुख रचनाएँ है – अनामिका, गीतिका, तुलसीदास, सरोज-स्मृति, राम की शक्ति पूजा आदि है। 'राम की शक्ति पूजा' निराला की ही नहीं सम्पूर्ण छायावादी काव्य की एक उत्कृष्ट उपलब्धि हैं। इसमें कवि ने एक ऐतिहासिक प्रसंग के द्वारा धर्म और अधर्म के शाश्वत संघर्ष का चित्रण किया है।

निराला के समस्त काव्य साहित्य पर दृष्टिपात करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे परम्परागत गलत रूढ़ियों के विरोधी तथा काव्य जगत में नवीन चेतना के उद्घोषक के रूप में पाठक के सामने आते हैं। इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं कि निराला भारतीय संस्कृति के द्रष्टा कवि हैं। मध्यम श्रेणी के परिवार में उत्पन्न होकर और परिस्थितियों के घात-प्रतिघात को सहन करते हुए स्वथ्य आदर्श के लिए सब कुछ बलि करने वाला महापुरुष हिन्दी में महाप्राण निराला ही हैं। निराला ने सारे जीवन सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक तथा साहित्यिक संघर्ष झेले और अविचलित रहकर जो उच्चस्तरीय साहित्य हिन्दी जगत को प्रदान किया, वह सदैव उस महाप्राण कवि का स्मरण करता रहेगा। निराला की मृत्यु अक्टूबर मास में सन् 1961 ई. में इलाहाबाद में हुई। निराला का वैविध्यपूर्ण रचना-संसार उनके इसी व्यक्तित्व का बोध कराता है।''[52]

निराला के काव्य की एक विशिष्टता है लोकोन्मुखता। यही लोकोन्मुखता गाँधीवाद की देन है। उनके काव्य में गाँधीवाद की स्पष्ट छाप है। वे अपनी रचनाओं में कहीं क्रान्ति का पक्ष लेते हैं तो कहीं शान्ति का। 'तुलसीदास' इस अवधि की विशिष्ट देन है, जिसमें भारत को सांस्कृतिक और समाजिक पराजय के गर्त से निकालने का प्रयास है । इनकी राष्ट्रीय

कविताएँ भी गाँधी जी के कार्य-कलापों से प्रभावित है।

4. ख गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख काव्य :

छायावादी युग में जीवित सभी कलम के पुजारियों ने गाँधी जी के मानववादी विचारों को ग्रहण किया। गाँधी जी की छाया, छायावादी कवियों के साथ सर्वत्र रही। पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामकुमार वर्मा तथा सुभद्राकुमारी चौहान सभी के हृदय में गाँधीवाद का सिंहासन विराजमान था। सभी के काव्य पर गाँधी जी के सिद्धान्तों का असर देखा जा सकता है या यूँ कहें की गाँधीवादी चेतना से प्रभावित होकर काव्य सृजन किया। वही काव्य कालांतर में गाँधीवाद का प्रतीक हो गया।

कामायनी : 'कामायनी' जयशंकर प्रसाद की और संभवतः छायावाद की सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है। प्रौढ़ता के बिन्दु पर पहुँचे हुए कवि की यह अन्यतम रचना है। इसे प्रसाद के सम्पूर्ण चिन्तन-मनन का प्रतिफलन कहना अधिक उचित होगा। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1936 ई. में हुआ था।[53] इसका कथानक वेद, उपनिषद, पुराण आदि से प्रेरित है किन्तु आधार शतपंथ ब्राह्मण को स्वीकार किया गया है।

प्रसाद जी की 'कामायनी' छायायुग की मीनार है। यह गाँधीयुग का वरदान है। यह गाँधीवाद रूपी देवता के कर कमलों में प्रदत्त महान उपहार है। संस्कृति के नये रूपों के उद्‌घाटन में प्रसाद जी ने गाँधीवाद का सामंजस्य तत्व अपनाया। युग के नये मनु गाँधी जी के व्यक्तित्व से प्रसाद के मनु भला कैसे अप्रभावित रह पाते ? छायावाद के इस मेरूकृति में प्राचीन संस्कृति का पुनरारूत्थान गाँधीवादी धरातल पर हुआ है। युग-नियामक शक्ति गाँधीदेव के व्यक्तित्व का आलोक यत्र-तत्र विखड़ा पड़ा है। 'श्रद्धा' गाँधीवाद की परम मूर्ति है।[54]

कामायनी के विषय में डॉ. शिवकुमार शर्मा लिखते हैं – ''कामायनी प्रसाद जी की अन्तिम किन्तु सर्वश्रेष्ठ कृति है और यह छायावाद का एक महाकाव्य है। मनु, श्रद्धा और इड़ा की पौराणिक कहानी के माध्यम से प्रसाद जी ने आधुनिक पूँजीवादी और आज के युग के

मनुष्य के बौद्धिक और भावानात्मक विकार तथा आज के जीवन की वैषम्य की जीती जागती कहानी चित्रित की है।''[55]

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है – ''कामायनी अपने रूपकत्व में एक मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक मन्तव्य को प्रकट करती है। मनु, मन का प्रतीक है और 'श्रद्धा' तथा इड़ा क्रमशः उसके हृदय और बुद्धिपक्ष हैं। अपने आन्तरिक मनोविकारों से संघर्ष करता मनु, 'श्रद्धा' विश्वास की सहायता से आनन्द लोक तक पहुँचता है। प्रसाद ने समरसता सिद्धान्त से आनन्द लोक तक पहुँचता है। प्रसाद ने समरसता सिद्धान्त एवं समन्वय मार्ग का प्रतिपादन किया है।''[56]

शुक्ल जी लिखते है – ''रूपक के भावना के अनुसार 'श्रद्धा' विश्वास समन्वित रागात्मिक वृत्ति है और इड़ा व्यवसायिकत्व का बुद्धि।''[57]

कामायनी की कथा जलाप्लावन से आरंभ होती है : ''चारों ओर जल ही जल था और तरूणतपस्वी देवताओं की श्मशान भूमि में साधना कर रहा था। जलप्लावन धीरे-धीरे उतर रहा था ; नौका महावट से बँधी हुई थी, उस पुरुष के हृदय में चिन्ता का उदय होता है और वह देव सृष्टि का स्मरण करता है। नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है – कामायनी काव्य आधुनिकयुग की कृति है। इसके निर्माता प्रसाद जी यद्यपि भारतीय अतीत और उसकी प्राचीन संस्कृति के प्रेमी थे, परन्तु कामायनी में उन्होंने नवीन वैज्ञानिक तथ्य का भी यथेष्ट उपयोग किया है। उनकी यही विशेषता उनके काव्य को आधुनिकता प्रदान करती है।''[58]

डॉ. प्रेमशंकर लिखते हैं – ''कामायनी' हिन्दी महाकाव्य का नवीनतम स्वरूप है। प्रसाद ने उसमें बिखरी हुई कथा को एक सूत्र में बाँधा और प्राप्त सामग्री का उपयोग किया। कथानक के रूप में 'कामायनी' पूर्ण जीवन को लेकर चलती है। मनु मानवता के प्रतीक बनकर आये हैं, श्रद्धा, नारीत्व का प्रतिनिधित्व करती है। .... कामायनी देश-काल और जाति की सीमा लाँघ गई। वह मानव और उसकी मानवता को अपना विषय बनाती है। यद्यपि

उसके प्रमुख रंगमंच हिमालय और सारस्वत प्रदेश है। इस कथानक को कवि ने कल्पना द्वारा आधुनिक रूप प्रदान किया। चरित्र सृष्टि के रूप में कामायनी अन्य प्राचीन महाकाव्यों की भाँति किसी ऐसे प्रसिद्ध पात्र को ग्रहण नहीं करती जो वीर हो वह मनु के रूप में मानव को ही लेती है। मनु जीवन के स्वाभाविक उत्थान-पतन में बँधा मनुष्य है जो अपने लक्ष्य तक जाने के लिए व्यग्र है।''[59]

जयशंकर प्रसाद का साहित्य सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित है। वे युग, देश, समाज और मानव की जिन समस्याओं को उठाते हैं। उनका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। उनका जन्म ऐसे समय हुआ था जब कि पाश्चात्य सभ्यता देश पर प्रभाव डाल रही थी। राष्ट्र के इतिहास से उज्ज्वल उदाहरण लेकर उन्नत परम्परा लोगों के सम्मुख रखी। वे इस बात से पूर्ण सहमत हैं कि भारत ही आर्य जाति की जननी है। यहीं ऋषि, मुनि तथा कई महापुरुष पैदा हुए। जिन्होंने राष्ट्र के गौरव को बढ़ाया है। प्रसाद की विचारधारा के पीछे उनका मानवीय स्वर है। जीवन के शाश्वत उपादानों को लेकर उन्होंने काव्य का निर्माण किया। उनका संदेश सम्पूर्ण मानवता के लिए है। कामायनी में उनका मानववाद अपने प्रांजल रूप में आया है, जहाँ मानवता के लिए अनेक मंगलमय संदेश है। इड़ा और संघर्ष सर्गो में आधुनिक वैज्ञानिकता, भौतिकवाद, विषमता आदि का चित्रण उन्होंने किया है। वह उससे मुक्ति पाने का उपाय भी प्रस्तुत करते हैं। श्रद्धा मनु को समझाती है कि दूसरों को हँसते देखकर सदा प्रसन्न रहो। सब कुछ अपने में भरकर मनुष्य व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता। वसुधा का प्रसार ही वास्तविक सुख संतोष है।

प्रसाद की काव्य चेतना अपने युग, समाज और इतिहास से प्रभावित है। एक जागरूक कवि होने के कारण उन्होंने परिस्थिति की अवहेलना कभी नहीं की। श्री नन्ददुलारे बाजपेयी कामायनी के गौरव को बढ़ाते हुए लिखते हैं ''अपनी मर्मग्राहिणी प्रतिभा द्वारा मानव प्रकृति का विश्लेषण कर प्रसाद जी ने इस सुन्दर काव्य की रचना की है । इसमें मानवीय

प्रकृति के मूल मनोभावों को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से पहचानकर संग्रह किया गया। यह मनु और कामायनी की कथा तो है। इसमें मनुष्य के क्रियात्मक, बौद्धिक और भावात्मक विकास में सामंजस्य स्थापित करने का अपूर्व काव्यात्मक प्रयास भी है। यही नहीं यदि हम और गहरे पैठे तो मानव प्रकृति के शाश्वत स्वरूप की झलक भी इसमें मिलेगा। इस दृष्टि से तो यह मनुस्मृति के सहस्त्रों वर्ष बाद मानव धर्म निरूपण का महत्त्वपूर्ण काव्य है।''[60]

कामायनी आपने युग की चेतना से प्रभावित है। प्रसाद ने आधुनिक समय की बौद्धिकता, भौतिकवाद तथा विज्ञानवाद के अतिवाद से त्रस्त मानवता के लिए 'कामायनी' में श्रद्धाजन्य विश्वास और सहृदयता को सम्मुख रखा। 'इड़ा' सर्ग में काम के मुख से कवि ने संसार की विषमता का वर्णन किया है। सारस्वत प्रदेश विश्व का प्रतीक-सा बन जाता है। गाँधी युग के प्रसाद सत्य, अहिंसा के साथ व्यवहारिक समरसता और आनन्दवाद को भी उपस्थित करते हैं। आधुनिक युग का संघर्ष केवल दो राष्ट्रों अथवा शक्तियों के मध्य नहीं है। प्रसाद ने इस समस्या की जड़ तक विचार किया। वास्तव में मानव की प्रवृत्तियाँ ही आपस में संघर्ष कर रही है। मानव के मन-मस्तिष्क में समन्वय स्थापित करके प्रसाद ने आनन्द को प्रतिष्ठित किया। भौतिकवाद में पली हुई सारस्वत प्रदेश की प्रजा ने स्वयं अपने नियामक मनु के विरूद्ध विद्रोह किया। अन्त में श्रद्धा द्वारा स्थिति में सुधार होता है। श्रद्धा वह कल्याणकारी शक्ति है जिससे कवि ने आधुनिक युग की अधिकांश समस्याओं का उत्तर दिया। राजनीति में होने वाला राजा-प्रजा का संघर्ष भी कामायनी में है। प्रसाद प्रजा तथा राजा में समन्वय चाहते हैं। युग की चेतना को ज्यों-ज्यों प्रसाद पहचानते गए उनका स्वर और अधिक बौद्धिक होता चला गया और उन्होंने अपने मानवीय दृष्टिकोण को सामने रखा।

''कामायनी' प्रसाद के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है। उसमें कलाकार अपनी साधना को लेकर प्रस्तुत हुआ। वह उसके जीवन मंथन का परिणाम है। लक्षणग्रंथों का अनुसरण न करते हई भी कामायनी अपने जीवन-दर्शन, काव्य-सौष्ठव, मानवीय व्यापार के

आधार पर महाकाव्य का पद प्राप्त करती है। 'कामायनी' प्रसाद की सर्वोत्तम कृति के रूप में हिन्दी में आयी और एक निधि बनकर रहेगी।''[61] डॉ. नगेन्द्र के अनुसार – ''कामायनी अपनी सीमाओं के बावजूद हिन्दी साहित्य की एक गौरवशाली उपलब्धि है।''[62]

शुक्ल जी ने तो कामायनी का समग्र अध्ययन किया और निष्कर्ष रूप में आशावादी होकर लिखा – ''प्रसाद जी प्रबंध क्षेत्र में भी छायावाद की चित्र प्रधान और लाक्षणिक शैली की सरलता की आशा बँधा गए हैं।''[63]

इस प्रकार कामायनी मानववादी काव्य होने के साथ-साथ गाँधीवादी काव्य भी है। प्रसाद के विश्व-धर्म व विश्व-संस्कृति के भाव व विचार गाँधीवाद के रंग में रंगे हैं। जाति-भेद-भाव का उन्मूलन जीव-प्रेम, मानवता की आकांक्षा, हार्दिकता आदि में गाँधीवाद का ही प्रस्फुटन है।

आँसू : जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित आँसू का प्रथम संस्करण 1925 ई. में चिरगाँव झाँसी से प्रकाशित हुआ था।[64] लगभग एक सौ छब्बीस छन्दों में कवि ने प्रेमी की वेदनाभूति अतीत की स्मृति आदि अंकित करने का प्रयास किया है। 'आँसू' का द्वितीय संस्करण 1933 ई. में प्रयाग से प्रकाशित हुआ। इसमें कुछ बदलाव हुए। अन्य छन्दों का समावेश हुआ जो बाद में लिए गए थे इसमें छन्दों की संख्या लगभग एक सौ नब्बे हो गयी।

'आँसू' के स्वस्थ प्रेम जागृत निराशक सूक्ष्म रूप ने उसे एक उच्च धरातल पर पहुँचा दिया है। आदर्श-स्थापना कवि की महान कलाकृति है। यदि प्रेम का आदेश अनुभूति के सत्य के कारण मार्मिक व्यंजना तथा साधारणीकरण में सफल हुआ तो उसकी आशामय परिणति उसे ऊँचाई पर ले जाती है। स्वाभाविक उत्थान-पतन में बँधा हुआ प्रेमी अन्त में जीवन सत्य को जान लेता है। 'आँसू' का यह जीवनदर्शन वियोग पक्ष के होते हुए भी उसे स्वस्थता प्रदान करता है। पीड़ा से क्रन्दित कवि यह जान जाता है कि अपने ही सुख से बेसुध व्यक्ति जिसकी वेदना भी सो गई है, दूसरों की करूण कथा नहीं सुन सका । गाँधीवाद

के प्रेम के अलौकिक रूप की सृष्टि 'आँसू' में हुई है। प्रेमी केवल प्रिय के शरीरिक आकर्षण पर ही नहीं रीझता उसने चिर सत्य एवं चिर सुन्दर के रूप में उसे ग्रहण किया। प्रेम का रंग एक बाद चढ़कर कभी नहीं छूटता प्रेम के जिस बीड़ह पथ में प्रेमी आज है, उसमें इससे पहले कोई नहीं आया। सुख एवं दु:ख दोनों प्रकृति की देन है, दोनों में मौलिक अन्तर नहीं है। बिना दु:ख के सुख का कोई मोल नहीं और दु:ख के बाद ही सुख आता है।

प्रसाद ने 'आँसू' में व्यक्तिगत प्रेम-भावना को एक व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया है। अपने नवीन कलेवर में 'आँसू' वेदना-दर्शन के द्वारा एक सार्वभौमिक संदेश देता है। व्यक्तिवादी ढंग से आरम्भ होने वाली बेदनानुभूति मानवता तक जाती है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है – "वास्तव में 'आँसू' एक स्मृति काव्य है। कवि ने अतीत जीवन की अनुभूतियों को स्मृति के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। यही कारण है कि अपनी वेदना को कवि ने विश्व प्रेम के रूप में रूपान्तरित कर दिया।"[65] डॉ. प्रेमशंकर लिखते हैं – "कला की दृष्टि से 'आँसू' एक सफल गीति सृष्टि है। स्वानुभूति का सहज प्रकाशन गीतों का स्रष्टा है और यहाँ गीतकार का व्यक्तित्व निहित रहता है।"[66] शुक्ल जी के अनुसार – "प्रसाद जी की यह पहली काव्य रचना है जिसने बहुत लोगों को आकर्षित किया। अभिव्यंजना की प्रगल्भता और विचित्रता के भीतर प्रेम-वेदना की दिव्य विभूति का विश्व में उसके मंगलमय प्रभाव का सुख और दु:ख दोनों अपनाने की उसकी अपार शक्ति का और उसकी छाया में सौंदर्य और मंगल के संगम का भी आभास पाया जाता है।"[67]

'आँसू' में प्रसाद की जो व्यक्तिगत अनुभूति है, जिसमें वे मानव जीवन को सूखी बनाने के लिए आकुल है, यह आकुलता गाँधीवाद से प्रेरित है। विश्व-कल्याण की भावना, गाँधीवाद को अभिव्यंजित करती है।

लोकायतन : सुमित्रानंदन पंत की इस कृति में भारतीय जीवन की स्वतंत्रता के पहले और बाद की कथा को काव्य रूप दिया गया है। इसका रचना काल सन् 1964 ई. हैं।[68] यह दो

खण्ड में विभाजित है – बाह्य परिवेश और अन्तरचेतना। इस प्रबंध की पटभूमि बहुत ही व्यापक है जिसमें स्वाधीनता के पहले से लेकर उत्तर स्वप्न तक का विशाल भारतीय जीवन अन्तर्भुक्त हो उठा है। पंत जी युग जीवन के यथार्थ के हर पहलु को समझते थे। देश-विदेश के समस्त परिवर्तनों को, बदले मूल्यों को पुरातन और नवीन के संघर्षों का।

डॉ. मिताली ने लिखा है – ''भावना की लाल लहरों में बह जाने वाले पंत की हृदय-धारा प्रस्तुति कृति प्रायशः युगावतार गाँधी के मुक्ति यज्ञ के समीप बह चली है। इतिहास की पृष्ठभूमि पर रचित प्रस्तुत महाकाव्य, आशक्ति, अत्याचार, अन्याय, अमानवीयता तथा असुरता व अन्धकार में आशा के आलोक स्तम्भ के समान अवनी पर अवतीर्ण होकर भारत के मुक्ति संग्राम के कर्मधार बनकर अपने व्यक्तित्व तथा कृतित्व के द्वारा समूची मानवता को घी का अमृत तथा जीवन का आलोक प्रदान करने वाले महात्मा गाँधी की विचारधारा तथा कृतियों का सम्यक दिग्दर्शन कराने में समर्थ है।''[69]

युगान्त : यह सुमित्रानंदन पंत द्वारा रचित काव्य संग्रह है, जिसमें सन् 1934 ई. से लेकर 1936 ई. तक की तैतीस छोटी-बड़ी रचनाएँ संकलित है। इसमें गाँधीवादी विचारधारा को आधार बनाया गया है, इसका प्रकाशन वर्ष सन् 1946 ई. है।[70] सन् 1934-36 ई. का यह सन्धिकाल पंत जी के हृदय का मंथन का समय है। इसमें महात्मा गाँधी के नेतृत्व में देश ने निर्माण क्षेत्र में नये प्रयोग किए। स्वयं गाँधी जी देश की जन-शक्ति के प्रतीक बने। सत्याग्रह संग्राम की विफलता ने भी उनके महामानवीय व्यक्तित्व को नयी तेजस्विता दी। इस संकलन की सर्वश्रेष्ठ रचना 'बापू के प्रति' में पंत ने अपनी शतशः प्रणति दी। इस काव्य की अधिकांश रचनाएँ कवि के मानव-प्रेम और प्रकृति-प्रेम से ओत-प्रोत हैं, स्वयं गाँधी जी में वह मानव की परिपूर्णता के दर्शन करते हैं। श्री टंडन ने लिखा है – ''युगान्त में मानव-प्रेम तथा सौंदर्य संचय के प्रति पूर्णरूप से विरक्ति स्पष्ट हो जाती है। प्रकृति-प्रेम और गंभीर दार्शनिकता एवं चिन्तन का रूप हमें कला, कोमलता तथा लोक-कल्याणकारी भावनाओं के साथ युगान्त में

मिलता है।''[71]

युगान्त की कविताओं में पंत की सौंदर्य-सृष्टि मानव के प्रति करूणा से संचालित तथा मंगल भावना से निष्पन्न है। 'ताज' शीर्षक रचना में ताजमहल के अपार्थिव सौंदर्य में बह नहीं जाते क्योंकि ताज के निर्माण में मृत्यु का पूजन है ; जीवन का श्रृंगार नहीं। ताज उनके लिए गत युग के मृत्य आदर्शो का प्रतीक बन गया है, जो मानव के महान्ध्र ह्रदय में घर किए हुए है। तात्पर्य यह कि युगान्त की यह रचना प्रवृति और सौंदर्य के प्रति कवि की नयी मानववादी दृष्टि की देन है।

ग्राम्या : सन् 1939 ई. से सन् 1940 ई. तक का 53 कविताओं का संग्रह है। इस ग्रंथ में कवि पंत ने 'ग्राम्य समस्या' जो 'युग समस्या' का एक प्रधान अंग है पर अधिक विचार किया है। पंत ने स्वयं स्वीकार किया है कि इससे पाठकों को ग्रामिणों के प्रति बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है। ग्राम्य जीवन में मिलकर लिखी गई यह रचना है। ग्राम्य के प्रगीतों में पंत का अभिव्यंजना संबंधी दृष्टिकोण 'वाणी' शीर्षक कविता से प्रकट हो जाता है, जिसमें वह चुनौति के स्वर में अपनी वाणी से सम्बोधित करते हैं, ''तुम वहन कर सको जन-जन मेरे विचार, वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार।''

'कवि-किसान' कविता में उन्होंने कवि को युग का सांस्कृतिक नेता मानकर चेतना भूमि में चिर-जीर्ण विगत की खाद डालने उसे सम बनाने, बीज वपन करने और निराने का रूपक बाँधा है। यह नयी-दृष्टि कवि कर्म की नई दिशा पर प्रकाश डालती है। कवि का लक्ष्य क्षेत्र की नवीनता नहीं। वे तो धरती के समीप रहने वाली काली-कुरूप और उच्छिश्ट मानवता का चित्रण करना चाहते हैं। उनका ग्राम कल्पना का ग्राम न होकर यथार्थ का ग्राम है। जहाँ - ''यहाँ सर्व नर, बानर रहते युग-युग से अभिशापित।''

ग्रामीण जीवन की करूणा को कवि ने भारत-ग्राम, ग्राम-वधू, वह बुड्ढा, गाँव के लड़के, वे आँखे, कठपुतले, ग्राम-नारी आदि रचनाओं में उतारा है । पंत विश्व को ग्रामीण

नजरों से देखना चाहते हैं। वहाँ जीवन की कुरूपता और कठोरता का ऐसा चित्र है जो सबको स्तम्भित कर देता है। उस काव्य की दो रचनाएँ – भारत-माता और ग्राम-देवता है जिसमें भारत-माता जो नवोदित भारत राष्ट्र का जनगीत बन गई और ग्राम-देवता, जिसमें कवि भारतीय जनवाद का समर्थक बन गया। नये मानवतावाद में जन-संस्कृति को समाविष्ट करने की लालसा इस रचना में परिव्याप्त है।

ग्राम्य की कविताएँ गाँधीवाद से प्रेरित हैं। सत्य, अहिंसा दीनों की स्थित, गाँव का यथार्थ चित्रण सभी पर गाँधीवाद का प्रभाव है।

परिमल : यह छायावादी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा रचित काव्य संग्रह है। त्रिपाठी जी की कविताएँ 'मतवाला' पत्रिका में सन् 1924-1925 ई. में प्रकाशित हुई थी। उन्हीं कविताओं का संग्रह 'परिमल' में हुआ है। इसका प्रकाशन वर्ष सन् 1929 ई. है।[72] निराला की बहुवस्तु-स्पर्शिनी प्रतिभा, प्रगतिशील दृष्टिकोण, दार्शनिक तथा बौद्धिक विचारधारा का परिचय, 'परिमल' में संग्रहित रचनाओं में मिलता है। इस काव्य-संग्रह के तीन खण्ड हैं - प्रथम खण्ड में छन्दोबद्ध रचनाएँ हैं, द्वितीय खण्ड में स्वच्छन्द छन्द का प्रयोग किया गया है तो तृतीय में मुक्तवृत्त का।

भारतीय लोकहितवाद के आन्दोलन की ओर अपने सम-सामयिक कवियों में निराला सबसे पहले उन्मुख हुए । उनकी भिक्षुक, दीन, विधवा, बादल राग आदि कविताएँ उनके नवीन एवं क्रान्तिकारी रूप का परिचय देती हैं। उनके काव्य विचारों में गाँधीवादी विचारधारा स्पष्ट झलकती है।

अनामिका : 'निराला' जी की अन्यतम कविताओं के संग्रह 'अनामिका' का प्रकाशन सन् 1938 ई. में हुआ था।[73] इस संग्रह में संग्रहीत व्यंग्यात्मक कविताओं द्वारा 'निराला' ने अपने विरोधियों तीव्र कशाघात किया है। उसमें संग्रहीत 'राम की शक्ति पूजा' के भाव तथा शैली में महाकाव्यात्मक औदात्य पाया जाता है। रावण के अव्यर्थ शरों की मार से विकल वानरी सेना

को देख कर राम की व्याकुल मनःस्थिति का इसमें बहुत ही मनोवैज्ञानिक तथा प्रभावपूर्ण चित्रण है। राम के रूप में गाँधी का चित्रण किया है, ऐसा प्रतीत होता है जो देश तथा देशवासियों की विकलता को देखकर चिन्तित हैं। 'सरोज स्मृति' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शोकगीत है। अनुभूति की गहरी व्यंजना की दृष्टि से यह बेजोड़ रचना है। दान बनबेला आदि रचनाओं में तथाकथित दानियों तथा नेताओं का पर्दाफाश कर उनकी वास्तविकता को उजागर किया है।

नीहार : 'नीहार' महादेवी वर्मा की प्रथम काव्यकृति है। इसका प्रथम संस्करण सन् 1930 ई. गाँधी हिन्दी पुस्तक भण्डार प्रयाग द्वारा प्रकाशित हुआ था और इसकी भूमिका (परिचय) आयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने लिखी थी।''[74] इसमें महादेवी द्वारा रचित सन् 1923 ई. से लेकर सन् 1929 ई. तक की कुल 47 कविताएँ हैं।

इनकी रचनाओं में गाँधीवादी विचारों का एक्य मिलता है। वे कहीं न कहीं गाँधी जी से अवश्य मिलते हैं।

एकलव्य : डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा लिखा गया यह महाकाव्य है। इसमें महाभारत के अध्याय 129 से लेकर 133 तक की कथा ग्रहण की गई है। एकलव्य में वर्मा जी ने युग के अनुरूप मानवतावादी धाराओं से प्रेरणा प्राप्त करके महाभारत के एकलव्य जैसे उपेक्षित पात्र को महाकाव्य का नायक बनाने का प्रयास किया है। 30 श्लोकों की संक्षिप्त कथा को लगभग 300 पृष्ठों में विस्तृत करके वर्मा जी ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

इस महाकाव्य में गाँधीवाद की अनेक प्रवृत्तियाँ प्रस्फुटित हैं। एकलव्य के चरित्र के माध्यम से वर्मा जी ने प्रस्तुत महाकाव्य में समता-भावना, अछूतोद्धार, नव-शिक्षा, विधान आदि गाँधीवादी विचार व्यक्त किए हैं। गाँधीवादी मानवीय भावनाओं का सशक्त प्रतिपादन एकलव्य के चरित्र के माध्यम से किया है। एकलव्य की गुरु-भक्ति गाँधी जी को अत्यन्त प्रिय थी जिसकी प्रशंसा उन्होंने यत्र-तत्र की है । मुख्यतः गाँधीवादी साम्य-भावना को सशक्त स्वर

प्रदान किया है। गुरु द्रोण का पश्चाताप गाँधीवादी पश्चाताप भावना से साथ साम्य रखता है। जाति भेद जिसका गाँधी जी ने पूरजोर विरोध किया, द्रोण भी जाति एवं वर्ण भेद का विरोध करते हैं। त्याग भावना गाँधीवाद का मुकुट है। एकलव्य की त्याग भावना में वहीं झलक है। अर्जुन का हृदय-परिवर्तन गाँधीवाद के सिद्धान्त से बिल्कुल मिलता-जुलता है।

4. ग छायावादी युग में गाँधीवादी चेतना की अभिव्यक्ति :

सत्य : सत्य गाँधी दर्शन की आधारशिला है। सत्य एक शाश्वत वृत्ति और शील है परन्तु उसे नैतिक, सामाजिक जीवन में ही नहीं आर्थिक और राजनीतिक जीवन में चरितार्थ करने की प्रेरणा महात्मा गाँधी ने दी है। उनका 'सत्याग्रह' विश्व की युद्ध नीति में एक युगान्तर है। डॉ विजयेन्द्र स्नातक के शब्दों में ''गाँधी जी का समस्त दर्शन सत्य पर केन्द्रित है। सत्य के प्रति कठोर आग्रह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यदि नहीं है तो न आत्मशुद्धि होगी और न आत्म नियंत्रण ही।''[75] गाँधी जी सत्य के पुजारी थे अतः जीवन के गूढ़तम सत्य को भी वे सूत्र रूप में कहने में सफल एवं समर्थ हुए। उन्होंने एक वाक्य में सत्य की व्याख्या इस प्रकार की है – ''सत्य सर्वदा स्वावलम्बी होता है और बल तो उसके स्वभाव में ही होता है।''[76]

गाँधीवाद को सत्यवाद और गाँधी को सत्य पुरुष की संज्ञा से विभूषित किया जाए तो, अनुचित न होगा। गाँधी जी ने जीवन भर 'सत्य के प्रयोग' किए थे। उनकी सत्यनिष्ठा को देख सुमित्रानंदन पंत ने लिखा है –

सुख भाग खोजने आते सब
तुम आए करने सत्य-खोज[77]

सत्य एवं भौतिक सुखों में कोई संबंध नहीं है। प्रायः देखा जाता है कि सत्यान्वेषी को अनेक कठिनाइयों और विपत्तियों का सामना करना पड़ता है तथा उसे भौतिक सुख त्यागने पड़ते हैं। पंत जी गाँधी जी से बहुत प्रभावित थे। उनकी भेंट गाँधी जी से अनेक बार हुई और उनके गंभीर व्यक्तित्व से प्रेरणा ग्रहण कर अनेक रचनाएँ लिखी । 'महात्मा जी के

प्रति' कविता में पंत ने सत्यान्वेषण का मूल्यांकन करते हुए लिखा है –

वस्तु सत्य का करते भी तुम जग में यदि आह्वाहन

x x x x

सफल तुम्हारा सत्यान्वेषण, मानव सत्यान्वेषक।[78]

गाँधी जी को विश्वास हो गया था कि 'सत्य ही ईश्वर है।' वही सर्वोपरि सत्ता है। गाँधी विचाराधारा के पोषक कवि श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के राम भी इसी तथ्य को उजागर करते हैं –

सदा एक ही वस्तु पूज्य है, वह है सत्य, असत्य नहीं

असत्य, अर्चना का इस जग में, हो सकता है तथ्य कहीं।[79]

सत्य तथा अहिंसा द्वारा स्थायी विजय प्राप्त करना आसान है। सत्य के साधक को विश्व की कोई शक्ति नहीं रोक सकती क्योंकि उसकी आत्मा में बल, हृदय में विश्वास और प्राणों में सत्य का प्रकाश होता है। कवि पंत कहते हैं –

शुद्ध चित्त बन दीप्त अमीप्सा हविकर अर्षित,

x x x

बने सत्य के सम्मुख सत्ताधारी विनमित।[80]

कवि नवीन जी की गाँधी जी की सत्य-अहिंसापूर्ण नीति से इतने आश्वस्त थे कि यहाँ तक मानने लगे कि यह नीति जगत् को समता एवं मोक्ष प्रदान करने में अवश्यमेव साधक सिद्ध होगी–

मानव की विचारधारा में आयी नूतन महाक्रान्ति यह,

जगन्मोक्षदायिनी बनेगी सत्य-अहिंसापूर्ण शान्ति यह।[81]

गाँधी जी कहते हैं अपने आपको जान लेना ही सत्य को पहचानना है। कविवर पंत की भी यही कामना है कि प्रत्येक मानव आत्माभिमुख हो तथा अपने अंदर की छिपी महान

शक्ति का साक्षात्कार करे। यह साक्षात्कार सत्य की साधना द्वारा ही संभव है। सत्य हमारे प्रत्येक कार्य में उतर जाये या रम जाये अर्थात् सत्य के अतिरिक्त हमारे जीवन में कोई अन्य न हो –

वही सत्य कर सकता मानव जीवन का परिचालन

x x x

मनुष्यत्व में मज्जित करने युग जीवन के सुख-दुख।[82]

कवि पंत गाँधी युग के आगमन को नई मानवता के आगमन का युग मानते हैं। इस प्रकार गाँधी जी ने सत्य को जिस शिवत्व तक पहुँचाया हिन्दी कवियों ने उसी के अनुरूप काव्यामय व्याख्या करने का सफल प्रयास किया है। कवियों का सत्य संबंधी दृष्टिकोण गाँधीवाद के अति निकट है।

सत्य अहिंसा बन अन्तर्राष्ट्रीय जागरण

x x x

नव्य चेतना मंडित, स्वर्णिम अब उठे निखर।[83]

अहिंसा : गाँधी जी अहिंसा के पुजारी थे। गाँधी द्वारा प्रवर्तित अहिंसा का धारण प्राचीन अहिंसा की धारणा से नितान्त भिन्न न होते हुए भी आंशिक भिन्न अवश्य है। उन्होंने अहिंसा को प्रेम की पराकाष्ठा, हिंसा का जबाव और वीर का लक्षण माना है। अहिंसा का वास्तविक रूप है समग्र प्राणी मात्र के लिए प्रेम की भावना, क्योंकि सारा विश्व एक ही सत्य से अनुप्राणित है। यह प्रेम, स्वार्थ और मोह आदि से सर्वथा मुक्त होता है। गाँधी जी की अहिंसा सत्याग्रह के रूप में प्रकट हुई है और असहयोग का बल उसे प्राप्त हुआ है। माखनलाल चतुर्वेदी ने 5 जुलाई 1921 में बिलासपुर की अदालत में अपना बयान देते है, अपने आपको एक सच्चा सत्याग्रही जिसे असहयोग का बल प्राप्त है अहिंसक असहकारिता को ही जीवन धर्म बताया –

पर इतना ही हनीं राष्ट्र की आज्ञा या उद्धारक कर्म

x x x

मैं तेरे पिंजरे का कैदी असहयोग मतवाला हूँ।।[84]

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' क्रान्तिकारी होने पर भी सत्याग्रह आन्दोलन के दिनों में गाँधी वाणी को अपने काव्य का आधार बनाया। वे जानते थे कि अहिंसक वृत्ति से ही हिंसा का दमन किया जा सकता है –

मेरे सत्य अहिंसा में है, गति उद्यम बल ओज निराला,

x x x

ऊध्वगामिनी, क्लेश हारिणी, वरदायिनी, बनाती निर्भया।।[85]

सुभद्राकुमारी चौहान अहिंसा के आत्मिक बल पर विश्वास रखती हैं। अहिंसा के मंत्र का प्रभाव कुछ ऐसा है जिसके सम्मुख तोप, बन्दूकें आदि काँपने लगती हैं –

वह चली तोप, गल चले टैंक-बन्दूक पिघलती जाती हैं

सुनते ही मंत्र अहिंसा के, अपने में आप समाती है।[86]

गाँधी जी अहिंसक मानव बनकर उस धरा पर मनुज को अहिंसा का पाठ पढ़ाने आए थे–

प्रथम अहिंसक मानव बन तुम आए हिंस्त्र धरा पर

मनुज बुद्धि को दनुज हृदय के स्पर्शों से संस्कृत कर।[87]

गाँधी जी की साधना सफल हुई। अहिंसक क्रान्ति का ज्वार आया। अहिंसा के अस्त्र सत्याग्रह एवं असहयोग को लोगों के अपनाया। जनता ने पूर्ण समर्थन दिया। शासक तंत्र घबराने लगा। कवि पंत के साथ जनता भी अखंड रामराज्य स्थापना हेतु उस अहिंसक क्रान्ति का आवह्न करने लगी –

महान क्रान्ति आज हो, अखण्ड रामराज्य हो

x x x

न रक्तपात युद्ध हो। न ऊर्ध्व शक्ति रूद्ध हो।[88]

अहिंसा की अद्‌भुत अपार शक्ति को छोड़कर कौन ऐसा होगा जो हिंसा के मार्ग पर चलेगा ? इसलिए कवि एवं जनता की भी यही पुकार है –

हम हिंसा का मान त्यागकर, विजयी वीर अशोक बनें,

काम करेंगे यही कि जिससे लोक और परलोक बने।[89]

अहिंसा गाँधीवाद की नाड़ी है, जिसे प्रसाद जी भलीभाँति जानते थे। कामायनी में अहिंसा तत्त्व का निरूपण समरसता के धरातल पर किया है। वे गाँधी जी की तरह आत्म रक्षार्थ शस्त्र को मानते हैं। अहिंसा का समर्थन करती हुई तकली कातने में अनुरक्त 'कामायनी' महाकाव्य की नायिका 'श्रद्धा' के चरित्र में महात्मा जी का अहिंसावाद मुखरित हो उठा है। वे भी आत्मरक्षा के लिए हिंसक पर प्रहार करना अनुचित नहीं मानते। उनकी श्रद्धा के चरित्र में जिस अहिंसा, क्षमा और शान्ति की महत्ता परिलक्षित होती है, उस पर गाँधी विचारधारा का पूर्णतः प्रभाव है। अहिंसा सिद्धान्त का समर्थन 'श्रद्धा' के शब्दों में इस प्रकार प्रकट किया है –

अपनी रक्षा करने में जो, चल जाय तुम्हारा कहीं अस्त्र

x x x

वे क्यों न जियें उपयोगी बन, इसका मैं समझ सकी न अर्थ।[90]

माखनलाल चतुर्वेदी भी हिंसा एवं घृणा से तो नफरत करते हैं लेकिन अत्याचारी पर प्यार नहीं लुटाना चाहते –

हिंसा और घृणा दोनों ही है मेरे मजहब से पाप

x x x

प्यार करे अत्याचारी पर यह मुझको स्वीकार नहीं।[91]

सत्य, अहिंसा व्यक्तिगत रूप में नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसारित हो यह कवि पंत की आकांक्षा है–

सत्य अहिंसा बन अन्तर्राष्ट्रीय जागरण,

x x x

नव मानवता करती गाँधी का जय घोषण।[92]

कवयित्री सुभद्रकुमारी चौहान अहिंसात्म्क साधनों को अपनाकर ही विजय प्राप्ति की कामना करती हैं –

हमारी प्रतिभा साध्वी रहे, देश के चरणों पर ही चढ़े,

अहिंसा के भावों में मस्त, आज यह विश्व जीतना पड़े।[93]

पंत जी के अनुसार गाँधी जी ने अहिंसा के सिद्धान्त को नया परिवेश प्रदान किया है इससे पहले अहिंसा सक्रिय नहीं थी –

सक्रिय, मुखर, अहिंसा हो अब, सत्याग्रह का कर आवाह्न,

मुक्त अहिंसा का युग बीता, वह थी जन शिक्षा की साधन।[94]

उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि गाँधी जी के कारण ही अहिंसा की इस शक्ति का उदय शताब्दियों के बाद हुआ है –

इधर खड़े चिर सौम्य देवता, उधर खड़ा उन्मत्त दैत्य दल,

शतियों में सक्रिय हो पाया, भू पर शुभ्र अहिंसा का बल।[95]

माखनलाल के निःशस्त्र सेनानी मानो गाँधी जी के ही प्रतिरूप हैं, जिन्होंने तलवार न उठाने की मानो प्रतिज्ञा ही कर ली थी –

लपकती है लाखों तलवार - मचा डालेगी हाहाकार।

x x x

पलट जाये चाहे संसार - न लूँगा इन हाथों तलवार।[96]

इस प्रकार गाँधी अहिंसा सिद्धान्तार्थ जीवित रहे। गाँधीवाद अहिंसा का पर्याय है इसका उद्देश्य सामूहिक हित है। अहिंसा रूपी वीर धर्म का संबल लेकर ही वे कठोरता को जीतते रहे। इस शस्त्र के आगे ब्रिटिश भी झुकने के लिए बाध्य हुए। इस अस्त्र में लाखों तलवारों को मिटाने की ताकत है। इस ताकत का अहसास गाँधी जी ने ही करवाया है और लोग इसे अवश्य अपनायेंगे । इसी भाव को पंत लिखते हैं –

नहीं जानता युग विवर्त में होगा कितना जन क्षय,

x x x

मानव आत्मा को उवारने आए तुम अनिवार्य।[97]

हृदय-परिवर्तन : गाँधी जी ने हृदय परिवर्तन के द्वारा आर्थिक समानता की स्थापना का, अहिंसक क्रान्ति का स्वप्न देखा था। वे पूँजीपतियों का हृदय-परिवर्तन करवाकर अपनी पूँजी का संरक्षक बनाना चाहते थे। समानता की भावना को बलवती करना ही उनका उद्देश्य था। वे नहीं चाहते थे कि समाज में धनवान एवं निर्धन में अन्तर रहे। धनी-निर्धन का शोषण करे। हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त ने ही ट्रस्टीशिप सिद्धान्त को जन्म दिया। वे पूँजीपतियों को धन का मालिक न बनाकर धन के संरक्षक के रूप में देखना चाहते थे। वे समाज में पनपे धनी एवं निर्धन के बीच की खाई को पाटना चाहते थे। इसमें हिन्दी के कवियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे अपने काव्य में पूँजीवाद का विरोध करते हैं। वे मानव के अन्दर मानवता की भावना जगाना चाहते हैं। गाँधी जी ने जिस जनता को जनार्दन का रूप माना उसे ही कवियों ने मानवता की सेवा के रूप में अपनी वाणी दी। पंत जी ओजस्वी वाणी में कहते हैं–

आज मनुज को खोज निकालो, जाति-वर्ण संस्कृति समाज से।

x x x

रूढ़ि रीति मत विश्वासों की, अन्ध यवनिका आज उठा लो।[98]

'एकलव्य' महाकाव्य द्वारा डॉ. रामकुमार वर्मा वर्ग विहीन समाज की स्थापना एवं

साम्य व्यवस्था का प्रतिपादन करते हैं। एकलव्य के चरित्र के रूप में मानव को दृढ़ बनने एवं मानवता को अपनाने का संदेश दिया है –

''जीव नैराश्य की है भूमि नहीं मानवों

x x x

तुम में सदैव, तम योग्य तो बनो सही।''[99]

प्रसाद जी भी औरों को सुखी बनाकर सुख से रहने के लिए कहते हैं –

अपने में सबकुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा ?

x x x

अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।[100]

साकेत भी उर्मिला भी सबके कल्याणार्थ पुरवाला-शाला खुलवाने की इच्छा व्यक्त करती है। जब व्यक्ति विश्व-प्रेम में मानवता की सेवा में डूबता है तब जाति, सम्प्रदाय, देश आदि के सीमित व संकुचित विचार व दायरे स्वयमेव छूटने लगते हैं। श्री नवीन जी ने यही स्वर मुखरित किए हैं –

देश-विदेश संकुचित जन का, है अनुचित संकुचित विचार,

x x x

सीमित देश-विदेश कल्पना, मिठया युग का सपना है।[101]

पंत तो हर मानव को ऐसा मानव बनाना चाहते हैं जो निर्बलों का बल बने उसकी नजर में समानता हो और सबके सुख में जो सुखी रहे –

नम्र शक्ति वह, जो सहिष्णु हो, निर्बल को बल करे प्रदान,

मर्त प्रेम, मानव मानव हो, जिसके लिए अभिन्न समान,

रामकुमार वर्मा के महाकाव्य 'एकलव्य' में भी हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त गाँधीवाद के अनुरूप है। अर्जुन को धनुर्विद्या पर बड़ा गर्व था। एकलव्य की गुरु-भक्ति ने पार्थ

के हृदय में भारी परिवर्तन ला दिया। वह एकलव्य से क्षमा याचना करते हुए कहता है –

क्षमा करो एकलव्य मेरी धृष्टता, भूमिपुत्र सर्वदा है, भूमिबल जानते।

पशुबल कौशल तो सीमित तुम्हारा है, आत्मबल की हमारे पास सीमा है नहीं।"[102]

गाँधीवाद के समस्त कवियों ने हृदय-परिवर्तन के प्रवृत्ति को अत्यन्त प्रमुख स्थान दिया है, क्योंकि गाँधीवाद की अन्याय प्रवृत्तियों का इस प्रवृत्ति के साथ अत्यन्त निकट सम्बन्ध है। गाँधी जी अक्सर कहा करते थे उनकी अहिंसा, धर्म और साहस की पुत्री और हृदय-परिवर्तन तथा शुद्धीकरण की जननी है। उन्होंने बुरे से बुरे मनुष्य में हृदय-परिवर्तन उत्पन्न करने का राम मंत्र प्रदान किया। जब उनकी हृदय-परिवर्तन की नीति का परिहास किया गया तो उन्होंने उत्तर दिया कि मेरे प्रयत्न के बावजूद भी अगर किसी विपथगामी का हृदय नहीं बदलता तो भी मैं अपना प्रयत्न नहीं छोडूँगा। उन्हें हृदय-परिवर्तन में प्रगाढ़ विश्वास था और उनके उपवास, सत्याग्रह, क्रोध आदि इसी नीति के विविध मुख है। दूसरों के हृदय-परिवर्तन के लिए बापू ने अपने शरीर को कई बार दण्ड दिया । वे स्वार्थी मनुष्यों का हृदय-परिवर्तन होते हुए देखना चाहते थे।

मानव की स्वार्थी वृत्ति ही उसे दूसरों का परोपकार करने से रोकती है। आज मनुष्य ने वैज्ञानिकयुग का चरम उत्कर्ष प्राप्त कर लिया है, किन्तु उसकी मानवीय भावना का पतन ही हुआ है। मनुष्य के पास बुद्धि है, हृदय नहीं है। भौतिकता ने मानवता को कुचल दिया है। इसलिए मानवता का विकास अवरूद्ध हो गया, परिणाम स्वरूप मानव दुःख के गहनान्धकार में भटक रहा है। इस अन्धकार को दूर करने के लिए पंत एवं जगत की दृष्टि बापू की ओर पड़ी जो मानवता का त्राण कर रहा था –

मानव ने पाई देशकाल पर जय निरिश्चत

मानव के पास नहीं आज मानव का हृदय।

x x x

बापू तुम में आज लगे जग के लोचन,

तुम खोल नहीं जाओगे मानव के बन्धन।[103]

निराला बड़े लोगों, नेताओं का हृदय-परिवर्तन करवाकर देश का विकास करवाना चाहते हैं। उनका मानना है अमीरों का अतिरिक्त धन राष्ट्र के विकास में लगाने से नवनिर्माण को गति मिलेगी। जब तक सारी संपत्ति देश की नहीं होगी तब तक देशोद्धार कठिन है –

सारी सम्पत्ति देश की हो

सारी आपत्ति देश की बने।[104]

वे पूँजीपति वर्गो से भी चाहते हैं कि उनके पास जो पूँजी जमा हो उसे देश व देश के लोगों के नाम कर दो जिससे आर्थिक विषमता दूर हो –

''भेद कुल खुल जाए वह सूरत हमारे दिल में है,

देश को मिल जाए जो पूँजी तुम्हारी मिल में हो।''[105]

पंत भी मानव सेवा को ही सबसे बड़ी सेवा मानते हैं –

सेवा ही हो जीवन का व्रत, सेवा में ही हो जीवन रत,

x x x

जीव मात्र पर बरसे करुणा मानव उर में हर से करुणा।[106]

इस प्रकार हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त छायावाद के सभी कवियों के पटल पर है। गाँधी और उनकी शिक्षा द्वारा ही मानव का जीवन देशहित के लिए है। छायावादी कवियों का उद्देश्य भी मानवता की पहचान कराकर मानव की उन्नति करना है –

जागृत मानव सत्य बनाओ स्वप्नों को

रच मानवता नव, हो नवयुग का भोर।[107]

सत्याग्रह : गाँधी जी ने भारत को स्वतंत्र कराने के लिए विविध योजनाओं का निर्माण किया था। स्वतंत्रता प्राप्ति उनका लक्ष्य था और साधन थे सत्य और अहिंसा । गाँधी जी का यह

स्वातंत्र्य-यज्ञ पूर्ण रूप से अहिंसात्मक था। आत्म-शक्ति और सत्याग्रह ही इसे बल प्रदान करते थे। सत्याग्रह के रूप में आत्मबल को संगठित एवं संवर्द्धित करने का प्रयत्न उन्होंने किया और उसे राजनीतिक तथा सामाजिक क्रान्ति का रूप दिया था। वस्तुतः गाँधीवाद के आध्यात्मिक तत्त्व सत्य, अहिंसा का रचनात्मक रूप सत्याग्रह है। सत्याग्रह मानव की नैतिकता का मानदण्ड है और इसका लक्ष्य है सर्वोदय। सर्वोदय की साधना सत्याग्रह है और इसका साधक सत्याग्रही।

छायावाद के कवियों ने गाँधी जी के सत्याग्रह को तन-मन से स्वीकारा एवं सच्चे सत्याग्रही बने। माखनलाल चतुर्वेदी ने एक सत्याग्रही के रूप में स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लिया। वे कहते हैं –

हूँ राष्ट्रीय सभा का सैनिक छोटा सा अनुगामी हूँ।

x x x

आज अहिंसक असहकारिता है मेरे जीवन का धर्म।[108]

जब गाँधी जी जैसे सत्याग्रही हो तो समाज में नव मानवता का संचयन होगा–

सत्य अहिंसा से आलोकित होगा मानव का मन ?

x x x

प्रेम शक्ति से चिर निरस्त हो जाएगी पाशवता ?[109]

सत्याग्रही अपने देश के लिए मर-मिटने को तैयार रहते हैं –

यह बातें हैं याद प्रथम भारत है हृदय दुलारा देश

x x x x

हो जाओ आजाद मर मिटो दो दिन के मेहमान चलो।[110]

साम्प्रदायिक एकता : 'गाँधीवाद का शुद्ध आस्तिकवाद है। वह ईश्वर की साम्प्रदायिक धारणाओं से मुक्त है। गाँधी जी कबीर की भाँति राम-रहीम में भेद नहीं करते थे।

'ईश्वर-अल्लाह तेरे नाम' को स्वीकार कर उन्होंने आन्तरिक सत्ता की एकता में ही आस्था व्यक्त की है। वे सर्वान्तर्यामी ईश्वर को स्वीकार करते हुए कहते हैं – ईश्वर हमारे भीतर है और हमारे ऊपर तथा हम से परे भी है। वह न काबा में है और न काशी में वह हममें से हरेक के भीतर है।"[111] गाँधी जी साम्प्रदायिक वैमनस्य के विरोधी थे, वे साम्प्रदायिकता के नाम पर समाज में बढ़ रही द्वेष व फूट की भावना को दूर करना चाहते थे। उन्होंने हिन्दू व मुस्लिम दोनों को भारतीय समाज में समरस के रूप में देखा और उनके बीच की वैमनस्यता को दूर करने का प्रयत्न किया और वे उसमें सफल भी हुए। उन्होंने हिन्दू और मुसलमान को शरीर के दो हाथों की तरह माना। दोनों की सम्मिलित शक्ति निश्चित ही देश पर होने वाले समस्त बाह्य प्रतिकारों का प्रतिरोध सफलतापूर्वक कर सकती है। 'उत्तरा' में कवि पंत भी जाति तथा धर्मगत भेदों से खंडित होते हुए भारतीयों से आशा करते हैं –

जाति पांति देशों में खंडित पूजन
धर्म नीति के भेदों में बिखरे मन,
x x x
विचरे मुक्त हृदय अन्तः स्मित
प्रीति युक्त नारी नर।"[112]

गाँधी जी अपने को हिन्दुओं का हिन्दू और सनातनी कहते थे लेकिन उनका हिन्दू-धर्म, मानव-धर्म का पर्याय है। जिसमें सभी धार्मों के प्रति आदर भाव निहित है। उनका विश्वास था सभी धर्म एक ही सत्य की प्राप्ति के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। इस्लाम, ईसाई, हिन्दू आदि में ईश्वर के जो अनेक नाम हैं वे केवल गुण सूचक होते हैं। वे यह कदापि नहीं चाहते थे कि मत-मजहब या धर्म को लेकर समाज का बँटबारा हो। जब-जब साम्प्रदायिकता के नाम पर देश में दंगे-फसाद हुए गाँधी जी अत्यन्त दुःखी हुए। उनका दुःख उस समय और बढ़ जाता, जब धर्म के नाम पर लोग खून बहाने के लिए तैयार हो जाते। कवियों ने भी इस बुराई

का विरोध किया। उन्होंने जनता को जातीय अनेकता के दुष्परिणामों से अवगत कराकर उसे जातीय संगठन का संदेश दिया। माखनलाल चतुर्वेदी ने 'जीवित जोश' शीर्षक कविता में दोनों जातियों के सम्मिश्रण की सुन्दर कल्पना की है। उनका विश्वास है कि यदि दोनों जातियाँ हृदय से एक होकर देश की स्वतंत्रता का प्रण ले तो स्वतंत्रता देवी की प्राप्ति असंभव नहीं–

हिन्द माता की दोनों आँख, नाक को रखकर बीचोबीच।
अश्रु की उज्ज्वलधारा छोड़, प्रेम का पौधा दें सींच।

x x x

करेगें क्या यह वे जड़ जीव ? जिन्हें जननी जायों पर रोष,
तपस्वी रखते हैं टेक, मिलाकर सादर जीवित जोश।[113]

नवीन जी की मान्यता है कि जब-जब देश जाति, धर्म, मत, मजहब को भूल आगे बढ़ने को तैयार हुआ, तब-तब विपरीत शाक्तियाँ साम्प्रदायिक दंगे करा देती हैं। अंग्रेजों ने भी चालाकी से सम्प्रदाय का जहर फैलाकर हिन्दू, मुसलमानों को लड़वाया –

वे शहंशानियत के पुतले जिनका है सब दिन यही काम

x x x

अन्यों के प्रति जो रहा क्षोभ वह बदला आपस के रण में।[114]

पंत कहते हैं अभिनव-युग की प्राप्ति तभी संभव है जब जाति-पांति के बंधन टूट जाये–

जाति पाति की कड़ियाँ टूटे, मोह द्रोह मद मत्सर छूटे
जीवन के नव निर्झर फूटें, वैभव बने पराभव।[115]

गाँधी जी अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति को समझ चुके थे, इसलिए बापू ने हिन्दू और मुसलमान को शरीर की दो बाजुओं के समान माना था । उनका

विश्वास था कि दोनों बाँहों की सम्मिलित शक्ति से ही भारत स्वतंत्र हो सकता है। इन भावों को पंत ने काव्य पंक्तियों में प्रस्तुत किया –

हिन्दू-मुस्लिम युगल बाहुबल,
पदतल कर, नव जीवन का छल।[116]

स्वतंत्रता आंदोलन के समय अंग्रेजों की नीति के कारण ही साम्प्रदायिक कलह हुए। नवीन जी ने इस साम्प्रदायिकता का मार्मिक चित्र खींचा है। नवीन जी स्वयं साम्प्रदायिक दंगों के विरोधी थे –

मस्जिद और बाजे झगड़ पड़े लड़ पड़े ताजिए और पीपल
मजहबों, धर्मों में मतवाले भिड़ पड़े सैकड़ों दल के दल।[117]

इस साम्प्रदायिक दंगों का विरोध करते हुए कवि पंत भाईचारे एवं एकता का पाठ पढ़ाते है, और भारत में सम्प्रदायिक एकता स्वीकार करते हैं –

राम-रहीम बुद्ध ईसा का सुलभ एक-सा ध्यान वहाँ,
भिन्न-भिन्न सब संस्कृतियों के गुण गौरव का ज्ञान यहाँ।[118]

गाँधी जी ने सभी धर्मों का समान आदर किया। उनकी प्रार्थन सभा में सभी धर्मों की आराधना होती थी, वे चाहते थे कि धर्म के नाम पर निर्मित दीवारों को तोड़कर देश में धर्म के वास्तविक रूप का प्रकाश विकीर्ण हो। इसी उद्देश्य को कवि पंत भी मानते हैं –

तो अच्छा हो छोड़ दे अगर
हम हिन्दू-मुस्लिम और ईसाई कहलाना
मानव होकर रहे धरा पर,
जाति वर्ण धर्मों से ऊपर।[119]

इस प्रकार कवियों ने गाँधीवादी साम्प्रदायिक एकता से प्रभावित होकर उदार मानव-धर्म के उद्गार प्रकट किए और साम्प्रदायिक विद्वेष पर प्रहार कर हिन्दू-मुस्लिम एकता

के स्वप्न देखें हैं।

अस्पृश्यता निवारण : गाँधी जी अपने सुधार आन्दोलनों में अस्पृश्यता निवारण को प्रमुखता प्रदान की थी। तत्कालीन देश की सांस्कृतिक हलचल में अछूतोद्धार के प्रश्न पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। 'साम्प्रदायिक एवार्ड' के द्वारा भारतीय जनता को विभाजित कर अपनी सत्ता टिकाए रखने की सरकारी नीति ने गाँधी जी का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। उस समय जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय के नाम पर देशवासियों को बरगलाया जा रहा था। भोली-भाली जनता भी उनके इशारों पर कठपुतली की भाँति नाच रही थी –

बाजीगर ने डोरी खींची, पुतलियाँ काठ की नाच उठी,

x x x

हम खूब लड़े हैं, माँगा है, स्वत्वाधिकार मैंने ज्यों ही।[120]

लेकिन यह समस्या ज्यादा दिन नहीं टीकी क्योंकि गाँधी जी के पहल पर अछूतों की समस्या रानैतिक समस्या के रूप में प्रत्यक्ष हुई, इस समस्या को सुलझाने के लिए एक आन्दोलन की व्यापक योजना कार्यान्वित की –

छूआछुत का भूत भगाने,किया वृती ने दृढ़ आन्दोलन

हिले, द्विजों के रूद्ध ह्रदय पर, खुले मन्दिरों के जड़ प्रांगण।[121]

गाँधी जी ने हरिजनोद्धार के कार्यक्रमों को प्रमुखता दी थी। अस्पृश्य लोगों की समस्या को लेकर अनेक बार अनशन भी करने पड़े। इन अनशनों ने हिन्दू समाज का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया। फलतः अनेक कवियों ने भी समाज में व्याप्त इस कुरीति की घोर भर्त्सना की। एक ओर उन्होंने उन पिछड़ी हुई जातियों तथा अछूत कहे जाने वाले लोगों की दरिद्रता पर करूणापूर्ण आँसू बहाए हैं और दूसरी ओर प्रेरणादायक वाक्य रचना द्वारा देशवासियों से इन्हें छाती से लगा लेने के लिए आग्रह किया है। निराला का मानना है सभी मानव एक ही परमात्मा के विभिन्न रूप हैं। वे भेद रूपी पंक से विहीन सभी मानवों को एक ही

ईश्वर की संतान होने के समान मानते हैं –

मानव मानव से नहीं भिन्न, निश्चय ही स्वेत, कृष्ण अथवा

x x x

निकलता कमल जो मानव का, वह निष्कलंक हो कोई सर।[122]

गाँधी जी हरिजनों से भी आग्रह करते है वे अपनी कुरीतियों को त्याग कर उन्नति के मार्ग पर चलने का प्रयत्न करें। माखनलाल चतुर्वेदी इसी भावना को यूँ प्रकट करते हैं –

भंगी अत्याचार न सह तू
अपनी हारी हार न कर तू
आँसू बनकर व्यर्थ न सह तू।[123]

समाज में जाति भेदगत वैषम्य, कुरीतियों, कुप्रथाओं पर कवि निराला की अंतः वेदना ने दृष्टिपात किया था। समाज की इन विकृतियों पर उनके हृदय के रोष ने तीक्ष्ण कटाक्षों द्वारा निर्मम आघात किए है। वास्तव में "सामाजिक यथार्थ के जितने पहलू उनके काव्य में उभर सके हैं उतने अन्यत्र नहीं।"[124] वर्ण व्यवस्था निराला की दृष्टि में निकृष्टतम एवं हानिदायिनी रूढ़ि है। जाति-पांति, ऊँच-नीच का भेदभाव सामंती व्यवस्था की देन है। वर्ण, जाति भेद की विकृतियों के साथ पुरुष समाज की व्यभिचारी वृत्तियों को व्यंग्य द्वारा उजागर करते हैं ।[125]

रामकुमार वर्मा ने भी 'एकलव्य' महाकाव्य में निषादराज के पुत्र, एकलव्य का परिचय देते हुए, जात-पांत का खण्डन किया है। निषाद कुल में जन्म लेना यह विषाद की बात नहीं क्योंकि यह तो ईश्वर की विभूति है –

देव ! हैं निषाद किन्तु इसका विषाद क्या।

x x x

या कि चन्द्रिका की चारुता में चैत्र चन्द्र हो।[126]

कवि पंत मानव जाति से जाति, वर्ग, धर्म आदि भेदों से समन्वित होने को कहते हैं। जाति-पांति, छुआछूत की लड़ाई में संस्कृति का हनन होता है। नैतिकता एवं संस्कृति को बचाना है तो वर्ग-भेद मिटाना ही होगा। वर्ग भेद से अधिक सांस्कृतिक एकता अनिवार्य है–

आज बृहत सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित

x x x

मध्य युगों की नैतिकता को मानवता में विकसित।[127]

व्यक्ति जन्म से नहीं कर्म से ऊँचा बनता है। जिस एकलव्य को शूद्र कहकर द्रोण ने शिष्य बनाने से इंकार किया वे ही उसकी गुरु भक्ति देख स्वीकार करते हैं–

तुम विप्रहों हे शिष्य ! गुरु द्रोण शूद्र है।

हा, तुम्हारी गुरुता में गुरु हुआ लघु है।[128]

कवि पंत ने भी अनुभव किया कि अछूतोद्धार में तन्मय गाँधी छूतों को पवित्र करने वाले अछूत बन गए –

''जग पीड़ित छूतों से प्रभूत छू अमृत स्पर्श से हे अछूत !

तुमने पावन कर, मुक्त किए मृत संस्कृतियों के विकृत भूत ![129]

इस प्रकार कवियों द्वारा अस्पृश्यता निवारण में सहयोग प्रदान करने से परस्पर ऐक्य की भावना के प्रचार में सहायता मिली तथा राष्ट्रीय आन्दोलन को पर्याप्त बल मिला।

ग्रामोद्योग : महात्मा गाँधी ने ग्रामोद्योग पर बल दिया, क्योंकि किसान का धड़ है खेती और हाथ पैर है चरखा। चरखा अर्थात् कुटीर उद्योग धन्धे का प्रतीक। गाँधी जी ने मशीनीकरण का विरोध किया था। मशीनीकरण से कुटीर उद्योगों पर बुरा असर पड़ेगा तथा किसानों के खेत की सारी कमाई भी शहर चली जायेगी। स्वावलंबन को बढ़ाने के लिए स्वराज्य और ग्राम स्वराज्य की प्रतिष्ठा के लिए चरखे को विशेष महत्त्व दिया गया। प्राचीन काल से ही चरखे को विशेष महत्त्व दिया गया। प्राचीन काल से ही चरखे का प्रयोग भारत में प्रचलित रहा, गाँधी

जी ने इसे गौरव प्रदान किया –

शुद्ध अहिंसा का प्रतीक शुचि, खादी, कातें पूत सूत जन
तकली चरखे, करघे ढाँपें, नंगे भूखे भारत का तन।[130]

माखनलाल चतुर्वेदी ने 'मरण-त्योहार' कविता में चरखे को अहिंसा अस्त्र कहा है –

''घूमता चरखा लिए गिरि पर चढ़ो।
ले अहिंसा शस्त्र आगे ही बढ़ो।[131]

चरखा सभी चला सकते हैं। शिक्षित वर्ग भी इसे प्रीत्यर्थ अर्घ्य स्वरूप काटें। कातना एक यज्ञ है। अतएव सभी को इस यज्ञ में सहभागी होना चाहिए। ग्राम स्वराज्य और आर्थिक स्वतंत्रता के लिए चरखा एक अनिवार्य आवश्यकता है। यह लाखों नंगों-भूखों की जीविका का आधार है। पंत जी इस भावना को हृदयंगम कर ग्राम्या में चरखा की महत्ता प्रतिपादित करते हैं –

भ्रम, भ्रम भ्रम
धुन रूई निर्धनता को धुन, कात सूत जीवन पट लो बुन,

x x x

जीवन का सीधा सा नुसखा श्रम, श्रम, श्रम,
कहता चरखा प्रजातंत्र से नम, नम नम।[132]

प्रसाद जी ने भी चरखा एवं तकली को अपने काव्य में स्थान दिया है। श्रद्धा गाँधी के तकली व चरखे के स्वर में स्वर मिलाती है –

मैं बैठी गाती हूँ तकली के, प्रतिवर्तन में स्वर विभोर -
चला री तकली धीरे-धीरे, प्रिय गये खेलने को अहेर।[133]

पंत जी लोकायतन में चरखे द्वारा गृह उद्योग की उन्नति का वर्णन करते हैं –

हरि ने तकली चरखे करघे, जुटा, सिरी-कर से संचालित

खोला गृह उद्योग शिविर था, स्त्री जनके जीवन विकास हित।[134]

माखनलाल चतुर्वेदी ने कुलवधू के चरखे का गीत लिखा –

इक डोरा-सा उठता जी पर, इक डोरा उठता पूनी पर

x x x

टूट न जाये तान, चरखे गा दे जी के गान।[135]

गाँधी जी द्वारा प्रचारित चरखे और खादी की भावना मौलिक परिवर्तन की सूचक थी। वे इस बात को भली-भाँति जानते थे कि सच्चा इन्कलाब तो तभी होगा जब आर्थिक समस्या का निराकरण होगा। ग्रामोद्योग द्वारा आर्थिक संकट से उबरा जा सकता है। तभी गाँधी चरखे को स्वावलम्बन का स्तम्भ और ग्रामोद्योग का सूर्य कहा। कामायनी की श्रद्धा भी बीज संग्रह व तकली चलाने में ही सो गई –

बीजों का संग्रह और उधर, चलती है तकली भरा गी

सब कुछ लेकर बैठी है वह, मेरा अस्तित्व हुआ अतीत।[136]

पंत जी ने बापू के जीवन दर्शन में चरखे को मानवीय कला कौशल का केन्द्र बिन्दु माना है। गाँधी जी का खादी (ग्राम उद्योग) ने विद्युत शक्ति के समान भारतीय जनता में स्फूर्ति का संचार कर देश की राष्ट्रीयता में अमिट स्थान प्राप्त किया। समय तथा परिस्थितियों के अनुसार देश के आर्थिक पहलू को सुधारने का तथा समस्या को हल करने का यही प्रयास सम्भव था, जो निश्चय ही सफल सिद्ध हुआ और आज भी उसकी आवश्यकता किसी प्रकार कम नहीं हुई है। आज भी देश के गाँधीवादी खादी ही धारण करते हैं।

गाँवों की सफाई :

भारत माता, ग्राम वासिनी !

x x x

शील मूर्ति, सुख दुख उदासिनी ![137]

ये पंक्तियाँ पंत जी की हैं, लेकिन गाँधी जी के सपनों का गाँव ऐसा ही था। वे गाँवों को भगवान की रचना मानते थे, इसलिए वे चाहते थे की शिक्षित लोग भगवान के बनाये इन गाँवों में जायें और वहाँ की जनता की सेवा करें। गाँधी ने स्वयं उक्त वचन पर अमल किया और गाँव को ही अपना निवास बनाया। अहिंसक समाज की रचना में ग्राम सेवा और ग्रामोद्योग को प्रमुखता दी। नगर की विषाक्त ग्राम सभ्यता में उन्होंने अकल्याण देखा था। ग्राम-संस्कृति और ग्राम-सभ्यता को ही वे अहिंसक सभ्यता समझते थे। निराला का काव्य में ग्राम्य जीवन की सरलता, लहलहाते खेत एवं फसलों की भीनी सुगंध से परिपूर्ण उन्मुक्त वातावरण आदर्श गाँव की छवि प्रकट करता है –

सरसों के पीले पुष्पों की, साड़ी पहने

अलसी के नीले फूलों की, रेखा जिसमें।[138]

लेकिन यही आदर्श गाँव शहरों की चपेट में आ गए। खुशहाल गाँव देखते ही देखते बदहाली में परिवर्तित हो गए। इसे देख कवियों का हृदय छलनी हुआ। कविवर सुमित्रानंदन पंत ने भी ग्रामीणों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने वाली कृति 'ग्राम्या' की रचना की। ग्राम कवि, ग्राम, ग्राम दृष्टि, ग्रामचित्र, ग्रामयुवती, गाँव के लड़के, धोवियों का नृत्य, ग्राम वधू, चमार का नृत्य, कहारों का रूढ़ नृत्य, ग्राम देवता, आदि अनेक कविताओं में ग्राम के अच्छे एवं बुरे पक्ष को चित्रित किया है। भारतीय ग्रामों की दयनीय दशा का चित्रण करते हुए लिखते हैं –

वृहद ग्रंथ मानव जीवन का, काल ध्वंस से कवलित,

x x x

संस्कृतियों की ह्रास-वृद्धि जन शोषण से रेखांकित।[139]

गाँवों की समस्या भारत की समस्या है। भारत तो ग्रामीणों का देश है और जब तक ग्रामवासियों का जीवन स्तर ऊँचा नहीं होता, तब तक देश में आर्थिक सम्पन्नता एवं

राजनैतिक चेतना सम्भव नहीं हो सकती। गाँव के शोषण ने वहाँ के रूप को विकृत कर दिया है। जहाँ हरियाली छायी होती वहाँ से हरियाली खो गई है –

चिड़िया चहक-चहक उठती हैं उषा की लख लाली, आली !

किन्तु लाल की लाली से यह जी की डाल नहीं मतवाली !

अब तो दूर गई हरियाली।[140]

जहाँ खुशहाली पूर्ण जीवन हुआ करता उन्हीं गाँव का दृश्य नरक तुल्य दिखता है --

जहाँ दैन्य जर्जर असंख्य जन पशु-जघन्य क्षण करते यापन

x x x

कँप कँप उठते उसके उर की व्यथा विमूर्छित वीणा के स्वर।[141]

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जीवन ग्राम में ही व्यतीत हुआ । उन्होंने ग्राम के स्वच्छ चित्र को काव्य में उकेरा –

तुम पृथ्वी के सुवन, अरे तुम ओ मृतिका प्रसून निरे,

x x x

तुम हो मक्का, ज्वार, चनों के संग-संग संभूत निरे।[142]

लोग शहर की तड़क-भड़क से प्रभावित होकर गाँवों से पलायन कर देते हैं, उनके अन्दर गाँव के प्रति ललक तो है लेकिन कृत्रिमता व दिखाते के कारण यह स्वीकार नहीं कर पाते –

ओ ग्रामीण आन पहुँचे हो, आज ग्राम की छाया में

x x x

बनो प्रकृत नर, रहो न हठ कर कृत्रिमता की माया में।[143]

गाँधी ने गाँवों को पवित्र तीर्थ माना। गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने भी गाँवों की ओर जाने का आन्दोलन चलाकर, वहाँ के कृषकों को तीर्थराज के पद पर प्रतिष्ठित किया ।

गाँधी के 'सेवा ग्राम' में अनेकोनेक अनुयायियों ने जीवन यापन किया। ग्राम सुधार द्वारा ही देश का सुधार संभव है।

स्त्रियों की उन्नति : गाँधी जी ने नारी को समाज में समुचित स्थान प्रदान कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। उन्होंने पुरुषों के साथ-साथ नारियों को भी अपने स्वतंत्रता संग्राम में अग्रिम पंक्ति में खड़ा कर दिया। जहाँ मध्यकाल में नारी को घर की चहारदीवारी में कैद कर उसे भोग्या माना गया वहीं पुनर्जागरण काल में नारी को मुक्त व पुरुष के समान अधिकार दिलवाने के प्रयास हुए। महात्मा गाँधी ने भी नारियों के अस्तित्व को समाजोन्मुख किया। हजारों नारियों ने स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया एवं अपने आप को सक्षम सिद्ध किया।

गाँधीवादी आदर्शों से अभिभूत हो पंत ने भी ग्राम्या में नारी के भोग्या रूप का विरोध किया तथा उसे घर की चाहरदीवारी तथा दासत्व से मुक्त कराने की आवाज उठाई –

'योनि नहीं है रे नारी वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अवसित।[144]

नारी को नर के तुल्य ही स्वतंत्र करके परस्पर प्रीति युक्त रहना चाहिए। ऐसी भावना पंत जी की 'स्वर्णधूलि' में भी व्यक्त है –

''छोड़ नहीं सकते यदि जन
नारी मोह, पुरुष की दासी उसे बनाना,
x x x
स्नेह युक्त रहे परस्पर नारी
नारी हो स्वतंत्र जैसे नर।[145]

नारी पर हुए अन्याय व अत्याचार से बापू का हृदय छलनी हुआ था। बाल-विधवा पर हो रहे शोषण का उन्होंने विरोध किया। वे बाल-विधवा विवाह को उचित मानते थे। उनका स्पष्ट कथन था कि एक भी बाल-विधवा अविवाहित हो तो इस अन्याय को मिटाना जरूरी है ।

जोर-जबरदस्ती करके वैधव्यपूर्ण जीवन यापन करवाना दूषण है। उम्र की पहुँची हुई स्त्री विधवा हो जाने पर फिर विवाह न करे तो ठीक है लेकिन जबरदस्ती एक छोटी बाल-विधवा को वैधव्य का जीवन-यापन के लिए दबाब डालना अन्याय है। निराला जी ने वैधव्य की दारूण यातना में तड़पाती एक विधवा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है–

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीप शिखा सी शान्त भाव में लीन।
X X X
यह दुःख वह जिसका नहीं कुछ छोर है।
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है।[146]

नारी तो भारत में शक्ति की अवतार मानी जाती है। गाँधी जी ने उस सुषुप्त शक्ति को पुनः जगाया है। यह जागृत नारी श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान के स्वरों में बोल उठती है–

सबल, पुरुष यदि भीरू बने तो हमको दे वरदान सखी,
अबलाएँ उठ पड़े देश में करे युद्ध घमसान सखी।[147]

नारी ने भी अपने अस्तित्व को पहचाना। नगर-नगर, ग्राम-ग्राम में नारी चेतना की लहर व्याप्त होने लगी। उनकी पराधीनता दासता की बेड़ियाँ टूटने लगीं। नारी ने सदियों बाद अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार किया। पंत जी का इसी की ओर संकेत है –

मैं मानवी आज जन धात्री मानव सहचरि जीवन धात्री,
भीत न होओ प्रिय नारी, लेती जागृति की अंगड़ाई।[148]

सदियों की पाश्विकता से पिसती हुई नारी अंगड़ाई लेकर अपने अधिकारों के प्रति सतर्क व सजग हो गयी । उसने अपने अधिकार के लिए शंखनाद करना प्रारंभ कर दिया । महाकवि निराला ने इसी शंखनाद हेतु नारी को अपने काव्य के इन पंक्तियों के माध्यम से उत्प्रेरित व उत्तेजित किया है –

तोड़ो तोड़ो तोड़ो कारा

पत्थर की निकली फिर गंगा जल धारा।[149]

इन कोटि-कोटि भारत लक्ष्मियों ने ब्रह्माण्ड को दहलाने की शपथ ही ले ली। भारत माँ की ये लाडली बेटियाँ उसकी बेड़ियाँ काटने को कटिबद्ध हो गयी –

पन्द्रह कोटि असहयोगिनियाँ, दहला दे ब्रह्माण्ड सखी।

X X X

भारत माँ की बेड़ी काटे, होवे बेड़ा पार सखी।[150]

जो नारी परतंत्र है या जिसने भी उसे बंधक बनाकर रखा है पंत नारी को मुक्त करने को कहते हैं –

मुक्त करो नारी को मानव, चिर बन्दिनी नारी को।

X X X

पुरुष वासना की सीमा से, पीड़ित नारी, जीवन।[151]

नारी के बंदिनी रूप को देख पंत दुखी हुए तथा अपने हृदयोद्‌गार को इस प्रकार व्यक्त किया –

वह नरों की लालसा शोभा सज्जा से निर्मित

X X X

वह अरृश्य, अस्पृश्य विश्व को गृह पशु सी जीवित।[152]

बापू की दृष्टि में नारी शील और सद्‌गुणों की मूर्ति होनी चाहिए और गाँधी युग के लेखकों, कवियों ने अपनी आदर्शवादी कृतियों में ऐसी नारी को ही प्रतिष्ठित किया है। संसार के क्षेत्र में काम करने पर भी आदर्श नारी का प्रधान क्षेत्र गृह ही है। पाश्चात्य अंधानुकरण के प्रभाव स्वरूप भारतीय नारी ने जिस शिक्षा को ग्रहण किया उससे तो विकृति ही बढ़ी है। बापू इस आधुनिकता के पक्ष में कदापि नहीं थे । पंत जी ने ग्राम्या में आधुनिक बनने के फेर में

नारीत्व की उपेक्षा करने वाली नारियों को चेतावनी दी है तथा उनकी शोभा-वृद्धि के उपादानों की ओर इंगित भी किया है –

शिक्षित तुम संस्कृत युग के प्रत्याभासों में पोषित,
समकक्ष नरों की तुम निद्वन्द्व भूल कर गर्वित,

X X X

तुम सबकुछ हो फूल, लहर, तितली, विहंगी, मार्जारी।
आधुनिक तुम नहीं अगर कुछ सिर्फ नहीं तुम नारी।[153]

तप, संयम, त्याग ही नारी जाति के आभूषण हैं। इनसे विहीन होकर नारी अपना ही आत्मघात करेगी। नारी को नर के कंधे से कंधा मिलाकर खड़ा तो होना है पर नर के साथ होड़ लगानी उचित नहीं। श्री नवीन जी नर-नारी के पारस्परिक संबंध को इस रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं –

नर यदि है खर दोपहरी, नारी है शीतल छाया,

X X X

तभी समझिए कि यह हुआ है हृदय परिपूर्ण एक रस से।[154]

अर्थात् नारी अपना पूर्ण स्वप्न प्राप्त करे। उसे मानवी का गौरव प्राप्त हो। उसे समाज में विधवा या वैश्या जैसे कलंकपूर्ण या अपमानित जीवन को व्यतीत न करना पड़े। वह देवी, माँ, सहचरी आदि सम्मानपूर्ण रूपों को धारण कर सीता, सावित्री की गरिमा को प्राप्त करे। यही गाँधी के अनुयायियों की अभिलाषा है, जिसे उन्होंने अपने काव्य द्वारा अभिव्यक्त किया। नारी का स्थान ऊँचा था एवं ऊँचा ही बना रहे। वह अवहेलित न हो, यही गाँधीवाद का उद्देश्य है।

आर्थिक समानता : बापू को देश की आर्थिक विषमाता असह्य थी। दरिद्रनारायण बापू भारत में आर्थिक अभ्यूदय चाहते थे । एक ओर धन का एकत्र हो जाना तथा दूसरी ओर लाखों का

भूखा मरना वे कभी देख नहीं सकते थे। वे इसे पाप और अन्याय समझते थे। उनके रामराज्य में आर्थिक शोषण का कोई स्थान नहीं है। ''उनकी दृष्टि में आज की शोषक सभ्यता चांडल सभ्यता है।''[155] ''गरीबी दैवी अभिशाप नहीं, मानवीय सृष्टि है। इसे दूर करने का भार शासन और समाज दोनों पर है। गाँधी जी परिवर्तन और प्रगति के विरोधी नहीं, पर चाहते है कि विकास और प्रगति की प्रक्रिया में स्थायी मूल्यों की रक्षा होनी चाहिए। गाँधी जी की आर्थिक नीति इन मूल्यों के निकट थी। इसलिए अनेक कवियों ने गाँधी की भावात्मक अर्थनीति से प्रभावित होकर काव्य रचना की। डॉ. भेलानाथ के अनुसार कुछ कवियों ने गाँधी के आर्थिक विचारों से प्रभावित जीवन का चित्रण भी किया है।''[156]

अमीरों ने आर्थिक विषमताओं को इतना उग्र बना दिया है कि कवि का करूण भरा ह्रदय इस दृश्य को देखकर द्रवीभूत हो उठता है –

लपक चाटते जूठे पत्ते जिस दिन देखा मैंने देखा नर को,

x x x

जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का।[157]

निराला विदेशी सत्ताधारियों एवं देश के जमींदार वर्ग की स्वार्थी मनोवृत्तियों का अंकन कराते हुए जनता को वास्तविका से परिचित कराते हैं तथा उसे अपनी सामाजिक एवं आर्थिक दशा पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं –

बानिज के राज ने लक्ष्मी को हर लिया,

टापू में ले जाकर रखा और कैद किया

x x x

जोत में जल छिपा,

धोखा छिपा, छल छिपा।[158]

आर्थिक असमानता ने ही समाज को बाँटा है । जहाँ धनी घरों में श्वानों को

दूध-वस्त्र मिलते हैं लेकिन यहाँ लोग दाने-दाने को मोहताज हैं। भिक्षुक का हृदय विदारक चित्रण निराला ने किया है –

पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक, चल रहा लकुटिया टेक ।

x x x

दो टूक कलेजे को करता, पछताता पथ पर आता।''[159]

पंत भी यह स्वीकारते हैं कि शहर एवं गाँव की मानसिकता ने इस विषमता को बढ़ाया है। गाँव के लोग मेहनत मजदूरी करने के बाद भी निर्धन हैं।[160] निराला का मानना है जब बड़े धनी-मानी लोग धन मान छोड़ेगे तभी यह विषमाता दूर होगी –

बड़े बड़े आदमी धन मान छोड़ेंगे

तभी देश मुक्त है।[161]

सामाजिक तथा मानवीय कल्याण को दृष्टि में रखकर ही गाँधी जी ने एक ऐसे आर्थिक दर्शन का प्रतिपादन किया, जो आधुनिक युग के लिए तथा मुख्यतः भारतीय समाज के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। आर्थिक समानता से ही देश सुदृढ़ एवं सशक्त हो सकता है।

किसानों का संगठान : भारत कृषि प्रधान देश है तो यह किसानों का देश भी है। कृषक समस्या भारत की प्रमुख समस्या है। अंग्रेजी राज ने कृषकों का भरपूर शोषण कर कृषि-उद्योग को नष्टप्राय कर दिया। गाँधी जी को किसानों के शोषण पर अत्यधिक रोष था। भूमि जोतने वालों को वे अधिकार दिलाने के पक्षपाति थे। बाबू गुलाबराय के अनुसार तो ''महात्मा जी ने स्वराज्य की इमारत के निर्माता किसान को ही माना है।[162] गाँधी जी ने कृषि-उद्योग को भारतवर्ष का प्राण माना। खाद्य की दृष्टि से स्वावलंबी होने के कारण हमारा देश भयंकर लूटमार के बावजूद जीवित रहा। उन्होंने किसानों के माध्यम से भारत की आत्मा को समझने का प्रयत्न किया था और देश की वास्तविक उन्नति हेतु किसानोद्धार की प्रेरणा दी।

गाँधी युगीन कवियों में अधिकांश कवियों का जन्म गाँव में हुआ । वहाँ के कृषिकों

को उन्होंने समीप से जाना। कृषक और कृषि की दशा काव्य का विषय बनाने में युग की चेतना का महान योगदान था। वे जानते थे कि भारत को शान्तिपूर्ण सच्ची तरक्की करनी है तो पैसे वाले यह समझे कि किसानों में भी आत्मा है। आधुनिक युग में धनिकों की शान और फिजूलखर्ची तथा किसानों की गरीबी के बीच कोई श्रृंखला नहीं है। गाँधी जी भी चाहते थे किसानों को जागरूक करना तथा दूसरे उन्हें अधिकाधिक सहायता देकर ग्रामविकास में उत्तरदायी बनाना साथ ही उन्हें सरलता व सादगीपूर्ण जीवन का अनुयायी बनाना। कवियों ने दोनों ही पद्धतियों का अनुसरण किया है। किसानों को देश के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका के प्रति एहसास कराया है ।

गाँधी जी द्वारा संचालित चंपारन खेड़ा और बारडोली के आन्दोलन कृषकों की शक्ति के प्रतीक है। ये किसान सीधे-सादे भोले-भाले हैं जो परिश्रम में सतत लग्न है —

खेत जोतकर घर आए हैं, बैलों के कंधे पर माची

पिता गए गाँवों के गौडे, माता-घर लड़के धाए हैं।[163]

गाँधी जी का भारत देहातों में बसता था। सुमित्रानंदन पंत ने इन देहातों, ग्रामों, किसानों का सजीव चित्रण 'ग्राम्या' रचना में किया है। उनकी 'ग्राम्या' भारत के दीन-हीन किसानों को ही समर्पित हैं। वह किसान जो भारत का भरण-पोषण करता था। आज उत्पीड़न के कारण दयनीय बना हुआ है —

वह स्वाधीन किसान रहा,

अभिमान भरा आँखों में इसका।

x x x

हँसती थी उसके जीवन की

हरियाली जिनके तृन-तृन से।[164]

किसानों के शोषण एवं उनकी विपन्न स्थिति को देख बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने

ग्राम्य जीवन की दुर्दशा का चित्रण अपनी अनेक कविताओं में किया है। वे किसानों से आग्रह करते हुए लिखते हैं कि कृषि की पुरातन विधियाँ त्यागकर सामूहिक कृषि को अपनाये। उस सामूहिक कृषि से निश्चय अटल प्रगति होगी –

बोओ, सींचो और निराओ, पर, जब कौवे फीर उड़ाओ,

तब तुम प्रगति-गीत मिल गाओ, सामूहिक कृषि ध्येय अतल।[165]

देश के गाँव के सपूत जिनसे देश की श्री वृद्धि होती है, ऐसे किसान यदि संगठित हो रहे कार्य करें तो अवश्य ही देश की उन्नति होगी –

उसे चाहिए लौह संगठन, सुन्दर तन श्रद्धा दीपित मन।

x x x

लोक कलामयि, रस विलासिनी।[166]

इस प्रकार कृषकों के शोषण पर रोष, कृषकोद्धार कृषि की वृद्धि आदि के वर्णन में गाँधीवादी दृष्टिकोण की प्रधानता मिलती है।

गाँधीवादी विचारधारा के व्यापक प्रभाव के फलस्वरूप छायावाद युग में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति विश्व मानवतावाद की भूमिका पर हुई। गाँधीवाद के प्रभाव से छायावाद आध्यात्मिक बना। कठोरता के प्रति कोमलता की प्रतिक्रिया वाली भावना गाँधीवाद से ही छायावाद को मिली।

संदर्भ :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 533
2. कांग्रेस का इतिहास : डॉ. बी. पट्टाभिसीतारमैय्या, पृ. 131
3. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ 440
4. माखनलाल चतुर्वेदी : सं. हरिकृष्ण प्रेमी, पृ. 7
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 432
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 539
7. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ 638
8. प्रसाद का काव्य : डॉ. प्रेमशंकर, पृ. 24
9. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ 209
10. संगम : 18 फरवरी 1951,पृ. 41
11. प्रसाद का काव्य : डॉ. प्रेमशंकर, पृ. 34
12. जयशंकर प्रसाद : नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 34
13. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 250
14. प्रसाद का काव्य : डॉ. प्रेमशंकर, पृ. 324
15. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 257
16. जागरण : 31 अक्टूबर 1932
17. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ 501
18. कौमुदी (डॉ. रामकुमार वर्मा विशेषांक) : आचार्य नंददुलारे वाजपेयी।
19. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ 305
20. हिन्दी के प्रतिनिध साहित्यकार : सिहासन राय 'सिद्धेश', पृ. 153
21. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ 640
22. पंत और उनका गुंजन : श्री लक्ष्मीनारायण टंडन, पृ. 1
23. वही, पृ. 2
24. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 260
25. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 550
26. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ : डॉ. शिवकुमार शर्मा, 514
27. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 646
28. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 550
29. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 261
30. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 657
31. गाँधी के संस्मरण : पंत प्रसारिका (अंक - 4) 1956, पृ. 51
32. वही, पृ. 46

33. जीवन साहित्य : (जनवरी, 1956) पृ. 258
34. सुमित्रानंदन पंत : डॉ नगेन्द्र, पृ. 177
35. युगवाणी : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 19
36. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ 435
37. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 553
38. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 263
39. आधुनिक कवि (भाग - 1) : महादेवी वर्मा, पृ. 35
40. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 616
41. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : डॉ. शिवकुमार शर्मा, पृ 420
42. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 265
43. वही, पृ. 265
44. वही, पृ. 267
45. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ 380
46. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : डॉ. शिवकुमार शर्मा, पृ 527
47. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 539
48. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ 650
49. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 257
50. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 547
51. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : डॉ. शिवकुमार शर्मा, पृ 519
52. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 25
53. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ 83
54. आधुनिक हिन्दी कविता में गाँधीवाद : डॉ. मिताली भट्टाचार्जी, पृ. 238
55. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : डॉ. शिवकुमार शर्मा, पृ. 513
56. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ 83
57. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 631
58. आधुनिक साहित्य : नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 91
59. प्रसाद का काव्य : डॉ. प्रेमशंकर, पृ. 319
60. जयशंकर प्रसाद : नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 35
61. प्रसाद का काव्य : डॉ. प्रेमशंकर, पृ. 323
62. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 547
63. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 640
64. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ 31
65. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 256
66. प्रसाद का काव्य : डॉ. प्रेमशंकर, पृ. 134

67. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 627
68. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 641
69. आधुनिक हिन्दी कवि में गाँधीवाद : डॉ. मिताली भट्टाचार्जी, पृ. 249
70. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 641
71. पंत और गुंजन : श्री लक्ष्मीनारायण टंडन, पृ. 7
72. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 331
73. वही, पृ. 115
74. वही, पृ. 307
75. विचार के क्षण : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 48
76. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 407
77. युगपथ (बापू के प्रति) : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 57
78. ग्राम्या : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 53
79. उर्मिला : बालकृष्ण शर्मा, नवीन, पृ. 526
80. स्वर्णधूलि : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 120
81. हम विषपायी जनम के : बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृ. 80
82. स्वर्णधूलि : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 13
83. आधुनिक कवि (2) : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 99
84. माखनलाल चतुर्वेदी : सं. हरिकृष्ण प्रेमी, पृ. 82
85. हम विषपायी जनम के : बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृ. 67
86. गाँधी काव्य कुसुमांजलि : सं नर्मदा प्रसाद ,पृ. 152
87. चिदंबरा : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 186
88. स्वर्णधूलि : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 19
89. मुकुल : सुभद्राकुमारी चौहान, पृ. 114
90. कामायनी (ईर्ष्या सर्ग) : जयशंकर प्रसाद, पृ. 146
91. माखनलाल चतुर्वेदी : सं. हरिकृष्ण प्रेमी, पृ. 83
92. आधुनिक कवि (2) : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 99
93. मुकुल : सुभद्राकुमारी चौहान, पृ. 106
94. मुक्तियज्ञ : सुमित्रानंदन पंत,, पृ. 36
95. वही, पृ. 127
96. हिमकिरीहिनी : माखनलाल चतुर्वेदी, पृ. 74
97. आधुनिक कवि (2) : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 60
98. युगवाणी : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 22
99. एकलव्य : डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 278

100. कामायनी : जयशंकर प्रसाद, पृ. 132
101. उर्मिला : बालकृष्ण शर्मा, 'नवीन' , पृ. 558
102. एकलव्य : डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 177
103. जीवन साहित्य : सुमित्रानंदन पंत, (जनवरी 1965), पृ. 258
104. रागविराग : सं. रामविलास शर्मा, पृ. 158
105. बेला : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पृ. 59
106. स्वर्णधूलि : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 151
107. युगवाणी : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 22
108. माखनलाल चतुर्वेदी : सं. हरिकृष्ण प्रेमी, पृ. 82
109. आधुनिक कवि (2) : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 60
110. माखनलाल चतुर्वेदी : सं. हरिकृष्ण प्रेमी, पृ. 86
111. गाँधी व्यक्तित्व : विचार और प्रभाव : पृ. 502
112. उत्तरा : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 17
113. माता : माखनलाल चतुर्वेदी, पृ. 77
114. बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' : सं. पवन कुमार मिश्र, पृ. 48
115. स्वर्णधूलि : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 42
116. युगपथ : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 86
117. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : सं. पवन कुमार मिश्र, पृ. 48
118. मंगलघट : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 63
119. स्वणधूलि : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 31
120. बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' : सं. पवन कुमार मिश्र, पृ. 48
121. मुक्तियज्ञ : सुमित्रानंदन पंत, पृ. 43
122 अनामिका : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पृ. 23
123. हिमकिरीटिनी : माखनलाल चतुर्वेदी, पृ. 41
124. निराला का काव्य : जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, पृ 138
125. नये पत्ते : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पृ. 46
126. आधुनिक कवि (3) : रामकुमार वर्मा, पृ. 81
127. आधुनिक कवि (1) : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 76
128. एकलव्य : रामकुमार वर्मा, पृ. 298
129. आधुनिक कवि (1) : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 126
130. लोकायतन : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 126
131. हिमकिरीटिनी : माखनलाल चतुर्वेदी, पृ. 28
132. ग्राम्या : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 50

133. कामायनी : जयशंकर प्रसाद, पृ. 158
134. लोकायतन : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 67
135. समर्पण : माखनलाला चतुर्वेदी, पृ. 67
136. कामायनी : जयशंकर प्रसाद, पृ. 125
137. आधुनिक कवि (2) : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 70
138. नए पत्ते : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पृ. 72
139. ग्राम्य : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 14
140. माखनलाल चतुर्वेदी : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ. 40
141. आधुनिक कवि (2) : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 66
142. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : सं. पवन कुमार मिश्र, पृ. 84
143. वही, पृ. 85
144. ग्राम्या : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 85
145. स्वर्णधूलि : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 32
146. परिमल : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पृ. 128
147. मुकुल : सुभद्रा कुमारी चौहान, पृ. 92
148. स्वर्णधूलि : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 147
149. अनामिका : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पृ. 137
150. मुकुल : सुभद्रा कुमारी चौहान, पृ. 94
151. युगवाणी : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 46
152. ग्राम्या : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 85
153. वहि, पृ. 90
154. उर्मिला : बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृ. 612
155. हिन्द स्वराज्य : महात्मा गाँधी, पृ. 99
156. आधुनिक हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि : डॉ. भोलानाथ, पृ. 250
157. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : सं. पवन कुमार मिश्र, पृ. 87
158. नए पत्ते : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पृ. 30
159. परिमल : वही, पृ. 103
160. आधुनिक काव्य (2) : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 70
161. नए पत्ते : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पृ. 30
162. गाँधीय मार्ग : पृ. 89
163. आराधना : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पृ. 86
164. आधुनिक काव्य (2) : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 67
165. क्वासी : बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृ. 15
166. आधुनिक काव्य (2) सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 71

पंचम अध्याय
प्रगतिवादी युग में गाँधीवादी चेतना

पंचम अध्याय

प्रगतिवादी युग में गाँधीवादी चेतना

प्रगतिवाद का आरम्भ सन् 1036 ई. माना जाता है। उन्नीस सौ उन्तालीस के आस-पास की अवधि में निर्मित सामाजिक चेतना और यथार्थवादी प्रवृत्ति के कारण यह युग प्रगतिवादी युग कहलाया। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं – "प्रगतिवादी काव्य की संज्ञा उस काव्य को दी गई जो छायावाद के समाप्ति काल में 1936 ई. के आसपास से सामाजिक चेतना को लेकर निर्मित होना आरम्भ हुआ। इसके शब्दार्थ से इसके स्वरूप को समझने में भ्रान्ति होती रही है। इसलिए यही समझना चाहिए कि यह नाम उस काव्यधारा का है जो मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भावबोध को अपना लक्ष्य बनाकर चली।"[1] डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार –"हिन्दी-साहित्य में प्रगतिवादी चेतना का उदय तत्कालीन युग की विचारधारा से प्रेरणा पाकर हुआ।"[2] डॉ. रामवीर सिंह लिखते हैं – "प्रगतिवाद - इसे सामाजिक यथार्थ भी कहा जाता है। छायावाद के पतन के बाद प्रगतिवाद का उदय एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी। छायावाद मूलतः एक मानवतावादी चेतना का प्रतिनिधि था। किन्तु धीरे-धीरे वह अहं केन्द्रित बनता गया। उसमें जीवनोपयोगी तत्त्वों के स्थान पर निषेधात्मक तत्त्वों का प्रयोग अधिक होने लगा। निराशा, पराजय, वेदना, पीड़ा, जीवन का निषेध, मृत्यु की उपासना आदि तत्त्व छायावाद में इतनी प्रचुर मात्रा में व्याप्त हो गए कि जनता को इस कविता से घृणा सही हो गयी। इस अर्थहीन निषेध की प्रतिक्रिया होना अनिवार्य था। इस परिस्थिति में प्रगतिवाद एक नयी आशा और विश्वास के संदेशवाहक के रूप में सामने आया। प्रगतिवाद एक नवीन सामाजिक दर्शन था। वह व्यक्ति के स्थान पर समाज को अधिक महत्त्व होता था।"[3]

इस समय भारतीय राजनीति में यदि एक तरफ गाँधीवाद जोर पकड़ रहा था तो दूसरी ओर उस पर कांग्रेस आन्दोलनों का प्रभाव प्रबल । सन् 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट

पार्टी का जन्म हुआ। विभिन्न आन्दोलन हो रहे थे। कई हिंसात्मक आन्दोलनों को गाँधी जी ने बीच में ही रोक दिया। इसकी प्रतिक्रिया जनता में हो रही थी। राजनीतिक दासता के बीच एक ओर पूँजीवादी शक्ति बढ़ रही थी तो दूसरी ओर गरीबी, अशिक्षा, युद्ध, बेकारी, आर्थिक विषमता और अकाल से संत्रस्त जनता पर कम्यूनिज्म का प्रभाव पड़ रहा था। इसके अतिरिक्त अकाल और युद्ध की विभीषिकाएँ भी देश को नष्ट कर रही थीं। द्वितीय विश्वयुद्ध एवं बंगला के भीषण अकाल से देश बरबादी के कगार पर था।

भारतीय जनता तब पराधीनता के बंधन में जकड़ी हुई थी। इस राजनैतिक दासता के साथ-साथ सामाजिक तथा आर्थिक शोषण का भी अत्याचार सहना पड़ रहा था। इस विकट संकट के समय प्रगतिवाद का नवीन दर्शन भारतीय जनता के लिए आशा की ज्योति थी। इस कारण भारतीय साहित्यकारों ने प्रगतिवाद का स्वागत किया।

प्रगतिवाद के प्रचार में प्रगतिशील लेखक संघ की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। प्रगतिशील लेखक संघ एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है। इसी से प्रेरणा लेकर सन् 1936 में भारत में भी इसकी स्थापना हुई। इसका प्रथम अधिवेशन मुंशी प्रेमचंद के सभापतित्व में लखनऊ में सम्पन्न हुआ। धीरे-धीरे हिन्दी-साहित्य में साम्यवादी विचारों का प्रचार होने लगा। मार्क्सवादी दर्शन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित यह साम्यवादी विचारधारा को लेकर प्रस्तुत हुआ। डॉ. नगेन्द्र का मत है – "प्रगतिवाद साम्यवाद की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति है।"[4] यह धारा जीवन के कठोर यथार्थ से अनुप्राणित है तथा अपने मानवतावादी दृष्टिकोण मनुष्य के लौकिक जीवन-सत्य को ही महत्त्वपूर्ण बनाती है। वह जनता की तरफदारी करने वाला साहित्य है इसीलिए वह उसकी जातीय विरासत, उसकी साहित्यिक परम्पराओं की रक्षा करने के लिए भी लड़ता है।[5] इस काव्यधारा के कवियों का सिद्धान्त सामाजिक जीवन के मूलरूप आर्थिक व्यवस्था और शोषक शोषितों के संबंधों को स्थापित करना। साम्यवादी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर दिनकर, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल आदि कवियों ने प्रगतिशील रचनाएँ लिखीं। इन

प्रगतिशील रचनाओं में गाँधीवाद की पूर्णतः अभिव्यक्ति है। क्योंकि इस युग के कवियों ने साम्यवादी दर्शन को आधार बनाकर मजदूर किसान तथा समाज के शोषित वर्ग के लोगों की दयनीय जीवन की यथार्थता को वर्णित करने का प्रयत्न किया। इस संबंध में डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं – "भारतीय जीवन में गाँधीवाद का भारत के संस्कारी हृदय पर गहरा प्रभाव है।"[6]

प्रगतिवाद लम्बे समय तक नही टीका, फिर भी अल्पावधि में जो कुछ भी लिखा गया, वह जनता के लिए मार्गदर्शक बना। यह किन्हीं कारणों से विफल क्यों न हुआ हो, इस काल के दौरान रचे गए, साहित्य में गाँधीवाद की स्पष्ट छाप है।

सोहनलाल द्विवेदी : संवत् 1962 विक्रमी की फाल्गुन शुक्ला अष्टमी शनिवार के दिन उत्तर प्रदेश के बिन्दकी नामक कस्बे में सोहनलाल द्विवेदी का जन्म हुआ। डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा लिखते हैं – "कवि सोहनलाल उत्तर प्रदेश के संभ्रान्त एवं सुसम्पन्न कान्यकुब्ज ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुए। पितामह श्री भिखारी लाल द्विवेदी तथा पिता पंडित बिंदाप्रसाद द्विवेदी परम्परा प्राप्त संस्कारों के मूर्तिमन्त प्रतीक थे। दुर्भाग्यवश बालक सोहनलाल को नौ-दस वर्ष तक ही पिता का छत्र-छाया प्राप्त हो सकी। शिशु सोहनलाल को माता शिवप्यारी का अन्तरंग स्नेह-दुलार मिला। तीन भाइयों में वे कनिष्ठ थे। ज्येष्ठ भ्राता श्री चंद्रिकाप्रसाद द्विवेदी अल्पवय में ही काल-कवलित हो गए। दूसरे अग्रज साधु-स्वभाव एवं गृहस्थ परिवार के प्रति पूर्णतः समर्पित व्यक्ति थे। उन्होंने पूरे परिवार का पालन-पोषण पितृ-भाव से किया। सोहनलाल जी के शिक्षण एवं व्यक्तित्व विकास में उनका अन्तरंग अविस्मरणीय योगदान रहा।"[7] इनके पिता कस्बे के जाने-माने व्यक्तित्व थे। सभी उनका सम्मान करते थे। "वे गल्ले के व्यापारी ही नहीं बिन्दकी के एक प्रकार से माने हुए बिना छत्रधारी राजा थे। कस्बे की जनता के हृदय पर उनका शासन था। दिन-भर फरयादियों की भड़ लगी रहती। एक से एक पेंचीदा मामले आते– सेठ घूरनदास के पाँच सौ रुपये ललई साह डकार गया - पंडित जी फैसला करते । मगरे की बहू को ससुराल वाले विदा नहीं करते तो पंडित जी निर्णय देते ।

.... कहने का तात्पर्य यह है कि पं. बिंदा प्रसाद द्विवेदी बिन्दकी कस्बे के दीवानी फौजदारी दोनों के न्यायधीश थे। कस्बे में एनकी धाक थी। यही दिलेरी और धाक दोनों भाइयों (पं. मोहनलाल और सोहन लाल द्विवेदी) को समान रूप से मिली थी।''[8]

इनका अक्षराम्भ घर पर ही हुआ । सर्वप्रथम 'क' 'ख' 'ग' सीखा। उर्दू की तालीम घर पर ही मौलवी असगर अली से ली। छठी तक की शिक्षा बिन्दकी में ही हुई। सातवीं कक्षा में इनका दाखिला फतेहपुर के एंग्लो-संस्कृत विद्यालय में दिलवाया गया। फतेहपुर में ये 'राम चरण दुबे' के मकान में रहा करते थे। सब उन्हें चन्नी चाचा कहकर बुलाते। 'चन्नी चाचा' ही उनके विद्यालय में अभिभावक बने। फतेहपुर से सन् 1925 में सोहनलाल जी ने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षा के लिए इन्होंने तत्कालीन विद्या के प्रमुख केन्द्र काशी विश्वविद्यालय को चुना और यहीं से बी. ए. उत्तीर्ण किया। यहीं इन्हें मालवीय जी, कवि हरिऔध, आचार्य शुक्ल, श्यामसुन्दर दास, आचार्य केशवदास आदि विद्वानों का सानिध्य प्राप्त हुआ। सन् 1931 में एल. एल. बी. की शिक्षा प्राप्ति हेतु प्रयाग विश्वविद्यलय में प्रवेश लिया, लेकिन वे काशी से दूर न रह सके। पुनः हिन्दू विश्वविद्यालय में वापस आ गए और सन् 1935 में स्नातकोत्तर विधि उपाधि (एम. ए. एल. एल. बी.) की उपाधि प्राप्त की। वकालत की उच्च शिक्षा हेतु ये इंग्लैण्ड जाना चाहते थे, लेकिन मालवीय जी ने उन्हें अपने देश में ही रहने का परामर्श दिया। उन्होंने इसे माना और फतेहपुर आ गए। यहीं उनकी शिक्षा समाप्त हुई । विधि वक्ता (वकील) के रूप में अपने को प्रस्तुत करने के लिए अभ्यास किया लेकिन उसमें उनका मन नहीं लगा। अन्ततः वे साहित्यिक क्षेत्र में प्रविष्ट हुए और समाज सेवा करने निर्णय लिया।

सार्वजनिक क्षेत्र में द्विवेदी जी का सर्वप्रथम प्रदेश एक जिला पार्षद के रूप में हुआ। राष्ट्रीय राजनीति की प्रारम्भिक शिक्षाये अपने शिक्षा काल में ही ले चुके थे। ये फतेहपुर जिला परिषद के सदस्य के रूप में निर्वाचित हुए तथा सन् 1943 तक रहे। जिला-परिषद् के

सदस्य के साथ उकनी वृत्ति राष्ट्र जागरण हेतु साहित्य-सर्जन में भी हुयी। सम्पादन-लेखन तथा सार्वजनिक संस्थाओं की सदस्यता अध्यक्षता आदि अन्य क्षेत्र इसी प्रधान वृत्ति के आनुषंगिक उपादान भर थे। साहित्यिक सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियों के कारण द्विवेदी जी बहुत ख्याति प्राप्त कर चुके थे। उन्हीं दिनों लखनऊ के कुछ राष्ट्र भक्तों ने 'अधिकार' नाम का राष्ट्रीय दैनिक प्रकाशित करने की योजना बनाई और उसका सम्पादक बनाया गया राष्ट्र कवि सोहनलाल द्विवेदी को।[9] उनके हाथ में 1938 से 1945 तक देश के सशक्त दैनिक का अधिकार रहा .... किन्तु इस अवधि में इन्होंने सम्पादक के कर्तव्यों एवं दायित्वों का ही पालन किया, उसे आत्मविज्ञापन का माध्यम बनाने की कल्पना तक नहीं की।''[10]

द्विवेदी जी ने महात्मा गाँधी की हीरक जयन्ती के अवसर पर 'गाँधी अभिनंदन' के सम्पादन की पूर्ण जिम्मेदारी वहन की। इस अभिनंदन ग्रंथ की सम्पूर्ण योजना के प्रकल्पक भी स्वयं कवि द्विवेदी जी थे। इस योजना में प्रत्यक्ष रूप से गाँधी जी का सम्मान तथा अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय संघर्ष एवं चिन्ता के क्षणों में जनजीवन को सर्वत्र सांस्कृतिक आधार प्रदान करने की भावना निहित थी।[11] देश-विदेश के मूर्धन्य विद्वानों साहित्यकारों तथा चित्रकारों के सहयोग से यह ग्रंथ अपूर्व गरिमा और साज सज्जा के साथ प्रकाशित हुआ और गाँधी जी के जीवन-दर्शन का स्थायी दस्तावेज बन गया। इसमें गाँधी जी के प्रति 'रनात्कर' से लेकर 'बच्चन' तक विभिन्न हिन्दी कवियों की तथा तेलुगु से लेकर कन्नड़, अंग्रेजी, चीनी आदि भाषाओं के कवियों की भी हिन्दी कविताओं का संकलन-सम्पादन प्रकाशन द्विवेदी जी की अध्यवसायी क्षमता एवं कर्म साधना का ज्वलंत प्रमाण है।[12]

द्विवेदी जी के इस शिक्षा-प्रेम, समाज-चिन्तन तथा जिला पार्षद के रूप में पूर्व प्राप्त प्रशासनिक अनुभव का बिन्दक वासियों ने भरपूर लाभ उठाया। उनके अथक प्रयासों से वहाँ प्रथम राजकीय कन्या पाठशाला खुली जो कालांतर में उचत्तर माध्यमिक विद्यालय के

स्तर तक पहुँची। नेहरू इन्टर कॉलेज के स्तरीय सुधार में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। सन् 1964 में ये बिन्दकी नगर पालिका के सदस्य चुने गए। लेकिन राजनीति से उदासीन होने के कारण मार्च 1965 तक ही इस पद पर रहे। इन नौ महीनों में ही इन्होंने नगर के विकास के लिए अनेकों प्रयत्न किये। जिससे इनकी कार्य क्षमता की पूरे बिन्दक वासियों पर अमिट छाप पड़ी।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं – "इनका लेखन कार्य सन् 1921 ई. से आरम्भ हुआ। .... 1938 से 1942 ई. तक दैनिक राष्ट्रीय पत्र 'अधिकार' का लखनऊ से सम्पादन करते रहे। इसके बाद 2-4 वर्षों तक 'बालसखा' के सम्पादन का अवैतनिक कार्य करते रहे। ये साहित्य सेवा को व्यवसाय नहीं मानते थे। जीवन यापनार्थ जमींदारी के बाद बैंकिग का व्यवसाय अपनाया।"[13]

इनकी काव्य रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थी जिनमें बाल रूचि की प्रेरक कविताएँ एवं उनके समग्र विकास में सहायक समूह-गान ही अधिक थे। द्विवेदी जी की राष्ट्रीय चेतना को प्रखर बनाने में महात्मा गाँधी की विचारधारा का गहरा प्रभाव है। गाँधी जी की विचारधारा से प्रभावित होकर जो गीत लिखे वे असहयोग आन्दोलन के समय अत्यन्त लोकप्रिय हुए।[14] डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं – ये अत्यन्त सरल भाषा में राष्ट्रीय चेतना को व्यक्त करने वाले कवि हैं। इनकी राष्ट्रीयता की चेतना अतीत, वर्तमान और भविष्य इन तीनों ही काल आयामों को समेटती है।[15]

कवि सोहनलाल जिस रूप में भारतीय समाज तथा साहित्य जगत में प्रख्यात है उस रूप निर्माण का प्रेरक या तो समकालीन-सामाजिक सांस्कृतिक और साहित्यिक परिवेश था या फिर इनकी प्रेरक थीं वे विभूतियाँ जिन्होंने समय-समय पर इनको अपना दिव्य संस्पर्श और संसर्ग प्रदान कर इनके जीवन की दिशा ही बदल दी। इनमें प्रमुख थे – अध्यापक बलदेव प्रसाद शुक्ल, महात्मा गाँधी, गणेश शंकर विद्यार्थी, महामना मदन मोहन मालवीय तथा

रायकृष्ण दास। गाँधी जी का प्रभाव इन पर उस समय पड़ा जब ये फतेहपुर के विद्यालय में अध्ययनरत थे। गाँधी जी के स्वदेशी प्रेम से प्रभावित होकर आजीवन खादी धारण करने का निश्चय किया। यहाँ तक की अपने विवाह में भी खादी के वस्त्र ही पहने। लोगों ने व्यंग्य किया तो उन्होंने कहा – "खद्दर पहनने का अर्थ है – गाँधी जी का सिपाही बनना।" 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' से गाँधी जी का नाम पूरे देश में फैल चुका था। जिस समय भारत में 'प्रिंस आफ वेल्स' भारत आये तो सम्पूर्ण देश के विद्यालयों में स्वागत गान का आदेश हुआ तो फतेहपुर स्कूल में उसका विरोध किया अकेले सोहनलाल द्विवेदी ने। गाँधी जी की प्रापत प्रेरणा का प्रतिफल है कि द्विवेदी जी की काव्य रचना का अधिकांश उन्हीं को समर्पित है। यह शुरुआत हुई सन् 1921 में जब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में गाँधी जी को आमन्त्रित किया गया तो गाँधी जी के स्वागत में द्विवेदी जी ने 'खादी गीत' प्रस्तुत किया। कुछ ही दिनों में सम्पूर्ण देश में खादी गीत की धूम मच गई। उन्होंने अपनी अनेकों रचनाओं में गाँधीवादी चेतना को स्वर प्रदान किया। 'गाँधी अभिनन्दन ग्रंथ' तो द्विवेदी जी की गाँधी का अन्यतम भेंट स्वरूप थी। गाँधी जी की वेदना के इन स्वरों में हिन्दी और अहिन्दी भाषी भारतीय कवियों के अतिरिक्त अनेक विदेशी भाषा-भाषी कवियों के स्वर भी एक समवेत गान का रूप दे सके।

द्विवेदी जी के व्यक्तित्व में विविध गुणों का समन्वय है। इनके भीतर सफल कवि देश-प्रेमी जननायक, सम्प्रदायक, भक्त एवं भारतीय संस्कृति के उपासक के दर्शन एक साथ मिलते हैं। निश्छलता, स्पष्टवादिता, सहानुभूति, स्वाभिमान, निस्पक्षता एवं मस्ती आदि सन्त जीवन की विशेषताएँ द्विवेदी जी में भी प्रतिष्ठित थी। द्विवेदी साहित्य 'स्ने' यथायोग्य समान प्रदान किया। उनके प्रति विभिन्न प्रकार के सम्मान इनके प्रति समाज की कृतज्ञता के सूचक है। उन्हें साहित्य शिरोमणि, पद्‌मश्री, साहित्य वाचस्पति जैसे उच्च सम्मान प्रदान किए गए।

नागार्जुन : हिन्दी कविता को छायावादी संस्कारों से मुक्त कर उसके सहज दिशा निश्चित

करने वाले महत्त्वपूर्ण लोगों में नागार्जुन की अग्रणी भूमिका है। सामाजिक चेतना, वैचारिक प्रतिबद्धता और अभिव्यक्ति कौशल की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास में इन्हें अलग से रेखांकित किया जा सकता है। व्यंग्य और आलोचना इनकी रचना के गहरे सरोकार हैं। भारतीय जनता के प्रति आत्मिक अनुराग एवं राष्ट्र की प्रकृति से लगाव ने इनके संवेदन संसार को समृद्ध किया है। विचार के स्तर पर धुन्ध से ये सर्वथा मुक्त हैं। इनकी काव्य रचना में कई ऐसी खूबियाँ हैं, जो प्रगतिशील काव्यधारा में उन्हें पहचान प्रदान करती हैं।

ठक्कन, वैद्यनाथ मिश्र, वैदेह यात्री, आधुनिक युग के कबीर तथा बाबा नाम से पुकारे जाने वाले श्री वैद्यनाथ मिश्र जन्म कब हुआ यह उन्हें भी ठीक तरह से नहीं मालूम। उनके जन्म के बारे में विद्वानों में मत भिन्नता रही है। डॉ. जयकान्त मिश्र ने 'ए हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिट्रेचर' में उनका जन्म सन् 1908 माना है। हिन्दी साहित्य कोश में उनका जन्म सन् 1910 दिया गया है। डॉ. प्रकाश चंद्र भट्ट ने उनका जन्म सन् 1911 ई. जून मास की किसी तिथि (ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा) को माना है। डॉ. ज्ञानेशदत्त हरित ने भी अपने शोध-प्रबंध 'नागार्जुन व्यक्तित्व और कृतित्व' में सन् 1911 को ही उनके जन्म का वर्ष माना है।[16] डॉ. प्रभाकर माचवे ने कहा है कि –''सन् 1911 ई. में ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को यानि जून में किसी तारीख को वे जन्में ऐसा मान लिया जाता है।''[17] विभिन्न विद्वानों के विचारों को आधार मानकर सन् 1911 में इनका जन्म स्वीकार किया गया है।

नागार्जुन का जन्म निम्न मध्यवर्गीय मैथिल ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका 'गोत्र' 'वत्स' और कुल 'पलिवाड समोड' है। जिस प्रकार उनके जन्म के विषय में विभिन्नता है उसी प्रकार उनके जन्म स्थान के बारे में भी मत भिन्नता है। बाबू राम गुप्त ने इसकी पुष्टि देते हुए कहा है – तरौनी गाँव जो नागार्जुन का पितृग्राम है, अब तक उसे ही उनका जन्म स्थान माना जाता रहा है, लेकिन वास्तव में नागार्जुन का जन्म उनके ननिहाल 'सतलखा' में हुआ।[18] विजय बहादुर सिंह ने भी उनका जन्म ननिहाल में ही स्वीकार किया है – यों

उनका जन्म तरौनी में न होकर ननिहाल सतलखा में हुआ था।[19]

नागार्जुन तीन नामों से हिन्दी-साहित्य में परिचित हैं। जन्म नाम वैद्यनाथ मिश्र, संस्कृत एवं मैथिली-साहित्य में यात्री, तो हिन्दी-साहित्य में नागार्जुन नाम से जाने जाते हैं। "नागार्जुन के वैद्यनाथ मिश्र नाम के पीछे भारतीय आस्तिक पिता का वात्सल्य पूरित हृदय है– कहा जाता है कि उनके पिता वैद्यनाथ धाम में एक माह रहकर अनुष्ठान किया था, जिसके फलस्वरूप नागार्जुन का जन्म हुआ। परिणामतः इस नवशिशु को दीर्घजीवी देखने की कामना से वैद्यनाथधाम पर ही माँ-बाप ने बच्चे का नाम वैद्यनाथ मिश्र रखा।"[20] यात्री नाम के संबंध में कहते हैं – "पैदा होते ही जिसके प्रयाण कर जाने की आशंका से कुल परिवार के लोक आशंकित थे, वही बाद में चलकर 'यात्री' नाम से मैथिली उपन्यास और कविताएँ लिखने लगा।"[21] नागार्जुन स्वयं इस नाम के संबंध में लिखते हैं – "वैसे मेरा पहला साहित्यिक नाम 'यात्री' था। संस्कृति और मैथिली में यात्री नाम से ही लिखता रहा हूँ। बहुत से लोगों को पता भी नहीं कि 'यात्री' और 'नागार्जुन' एक ही व्यक्ति है।"[22] नागार्जुन नाम कैसे पड़ा, इसे स्पष्ट करते हुए एक स्थान पर कहते हैं –"मैं राहुल जी के साथ यात्रा पर निकल गया ...... फिर हम लंका गए। वहाँ मैं बौद्ध भिक्षु हो गया। उसी स्थान पर मुझे नागार्जुन नाम दिया गया जो चल रहा है।"[23] इस संदर्भ में बाबू राम गुप्त लिखते हैं – "भारत के विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण करते हुए नागार्जुन सन् 1936 के अंत में सिंहलद्वीप (लंका) चले गए। वहीं पर उन्होंने गृहस्थ रूप छोड़कर चीवर धारण किया। वहाँ उन्होंने बौद्ध जगत् के प्रख्यात्, लंका के प्राचीन विद्यापीठ - विद्यालंकार में पहुँचकर बौद्धधर्म में दीक्षा प्राप्त की और बौद्धभिक्षु बन गए। वे प्रख्यात बौद्ध तत्त्ववेता नागार्जुन के दार्शनिक ग्रंथों का अनुवाद करना चाहते थे और उसी समय उन्होंने वैद्यनाथ मिश्र के स्थान पर अपना नाम 'भिक्षु नागार्जुन' कर लिया।"[24]

नागार्जुन के पिता गोकुल मिश्र घुमक्कर, रूढ़िवादी, कठोर एवं फक्कड़ मिजाज व्यक्ति थे। उनकी माता उमादेवी सरल हृदयी, परिश्रमी एवं ईमानदार महिला थीं। नागार्जुन

की प्रारंभिक शिक्षा गाँव के ही संस्कृत पाठशाला में ही प्राचीन पद्धति से हुई। 'प्रथमा' परीक्षा के बाद व्याकरण 'मध्यमा' करने के लिए 'गनौली' के संस्कृत विद्यालय में चले गए। इसके बाद चार साल काशी में रहकर 'आचार्य' की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1930 में जैन मुनियों के सम्पर्क में वाराणसी में प्राकृत एवं पाली भाषा का अध्ययन किया। तत्पश्चात् कलकत्ता में रहकर पंद्रह रुपये की छात्रवृत्ति और मुफ्त आवास प्राप्त किया व 'काव्यतीर्थ' का अध्ययन शुरू किया, परन्तु अध्ययन अधूरा ही छोड़कर सन् 1934 में सहारनपुर में सौ रुपये मासिक वेतन पर प्राकृत से हिन्दी में अनुवाद करते रहे। लंका भ्रमण के दौरान तीन साल तक विद्यालंकार परिवेष में रहकर बौद्धधर्म ग्रंथों का अध्ययन किया। वहीं पर कामचलाऊ अंग्रेजी भी सीखी। उनकी मातृभाषा मैथिली थी लेकिन घुमक्कड़ी होने के कारण पाली, अर्द्धमागधी, सिंहली, तिब्बती, मराठी, गूजराती, बंगाली, पंजाबी आदि भाषाओं में पढ़ना-लिखना सीख लिया था।

जब नागार्जुन उन्नीस वर्ष के थे तब उनका विवाह अठारह वर्षीय अपराजिता देवी से हुआ। उनके मन में पत्नी के प्रति सदैव सहानुभूति की भावना रही। अपनी यायावरी वृत्ति के कारण उन्हें उचित स्नेह न दे सके। सन् 1934 से 1941 ई. तक घर छोड़ा तथा भ्रमण किया। इनकी छः संताने हुई, चार पुत्र एवं दो पुत्रियाँ। इनके परिवार का निर्वाह मुख्यतः साहित्य निर्मिति के माध्यम से प्रकाशकों से प्राप्त होने वाली रायल्टी ओर देहात में होने वाली थोड़ी खेतीबाड़ी से होता था। नागार्जुन स्वयं 'बुढ़वर विलाप' नाम से आठ-आठ पेज की दो किताबिया छपवाकर रेलगाड़ी में बेचते थे और घर का खर्च चलता था। एक-दो जगह मासिक वेतन पर रहे लेकिन घुमक्कड़ी एवं स्वतंत्रवेत्ता स्वभाव से टिक न सके।

नागार्जुन ने जो भोगा है देखा है, अनुभव किया है उसी की अभिव्यक्ति एक समाजवादी और मानवतावादी साहित्यिक के रूप में अपनी बहुमुखी प्रतिभा-संपन्नता के साथ की है । उन्होंने उपन्यास, कहानी, जीवनी, निबंध, आलोचना, बाल साहित्य एवं कविता आदि

साहित्यिक विधाओं का मैथिली, संस्कृत और हिन्दी में सृजन किया। संपादक के रूप में भी अपना स्थान बनाया। उनके कविता संग्रह कोमल और संवदेनशील रूप में उनके क्रांतिकारी भावों को अभिव्यक्ति देने में समर्थ रहे हैं। उनके काव्य संग्रह है – युगधारा सतरंगे पंखोवाली, प्यासी पथराई आँखें, तालाब की मछलियाँ, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, तुमने कहा था, पुरानी जुमियों का कोरस, रत्नगर्भ, चित्रा आदि। 'भस्मांकुर' नागार्जुन का खण्ड काव्य है।

नागार्जुन का साहित्य जगत् में प्रविष्ट होने का समय भारत का इतिहास नव जागरण के प्रबल आह्वान का इतिहास था। अंग्रेजी के शिकंजों में जकड़े भारत को स्वाधीन बनाने के लिए गाँधी जी के नेतृत्व में अहिंसावादी आन्दोलन प्रभावी रूप से चल रहा था। कांग्रेस के अन्तर्गत् गर्मदल और नर्मदल की विचारधाराओं के होते हुए भी कांग्रेस जनता की आस्था और विश्वास का केन्द्र बनी थी। इसी परिणाम स्वरूप भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना बढ़ती जा रही थी। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन और सविनय अवज्ञा भंग आंदोलन में पूरे देश की जनता भाग ले रही थी। कोई अपनी नौकरी छोड़कर, कोई अपनी रईसी छोड़कर, इन आंदोलनों में भाग ले रहे थे। स्वदेशी भावना को बढ़ावा देने के लिए विदेशी कपड़ो की होली जलाना, शराबों की दुकानों को तोड़ना अंग्रेज सत्ता के विरोध में जुलूस निकालना आदि कार्य बड़े जोरों पर चल रहे थे। सन् 1930 में गाँधी जी ने नमक कानून तोड़ने का आंदोलन सफल बनाया। जिससे देश में अनेक जगहों पर नमक बनने लगा।

महात्मा गाँधी के प्रभाव से स्वयं नागार्जुन भी अत्यन्त प्रभावित हुए। गाँधी के समान वे भी दलित वर्ग के प्रति संवेदनशील थे। मजदूर, किसान, दलित तथा पीड़ित जनता के दुःखों को उन्होंने आवाज दी है। अनमेल विवाह, बहुविवाह आदि का भी समाधान प्रस्तुत किया। सामाजिक जीवन से संबंधित रीति-रिवाज कुल और धन के घमण्ड, उससे निर्मित अत्याचार, नारी-जीवन की विषाद भरी समस्यायें उद्घाटित करते हुए सुधारवादी प्रयास भी किया है। जातिगत समता, नारी शिक्षा, उसकी आर्थिक स्वाधीनता आदि का भी चित्रण किया।

इस तरह का चित्रण उनके नवीन विचार और समाजवादी मान्यताओं का फल है। धार्मिक अंधविश्वास, मान्यताओं, कुप्रथाओं और साधु लोगों के आडम्बरों एवं विकृत व्यवहारों को वास्तविक रूप में चित्रित करते हुए, इसमें परिवर्तन लाने के लिए कुछ विज्ञान निष्ठ एवं साम्यवादी दृष्टि से समाधान भी प्रस्तुत किए हैं। आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए साम्यवादी वर्ग विहीन समाज का निर्माण करना ही अपना लक्ष्य माना।

नागार्जुन अपने युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से अत्यन्त प्रभावित रहे। स्वयं बिहार अंचल के सुपुत्र होने से पिछड़ेपन एवं जन जीवन के कष्टों को अनुभव कर चुके थे। उन अनुभवों का यथार्थ चित्रण किया है। कांग्रेसी समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण, आचार्य कृपलानी आदि के साथ भी नागार्जुन ने कार्य किया। बिहार में चले किसान आन्दोलनों में भी भाग लिया। फलस्वरूप दो बार जेल भी गए। इससे स्पष्ट है कि गाँधी जी एवं उनके विचारों का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से नागार्जुन पर प्रभाव पड़ा। वह प्रभाव साहित्यिक चेतना के रूप में हमारे सम्मुख है। ''नागार्जुन की विशेषता यह है कि उन्होंने अपने यथार्थवाद को निरंतर, ऊँचे धरातल पर पहुँचाया है। उनके राजनीतिक व्यंग्य इतने पैने हुए हैं कि उनमें जीवन की अंतर्विरोधों की समझ दृढ़ हुई है, उनका भौतिकवादी रूझान अविचल रहा है, इसे हम सभी जानते हैं। 'हरिजन गाथा' और छोटी मछली........ बड़ी मछली जैसी कविताओं की रचना करके नागार्जुन ने केवल अपने आपको वरन् प्रगतिशील कविता को हिन्दी-साहित्य को मूल्यवान अवदान दिया है। उत्तरोत्तर अपने प्रखर यथार्थवादी और दृढ़ भौतिकवादी उन्मेष के कारण नागार्जुन हिन्दी साहित्य में निराला के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण पद के हकदार हुए है।''[25]

रामधारी सिहं 'दिनकर' : श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' प्रगतिवादी महान कवि एवं उच्चकोटि के कलाकार है। प्रतिभा उनकी अपनी है। भूतपूर्व गौरव के ये समर्थ गायक हैं और वर्त्तमान के प्रति बड़े सजग । इन्होंने युग की आवश्यकताओं को भली-भाँति समझा है । स्वदेश प्रेम एवं

राष्ट्रीयता इनकी कविताओं के प्रधान विषय हैं। देश की नवयुवकों को देश-सेवा की ओर आकर्षित किया है। युवाओं के ये सर्वप्रिय कवि हैं। इनकी कविता में जीवन है, जागृति है, यौवन है, और है एक प्रबल हुँकार।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि गम्भीर चिन्तक, प्रतिभावान आलोचक तथा सफल प्रभावशाली वक्ता एवं लेखक श्री दिनकर का जन्म 23 सितम्बर 1908 में बिहार के मुंगेर जिला अब बेगुसराय के सिमरिया नामक ग्राम में हुआ था।[26] सिमरिया गाँव को मिथिलांचल का प्रसिद्ध तीर्थ भी कहा जाता है। इनके पिता बाबू रवि सिंह एक सामान्य काश्तकार थे। दिनकर उनके द्वितीय पुत्र थे। जब दिनकर ढ़ाई साल के थे तभी इनके पिताजी का देहान्त हो गया। विधवा माँ ने घर की जिम्मेदारी अपने कंधों पर ले ली। बच्चों का पालन-पोषण करने लगी। परिवार संचालन में कुछ परिवारी हितैषियों का सहयोग भी इनकी माँ को मिला।

घर की परिस्थितियाँ अति विपरीत थीं फिर भी बचपन से ही उनमें पढ़ाई के प्रति अति चाव था। गाँव से ही 'लोउर प्राइमरी' पास की। मिडिल तक की शिक्षा प्राप्त करने गाँव से चार किलोमीटर 'डरबारो' जाते। मैट्रिक की शिक्षा 'मोकामा' गाँव के विद्यालय से प्राप्त की। मोकामा सिमरिया से 15 कि. मी. की दूरी पर है। बीच में गंगा नदी भी पड़ती, उसे पार करते हुए प्रतिदिन मोकामा जाते और आते। इस तरह सन् 1928 में मैट्रिक पास किया। उसके बाद गाँव छूट गया। आगे की पढ़ाई के लिए थे पटना आ गए और पटना विश्वविद्यालय के पटना कॉलेज से इतिहास विषय में प्रतिष्ठा सहित सन् 1932 ई. में बी. ए. पास किया। बी. ए. के बाद भी ये पढ़ना चाहते थे लेकिन परिस्थितियाँ प्रतिकूल होने के कारण अध्ययन जारी न रख सके।

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं – "बी. ए. शिक्षा प्राप्त करने के बाद इन्हें पारिवारिक परिस्थितियों के कारण सरकारी नौकरी करनी पड़ी।"[27] "ये क्रमशः एक हाई स्कूल के प्रधनाध्यापक बिहार सरकार के अधीन 'सब रजिस्ट्रार' बिहार सरकार के

प्रचार-विभाग के उपनिदेशक, मुजफ्फरपुर के कॉलेज में हिन्दी विभागाध्यक्ष, राज्य सभा के सदस्य, भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार रहे।''[28]

कविता बनाने की रूचि इनमें बचपन से ही थी। मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ये अच्छे-अच्छे गीत लिखने लग गए थे। तत्कालीन नवोदित कवियों में इन्होंने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान शीघ्र बना लिया। प्रारंभ में इनका मन-मधुप छायावादी कवियों के समान सौंदर्य का गुंजन करता हुआ सामने आया। तब वह जीवन की वास्तविकता से विलग था। वह अपनी रंगीन और मधुर कल्पना के चमकीले मोतियों को एकत्र कर रहा था, पर युग की पुकार उसे तुरन्त सुनाई पड़ी । वह युग की आवश्यकता-पूर्ति का अग्रदूत हो गया। उनका करूणार्द्र हृदय धनवानों और पूँजीपतियों की शोषण नीति से बौखला उठा।

श्री रामधारी सिंह के 'दिनकर' तत्त्व को पोषित-पल्लवित किया तुलसीदास के 'रामचरितमानस' तथा मैथिलीशरण गुप्त एवं माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं ने। उनके मन पर जिनकी छाप पड़ी और जिनसे उन्होंने प्रेरणा ग्रहण की वे घटनाएँ और व्यक्तित्व हैं – अपने देश का स्वतंत्रता संग्राम, विश्व स्तर पर स्वातन्त्र्यकामियों के संघर्ष, गाँधी जी के कार्य और विचार, लेकिन के नायकत्व में निष्पादित क्रान्ति, भगत सिंह ओर गणेश शंकर विद्यार्थी की शहादतें, स्वामी सहजानन्द सरस्वती का किसान आन्दोलन, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, श्रीमती एनी बेसेन्ट, दो-दो विश्व युद्ध और उनके कारण विचार जगत् और साहित्य-लोक के संघर्ष आदि। इन सबकी गूँज उनके द्वारा रचित ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' में स्पष्ट रेखांकित हैं। कवित्व के धरातल पर रविन्द्र बाबू, इकबाल और नजरूल इस्लाम से उन्होंने प्रेरणा ली। डॉ. शिवकुमार लिखते हैं – ''इन्होंने जब लिखना आरम्भ किया था, उस समय छायावाद में हासोन्मुख प्रवृत्तियाँ आने लग गई थीं, उसमें वैयक्तिक वेदना और निराशा प्रधान हो उठी तथा वह केवल कलावाद तक सीमित रह गया । इधर

दूसरी ओर प्रगतिवाद साहित्यिकों के आकर्षण का केन्द्र बनता जा रहा था। दिनकर को इन दोनों धाराओं के बीच युगानुकुल मार्ग निकालना पड़ा।''[29] डॉ. नगेन्द्र के अनुसार ''दिनकर में संवेदना ओर विचार का बड़ा सुन्दर समन्वय दिखाई पड़ता है। चाहे व्यक्तिगत प्रेम-सांदर्य मूलक कविताएँ हों, चाहे राष्ट्रीय कविताएँ, सभी कवि की संवेदना से रूपन्दित हैं। दिनकर में आरम्भ से ही अपने को अपने परिवेश से जोड़ने की तड़प दिखाई देती है। इसलिए उनमें सर्वत्र एक खुलापन है, लोकोन्मुखता है, सहजता है – व्यक्तिगत प्रेम-सौंदर्यमूलक कविताओं में भी। छायावाद या उत्त छायावादी वैयक्तिक कविता को कुंठा, अतिरिक्त अवसाद तथा निराशा के घिराव के स्थान पर प्रसन्नता और सर्वत्र सौंदर्य के प्रति स्वस्थ मानवीय प्रतिक्रया दिखाई पड़ती है।''[30]

दिनकर भारतीय जनता की राष्ट्रीय भावना को पूरी शक्ति के साथ प्रतिध्वनित करने वाले सूर कवि है। ''यह कहना तो शायद सही न होगा कि दिनकर का काव्य छायावाद का प्रतिलोम है, पर उसमें संदेह नहीं कि हिन्दी-काव्य जगत् पर छाये, छायावादी कुहासे को काटने वाली शक्तियों में 'दिनकर' की प्रवाह्यमान, ओजस्विनी कविता का स्थान विशिष्ट महत्त्व का है।''[31] उनके काव्य में निश्छल प्रणय की अन्तर्वाहिनी प्रवाहमान रही है। वे शुष्क नैतिकतावादी या नीरस उपदेशात्मक कविता के पक्षपाती नहीं हैं। 'रेणुका' उनकी सर्वप्रथम रचना है। इसमें प्रणय की प्रगाढ़ अनुभूति का मार्मिक चित्रण है तो हुँकार में कवि की राष्ट्रीयता की भावना पराधीन भारत की दास्य-बंधन को काटने की भीषण हुंकृति-गर्जना के रूप में अभिव्यक्त हुई है। 'कुरूक्षेत्र' खड़ी बोली का गौरव ग्रंथ है। देश और काल की सीमा से न बँधी हुई समस्या को सुलझाने के कारण यह दिनकर का सर्वोत्तम काव्य ग्रंथ है। इसके अतिरिक्त द्वन्द्वगीत, धूप-छाँव, सामधेनी, बापू, धूप और धुँआ, इतिहास के आँसू, उर्वशी, रश्मिरथी आदि काव्य ग्रंथ एवं खण्डकाव्य हैं। सन् 1954 में प्रकाशित, 'नील-कुसुम' में भी इनकी मानवतावादी दृष्टिकोण है, जो प्रगतिशील पथ पर आज भी बड़े उत्साह के साथ

अग्रसर हो रही है । डॉ. विजयेन्द्र स्नातक कहते हैं – "यों तो दिनकर ने गद्य-पद्य आदि सब मिलाकर 45 पुस्तकें लिखीं, किन्तु कविता के क्षेत्र में उनका प्रदेय सर्वाधिक रहा। कविता की पहली पुस्तक, रेणुका से प्रारम्भ करके, हुँकार, रसवन्ती, सामधेय, नील कुसुम, रश्मिरथी, कुरूक्षेत्र, परशुराम की प्रतिक्षा और उर्वशी लिखकर साहित्य जगत् में अपना अमिट स्थान बनाया।"[32] गाँधी जी से निरन्तर प्रेरित हुए उनकी लक्ष्य कर 'बापू' काव्य की भी रचना की। इनके काव्यों में गाँधीवाद के सभी सिद्धान्त एवं चेतना दिखाई देती है। जो राष्ट्र-प्रेम गाँधी जी में था वही प्रेम इनमें भी था। गाँधी जैसी जागरूकता इनमें थी। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार – "दिनकर की सबसे बड़ी विशेषता है – अपने देश और युग-सत्य के प्रति जागरूकता। कवि देश और काल के सत्य को अनुभूति और चिन्तन दोनों स्तरों पर ग्रहण करने में समर्थ हुआ है। कवि ने राष्ट्र को उसकी तत्कालीन घटनाओं, यातनाओं, विषमताओं, समताओं आदि के रूप में ही नहीं, उसकी संश्लिष्ट सांस्कृतिक परम्परा के रूप में पहचाना है और उसके प्राचीन मूलयों का नये जीवन सन्दर्भो के परिपेक्ष्य में आकलन कर एक ओर उन्हें जीवंतता प्रदान की है, दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्व देते हुए उन्हें अपने प्राचीन किन्तु जीवन्त मूल्यों से जोड़ना चाहा है। दिनकर ने राष्ट्रीयता की पहचान को मात्र भावनात्मक प्रतिक्रिया से उबारकर चिन्तन, परीक्षण तथा आत्मलोचन का स्वक्ष्य रूप देने का प्रयत्न किया, साथ ही इस राष्ट्रीयता के सार्वभौम मानवता के रूप में विकसित होने का स्वप्न देखा।"[33]

"दिनकर की प्रगतिशीलता साम्यवादी लोक पर चलने की प्रक्रिया का साहित्यिक नाम नहीं है, एक ऐसी सामाजिक चेतना का परिणाम है, जो मूलतः भारतीय है और राष्ट्रीय भावना से परिचालित है। उन्होंने राजनीतिक मान्यताओं को राजनीतिक मान्यताएँ होने के कारण अपने काव्य का विषय नहीं बनाया, न कभी राजनीतिक लक्ष्य सिद्धि को काव्य का उद्देश्य माना, पर उन्होंने निःसंकोच राजनीतिक विषयों को उठाया है और उनका प्रतिपादन

किया है, क्योंकि वे काव्यानुभूति की व्यापकता स्वीकार करते हैं। राजनीतिक दायित्वों, मान्यताओं और नीतियों का बोध सहज ही उनकी काव्यानुभूति के भीतर समा जाता है।''[34]

गाँधी के सत्य, अहिंसा के ये प्रबल पोषक रहे हैं। किसान, मजदूर और असहाय स्त्री-बच्चों की दयनीय अवस्था से जितने गाँधी व्यथित हुए उतना ही दिनकर का हृदय छलनी हुआ। गाँधी के समान ही वे चाहते हैं कि गरीबों का रक्त शोषण न हो। जातिगत भेद न हों। समानता से ही समाज की उन्नति होगी आदि।

इस प्रकार दिनकर को हम कवि, चिन्तक, कलाकार, आलोचक एवं प्राध्यापकों आदि कई रूपों में पहचानते हैं। प्रगतिवादी कवि के रूप में तो ये विशेष सम्मानीय हैं। हिन्दी के गौरव को स्वयं समझने तथा स्वदेश तथा विदेशावासियों की उसे समझाने में एड़ी-चोटी का जोर लगया। हिन्दी गौरव विस्तार हेतु देश-विदेश का भ्रमण भी किया। अपने अध्ययन, अध्यवसाय एवं अनुभूति के बल पर ये हिन्दी साहित्याकाश में 'दिनकर' रूप में छाये हैं। गाँधीवादी विचारों को अपने में समाये सैकड़ो सत्याग्रहियों आज भी काव्य द्वारा मार्गदर्शन कर रहे हैं।

भावानी प्रसाद मिश्र : ''आधुनिक कवियों में प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने वाले कवियों में भवानी प्रसाद मिश्र का प्रमुख स्थान है। प्रकृति के साथ इन्होंने कुछ ऐसी आत्मीयता स्थापित कर ली है कि ये उसे स्थान-स्थान पर संबोधित करते पाये जाते हैं। मिश्र जी के विचारों पर भारतीय विचारधारा का गहरा प्रभाव पाया जाता है – विशेष रूप से गाँधीवाद का। बीसवीं शताब्दी में प्रचलित अन्य लोक कल्याणकारी विचारधाराओं में भी ये किसी सीमा तक प्रभावित रहे हैं। विशेष बल इन्होंने इस बात पर दिया है कि हमारा जीवन सहज और सरल होना चाहिए।''[35] डॉ. अंजना चौहान लिखती हैं – ''सप्तकीय परम्परा में लब्ध प्रतिष्ठित कवि भवानी प्रसाद मिश्र की, नई कविता में अलग पहचान रही है। सन् 1930 से लेकर 1985 तक की लम्बी काव्य यात्रा में उन्होंने हिन्दी कविता के बदलते रूप नाम अनेक बार देखे। नई

कविता में वे अकेले कवि थे जो इन बदलावों से अप्रभावित रहे । किसी प्रकार के वादों के झइटों में न पड़कर उन्होंने अपनी अलग राह बनाई और उसी पर चलकर काव्य सृजन करते रहे। खेमों बँटना उन्हें कभी नहीं भाया। हृदय की तीव्र तथा गहन अनुभूतियों को बड़ी सादगी और सहजता से मिश्र जी ने अभिव्यक्ति दी है। उनकी सादगी की इसी ताकत ने पाठक के अंतर की गहराई तक छुआ है। कहना न होगा कि भवानी प्रसाद मिश्र ने नई संवेदना तथा नई काव्य-भाषा हिन्दी कविता में दी हैं।''[36]

मिश्र जी का जन्म 29 मार्च 1913 को मध्य प्रदेश के जिला होशंगाबाद मालवा की सिवनी तहसील के रिगरिया ग्राम में हुआ था। वे स्वयं कहते थे –''मेरे पास जन्म कुण्डली थी, उसके सहारे समय आदि बताया जा सकता था, किन्तु वह मैंने नर्मदा में विसर्जित कर दी थी, इसलिए केवल जन्म तिथि 29 मार्च 1913 गाँव रिगरिया, तहसील सिवनी - मालवा, जिला होशंगाबाद से काम चलाइए।''[37] मध्यप्रदेश के प्रकृति वैभव से सम्पन्न इस प्रदेश का गहन प्रभाव उनके बाल मन के संस्कारों में अपनी गहरी छाप बना गया, जो मिश्र जी के उत्कर्ष और विशिष्टता का एक नवीन आयाम सिद्ध हुआ। इनके परिवार के बारे में बलदेव वंशी लिखते हैं – ''कवि के पितामह बुन्देलखण्ड में हमीरपुर में रहते थे। बाद में वे मध्यप्रदेश चले गए और वहाँ मंदिर में पुजारी का कार्य करके आजीविका चलाते थे। कवि के पिता श्री सीताराम मिश्र अपने भाइयों में सबसे छोटे थे। शिक्षा विभाग में निरीक्षक के पद पर काम करते थे। भवानी प्रसाद मिश्र की माता का नाम श्रीमती गोमती था, जो किसान की बेटी थीं, जो निरक्षर होते हुए भी धर्म परायण एवं आस्थावान गृहणी थीं। अतः पिता से शिक्षा-दीक्षा के संस्कार मिले तो माता के सरल किसानी एवं धार्मिक आस्था के संस्कार। आरंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। सात वर्षों तक घर पर रहकर प्राप्त किए। ये संस्कार कवि के अचेतन मन की समृद्धि के कारक तत्त्व बने। इस दौरान संस्कृत के श्लोक और प्राचीन कवियों के काव्य खूब याद किए।''[38]

भवानी प्रसाद मिश्र की प्रारंभिक शिक्षा सिहागपुर के ही प्राइमरी स्कूल में हुई। हाईस्कूल की परीक्षा नरसिंहपुर, होशंगाबाद के विद्यालय से पास की। जबलपुर के राबर्टसन कॉलेज से सन् 1935 में बी. ए. पास किया। बी. ए. के बाद अध्ययन छोड़कर अध्यापन की ओर प्रवृत्त हुए और छिंदवाड़ा के हाईस्कूल में संस्कृत अध्यापक के रूप में अध्यापन करने लगे। अपने पिता के आग्रह पर एक प्राइमरी पाठशाला खोल और फिर वहीं पढ़ाने लग गए। सन् 1939 में इनका विवाह सरला देवी से हो गया। सन् 1939 में इनका विवाह सरला देवी से हो गया। सन् 1930 में जब छायावाद अपने चरमोत्कर्ष पर था, तब मिश्र जी ने काव्य सृजन के क्षेत्र में प्रवेश किया। उस समय उन्होंने हाईस्कूल भी पास नहीं किया था, तब कलकत्ता से निकलने वाले पत्र 'हिन्दी पथ' में उनकी कविताएँ प्रकाशित हुईं। सन् 1932 में ये माखनलाल चतुर्वेदी के सम्पर्क में आए। उन्होंने उनकी कविताओं का स्वागत किया, प्रोत्साहन दिया और अपने द्वारा सम्पादित 'कर्मवीर' में कविताएँ प्रकाशित की। 'अज्ञेय' भी इनकी रचनाएँ तार सप्तक में छापना चाहते थे किन्तु जेल में बन्दी होने के कारण वे अपनी रचनाएँ नहीं भेज सके।

सन् 1942 में वे भारत छोड़ो आन्दोलन में कूद पड़े। उनके साहित्य में पदार्पण का समय ही ऐसा था, जब देश की राजनीतिक स्थित में अत्यधिक उथल-पुथल थी। समसामयिक परिस्थितियों की एक झलक हमें पं. जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में मिलती है– ''इस प्रकार सन् 1930 का वर्ष भावी घटनाओं की दुर्घटनाओं के अँधियारे वातावरण में प्रारम्भ हुआ। .... अप्रैल 1930 ईसवी के मध्य तक सविनय अवज्ञा आन्दोलन का संग्राम पूरे जोर पर पहुँच गया था। हर जगह केवल नमक कानून ही नहीं तोड़ा गया, बल्कि दूसरे कानून भी तोड़े जए। देश भर में शान्तिपूर्ण बगावत फैल गई। .... सामूहिक गिरफ्तारियाँ हुई और लाठियों की पशुतापूर्ण मार और शांत भीड़ों पर गोलियाँ चलाने और कांग्रेस कमेटियों का गैर कानूनी घोषित किया जाना और अखवारों का मुँह बंद किया जाना

और सेन्सर बिठाया जाना, मार-पीट, जेलों में सख्ती का व्यवहार, ये सब रोजमर्रा की घटनाएँ हो गई थीं।''[39] राष्ट्रीय जागरण के ऐसे समय में एक संवेदनशील कवि भला पीछे रहता ? मिश्र जी की भारत छोड़ो आन्दोलन में सक्रियता, उन्हें कारागृह के सींखचों के अन्दर ले गई। सन् 1942 से 1945 तक कारावास में रहने के पश्चात् वे वर्धा के महिलाश्रम के शिक्षक होकर चले गए।

वर्धा में शिक्षण कार्य के पश्चात् कुछ समय तक राष्ट्रभाषा प्रचार सभा का कार्य किया और फिर दक्षिण में हैदराबाद में तीन वर्ष रहने के बाद चित्रपट के संवाद लिखे तथा मद्रास ए. वी. एम. में संवाद निर्देशन भी किया। वे बम्बई आकाशवाणी के प्रोड्यूसर हो गए। फिर गाँधी शांति प्रतिष्ठान से जुड़े। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की त्रैमासिक पत्रिका 'गगनाञ्चल' के मानद सम्पादक भी रहे। सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय के सम्पादन कार्य को भी अंजाम दिया।

मिश्र जी गाँधी जी से प्रेरित हुए और देश की आजादी की लड़ाई में भाग लिया। बलदेव वंशी लिखते हैं – ''भवानी प्रसाद मिश्र एक अटूट और अकूत विश्वास के धनी कवि रहे। घोर निराशा घड़ियाँ – व्यक्तिगत जीवन की हों या समाज और देश की, वे अविचलित रहे है। अविचलित इन अर्थों में कि हर समाधान, प्रकाश, उल्लास, विजय भी कहीं आस-पास है और कहीं निश्चित है। चाहे महात्मा गाँधी नेतृत्व में लड़ा जा रहा स्वतंत्रता संग्राम हो, 15 अगस्त, 1947 की भारत की स्वाधीनता की घोषणा हो या गाँधी जी का बलिदान, भारत पर चीनी आक्रमण हो या नेहरू जी का देहावसान - इन सभी महाघटनाओं को अपने काव्य में दर्ज करता हुआ कवि सदाशोक या उल्लास में आशा का पल्ला कहीं नहीं छोड़ता। .... यह अगाध अक्षत विश्वास गाँधी जी और उनके विचारों की भिति है, मूलाधार है, जो गाँधी जी ने भारत के धर्म अध्यात्म की अपनी शोध में उपलब्ध किया ओर फिर निश्चल हो गए। उनके साथ जुड़ने वाले उनके अनुयायी भी उक्त विचारों को आस्था की चरम सीमाओं तक अपनाने

और निबाहने लगे। भले ही उनकी गिनती बहुत कम थी। इन कुछ आस्थावान लोगों में भवानी भाई भी थे ; जिन्होंने गाँधी को देवतुल्य और गाँधीवाद को अमोध अस्त्र मान लिया।''[40]

उनके काव्य में गाँधीवादी विचारों की गूँज सुनाई देती है। उनकी कविताओं में समाजिक वैषम्य एवं ग्रामीण दुर्दशा का चित्रण है। किसानों की दरिद्रता एवं घुटनपूर्ण वातावरण का वर्णन है। गाँधी के समान वे भी श्रम के प्रति निष्ठावान, सर्वहारा के प्रति सच्ची मानवीय प्रेम है। सामाजिक वैषम्य, परस्पर द्वेष जातिवाद आदि ने उनके कवि मन को झकझोरा है। मिश्र जी ने गाँधी को देवता नहीं देवतुल्य माना, उन्हें महामानव कहा। गाँधी भारत के लिए नहीं, समूचे विश्व के लिए मुक्ति का मार्ग दिखाने वाला, अहिंसात्मक संघर्ष की चेतना जगाकर विश्व के पराधीन देशों में प्रेरणा भरने वाले अनोखे व्यक्ति हैं, इसलिए मिश्र जी ने उन्हें वंद्य माना है। गाँधीवाद के और उसके प्रति समर्पित भाव रखनेवाले मिश्र जी के सरोकार जीवन की सम्पूर्णता और विश्वमानवता में आस्था रखने वाले है।

उनके काव्य संग्रह गीतफरोश, चकित है दुःख, अंधेरी कविताएँ गाँधी पंचशती, बुनी हुई रस्सी, खुशबू के शिलालेख, अनाम तुम आते हो, परिवर्तन जिए, इंद न मम, त्रिकाल संध्या एवं कालजयी सभी में गाँधीवादी विचारों की सुगंधि है। ''भवानी प्रसाद मिश्र भारतीय संस्कारों में रंगे उन विशिष्ट स्वभावों में पगे लोगों में थे जो अपने दुःख भी किसी को झाँकने देना नहीं चाहते और दूसरे के दुःखों को टटोल-टटोलकर अपने हिस्से में डालते जाते हैं। यों दुःखों की पूँजी तो हर कवि के पास होती है, किन्तु पराये दुःखों की सँभाल अमानत की तरह नहीं, धरोहर की तरह करना उन्हें खूब आता और भाता रहा।''[41] प्रेम शंकर रघुवंशी ने लिखा है – ''वे नई कविता के कबीर हैं। जितना गहरा आक्रोश, भाषा का जितना सटीक प्रयोग और आत्मीयता का जितना आग्रह कबीर में मिलता है उतना भवानी प्रसाद में भी।''[42] डॉ. संतोष तिवारी लिखते हैं – ''उनका एक चरण गाँधीवाद मानवीयता से गहरे रूप से जुड़ता है और सच्चाई यह है कि जब काव्य में गाँधीवाद की भावात्मक अभिव्यक्ति की तलाश होगी तो जो

नाम सबसे पहले उभरेंगे, वे होंगे माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त और भवानी प्रसाद मिश्र।''[43]

मिश्र जी आध्यात्मवादी भी हैं। उन्हें आध्यात्म की ओर प्रेरित भी गाँधीवाद ने किया। गाँधी ने भारतीय आध्यात्म को आधुनिक युग में नर-पूजा के माध्यम से पुनः स्थापित किया तो भवानी ने इस पर पूजा को अपने काव्य में और काव्य के माध्यम से हिन्दी साहित्य में स्थापित किया। गाँधीवाद की स्थापना वृहत्तर मानवता और मानवीय गुणों की स्थापना है। अपने काव्य के माध्यम से, इन बृहत्तर मानवीय संस्कारों, चिन्ताओं और चिंतन-प्रक्रिया से जुड़कर भवानी प्रासंगिक और बड़े अर्थवान कवि सिद्ध हुए।[44]

इस प्रकार प्रगतिवादी गाँधीवादी कवियों में भवानी प्रसाद मिश्र जी का प्रमुख स्थान है।

नरेन्द्र शर्मा : कवि नरेन्द्र शर्मा छायावाद-प्रगतिवाद के संधि युगीन काव्यधारा के अग्रणी कवि हैं। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं – ''परिवेश के प्रति इनका दायित्व बोध छायावादी प्रभाव का परिणाम नहीं, उनके विरूद्ध इनके व्यक्तित्व का विद्रोह है। समाज के प्रति अपने कर्तव्य निर्वाह की लगन उनकी सजग संवेदनशीलता का परिणाम है। उनका नाम प्रगतिवादी कवियों में लिया जाता है और यह अंशतः उचित भी है। पर न नरेन्द्र पूर्णरुपेण आत्मक्रेदित व्यक्तिवादी हो रहे, न ही उन्होंने व्यक्तित्व के सर्वथा विलीन होने में विश्वास किया। व्यक्ति ओर समाज दोनों ही नरेन्द्र शर्मा की काव्य प्रेरणा के हेतु और निमित्त रहे हैं।''[45]

इनका जनम 28 फरवरी 1913 ई. में गाँव जहाँगीरपुर, परगना जेवर, तहसील खुर्जा, जिला बुलंदशहर (उत्तरप्रदेश) में हुआ था।[46] ऐसा माना जाता है कि इनके पूर्वज जमुनापार से आए थे। जिन्हें स्वामी कहा जाता था। इनका परिवार बहुत बड़ा था, वह संयुक्त परिवार था। घर एवं बाहर सभी को मिलाकर प्रतिदिन एक सौ लोगों का भोजन होता था। इनके पिता तीन भाइयों में सबसे छोटे थे । उनका नाम पूरनलाल गौड़ था । इनके पिता का

प्रथम पत्नी से एक पुत्र हुआ, जिसका नाम ओंकार रखा गया। उसके जन्म के बाद माँ का देहान्त हो गया। ओंकार छोटा था अतः परिवार वालों के आग्रह पर बच्चे के पालन-पोषण के लिए श्रीमती गंगादेवी से पुनः विवाह किया। उन्होंने भी ओंकार को खूब स्नेह व सम्मान दिया, जब वे बारह वर्ष के हो गए, उसके बाद द्वितीय पुत्र नरेन्द्र को जन्म दिया। इनके पिता पूरनलाल ने नरेन्द्र को अपने बड़े भाई, जिनके यहाँ सिर्फ बेटियाँ थीं, गोद दे दिया। उनके ताऊ ही उनके पालक पिता, गुरु और मार्गदर्शक बने। इनका नाम नरेन्द्र कैसे पड़ा इस विषय में वे स्वयं आधुनिक कवि में लिखते हैं – ''मेरे जन्म के समय मेरे जीजाजी वहाँ आए हुए थे। वह साहित्यिक उपन्यासों के प्रेमी थे। उनकी रुची के किसी उपन्यास का नायक नरेन्द्र रहा होगा। उन दिनों के उपन्यासों में नरेन्द्र नाम बहुत चलता था, सो उन्होंने मुझे यह नाम दे दिया। यों मुझे नाम-धाम मिल गया।''[47]

इनके ताऊ इन्हें बहुत स्नेह देते थे। प्रारंभिक ज्ञान भी घर पर ही हुआ। स्नेहवश इन्हें पाठशाला बहुत देर से भेजा गया। इनके परिवार में पिता पटवारी, दोनों ताऊ भी पटवारी थे। इनका परिवार आर्य समाजी था जहाँ वैदिक सिद्धान्तों एवं नियमों के अनुसार क्रिया कर्म होते थे। अतः इन पर भी आर्य समाज का प्रभाव पड़ा। उन्होंने लिखा है – ''अक्षर ज्ञान के बाद मैं बाल सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने लगा। बचपन मे मुझे आर्यसमाज के संस्कार मिले। उन दिनों मैंने महीनों नित्य पारिवारिक, प्रातः होम में (बिना हाथ जलाए) भाग लिया है और वेद मंत्रों की ध्वनि उच्चारण-संदिग्ध, अर्थ-अज्ञात को गुँजाया है। साथ ही ''भरद्वाज गोत्रोत्पन्नोऽहम'' कहना भी सीख लिया था।''[48]

नरेन्द्र पर बचपन से ही सामाजिक सुधारों का प्रभाव पड़ा और उनमें राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। थोड़े ही वर्षों अर्थात् जब ये चार साल के थे इनके पिता की मृत्यु हो गई, ताऊ जी की छत्र छाया थी अतः दुःख को झेल लिया। इनके एक छोटी बहन जो इनसे दो-तीन वर्ष छोटी थी वह भी सात वर्ष की उम्र में चल बसी। इन सबका असर उनके बालमन

पर पड़ा। पिता के जाने के बाद इनकी औपचारिक शिक्षा आरम्भ हुई। घर पर ही अंग्रेजी का अध्ययन आरम्भ किया । खुर्जा के जे. ए. एस. हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। उससे पूर्ण हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथम परीक्षा भी पास कर ली थी। सन् 1931 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी. ए. के छात्र के रूप में प्रवेश हुए और यहाँ से एम. ए. तक शिक्षा प्राप्त की। अपनी आत्मकथा में नरेन्द्र लिखते हैं – "होश सँभालते ही मुझे समाज सुधार की धुन लगी। साथ ही राजनीतिक चेतना भी था। इस विषय में जानकी प्रसाद एंग्लो-संस्कृत हाई स्कूल, खुर्जा के तत्कालीन हेडमास्टर साहब श्री लक्ष्मीनारायण माथुर मेरे आदर्श थे। वह मेरे पूज्य हैं। मैं उनका प्रिय छात्र था। हाईस्कूल के अंतिम वर्ष में मैं जिले की नौजवान भारत-सभा का मंत्री था। इंटर कॉलेज भी खुर्जा में था, जिसे छोड़ते समय मैं कविता की ओर झुका, जिसकी प्रेरणा मुझे मेरे तत्कालीन अंग्रेजी के प्राध्यापक श्री महेश प्रसाद शुक्ल से मिली। वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र रहे थे और महादेवी जी एवं पंत जी के कविताओं के प्रेमी थे। इन दोनों की कविता मेरे लिए प्रेरणा स्त्रोत बनी। इंटर कॉलेज में इलाहाबाद के एक और भी छात्र थे वक्ता और राजनीतिशास्त्र के प्राध्यापक थे। मैं दोनों प्रध्यापकों की परोक्ष प्रेरणा से इलाहाबाद विश्वविद्यालय गया।"[49]

इलाहाबाद में ये हिन्दू बोर्डिंग हाउस (अब मालवीय छात्रावास) में रहने लगे। वहीं इनकी मुलाकात वीरेश्वर केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह से हुई जो कविता में रुचि भी रखते थे और एक-दूसरे को कविता-सृजन के लिए प्रेरित करते थे। इलाहाबाद में ही इनके कवि रूप का विकास हुआ। सन् 1931 में पहली कविता 'चाँद' पत्रिका में प्रकाशित हुई। इसी भवन मेला में स्वदेशी मेला लगा। इस मेले में पंत जी आए थे । वहीं उन्हें पंत जी से भी प्रेरणा मिली। 'भगवती चरण वर्मा' जो इलाहाबाद में ही वकालत कर रहे थे उनसे भी ये मिले। उनकी भी प्रेरणा और प्रोत्साहन से उन्हें बल मिला। सन् 1933 ई. इनकी एक कविता 'सरस्वती' पत्रिका में छपी। वह उस समय की एक स्तरीय पत्रिका थी । इससे इनकी

ख्याति बढ़ गई, लोग इन्हें जानने लगे। हरिमोहन शर्मा लिखते हैं – "शीघ्र ही जागरूक अध्ययनशील और भावुक कवि नरेन्द्र ने उदयमान नर कवियों में अपना प्रमुख स्थान बना लिया। लोकप्रियता में इनका मुकाबला हरिवंश राय बच्चन से ही हो सकता था। वैसे भी दोनों पंत जी के प्रशंसक होने के नाते एक-दूसरे के समीप आ गए थे। उस समय का जमाना गीतों की ओर बढ़ रहा था। नरेन्द्र गीत लसानी थे। नरेन्द्र और बच्चन, विशेषकर बच्चन नए कवियों के लिए 'टार्च लाइट' की तरह थे। उन्हीं की भाव और शैली को पकड़कर नई पीढ़ी आगे आ रही थी। लेकिन नरेन्द्र शर्मा ने अपनी शैली को बच्चन की शैली से अलग बनाकर प्रस्तुत किया।"[50]

नरेन्द्र जी ने पद्य लेखन के साथ, कहानी लेखन का कार्य भी किया। पत्रकारिता में रूचि होने के कारण सन् 1934 में प्रयाग से प्रकाशित 'अभ्युदय' के सम्पादकीय विभाग में कार्य किया। 'दैनिक भारत' के उप संपादक भी रहे। सन् 1934 में ही इनका काव्य संग्रह 'शूल फूल' प्रकाशित हुई। सन् 1934 में 'कर्णफूल'। इसके बाद निरन्तर लेखनी चलाते रहे और क्रमशः प्रभातफेरी, प्रवासी के गीत, पलाशवन, मिट्टी और फूल, हंसमाला, रक्तस्पंदन, अग्निशस्य, कदलीवन, प्यासानिर्झर, बहुत रात गए, मुट्ठी बंद रहस्य आदि की रचना की एवं ये सभी काव्य संगह प्रकाशित हुए। मनोकामिनी, द्रौपदी, उत्तरजय, सुवर्णा, सुवीरा इनके प्रबंध-काव्य हैं।

नरेन्द्र के साहित्य में पदार्पण का समय राजनीतिक उथल-पुथल का था। इसका प्रभाव उनकी रचनाओं पर भी पड़ा है। गाँधी एवं गाँधी विचारधारा से भी वे अछूते नहीं रहे। प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूप से गाँधी का प्रभाव उन पर पड़ा। अपने युग एवं परिवेश को वाणी देते हुए, अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह किया। अपने काव्य 'प्रभातफेरी' को उन्होंने राष्ट्र को समर्पित किया। 'प्रभातफेरी' नाम ही राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ा हुआ है। प्रभातफेरी नामक जागरण गीत में उस समय का धड़कन साफ सुनी जा सकती है। रूढ़ीग्रस्त

समाज में सामान्य जन की दुर्दशा देखकर उनका मन चीत्कार कर उठता है। किसानों, भिखारियों एवं कंगालों की दयनीय स्थिति से भी वे व्यथित हुए, तथा अपनी लेखनी प्रबल की।

सन् 1934 ई. में द्वितीय विश्वयुद्ध के आरंभ होने पर भारत में असंतोष फैल जाता है। तब युवा कवि भला कैसे चुप रहता। उन्होंने भी काव्य के माध्यम से लोगों को जागरूक करना आरंभ किया। 'मिट्टी और फूल' की कविताओं में नरेन्द्र अपनी यथार्थवादी दृष्टि की बेलाग अभिव्यक्ति करते हैं। कवि आत्मनिष्ठ प्रसंगों को जीवन और समाज के बृहत्तर संदर्भों से जोड़ने का प्रयास करते हैं। अब उनकी कविता युग-जीवन की ज्वलंत समस्याओं के विस्तृत मैदान में पहुँचती है। ये सामान्य जनता के दुःख दर्द को नजदीक से देखते हैं। अमीरी-गरीबी को निरा भाग्य का खेल नहीं मानते। वे कहते है कि यह इसी दुनिया की रचना है।''[51] राजनीतिक सत्याग्रहों में भी भाग लिया जिसके कारण इन्हें जेल यात्रा करनी पड़ी।

नरेन्द्र शर्मा ने फिल्मों के लिए गीत-लेखन का कार्य भी किया। 'हमारी बात', जेल यात्रा, पुल आदि लगभग 50-55 फिल्मों के लिए गीत लिखें। बम्बई में ही इनका विवाह हुआ। आकाशवाणी से जुड़े साथ ही 'विविध भारती' जैसे लोकप्रिय कार्यक्रम के जनक बने। प्रसिद्ध दूरदर्शन धारावाहिक 'महाभारत' के पटकथा लेखक एवं गीतकार भी रहे। 11 फरवीर, 1989 ई. को हृदयगति रूक जाने से उनका देहावसान हो गया।

''नरेन्द्र शर्मा अपनी भाव-प्रवणता, संवेदनशीलता, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के अंकन तथा सौंदर्य प्रेम की सहज अभिव्यक्ति के साथ हिन्दी जगत् में उपस्थित हुए थे। उन्होंने अपनी कविताओं-गीतों के माध्यम से सामान्य जन को अपने से जोड़ा था। साथ ही कविता को लोकप्रिय और स्तरीय बनाये रखने का प्रयत्न भी किया। इससे परवर्ती कवि-गीतकारों की पीढ़ी को प्रेरणा मिली।''[52]

हरिवंशराय बच्चन : 'बच्चन' मूलतः प्रेम ओर सौंदर्य के प्रति निसर्ग निष्ठा रखने वाले व्यक्ति है। इसलिए वे जीवन-शोभा के गायक बनकर अपनी काव्य-भाषा में उदित हुए हैं । उनके

समस्त काव्य के विषय में समसामयिक जीवन चिन्तन और संघर्ष है। वे कविता लिखने वाले कवि नहीं, बल्कि कविता को जीने वाले, कविता के हाथों पूरी तरह समर्पित कवि हैं। ''उनके काव्य और जीवन दोनों का रास्ता 'मनुष्य' की ओर ले जाने वाला रास्ता है। बच्चन की समर्पण कविता जहर को अमृत बनाने की एक अटूट साधना है। वे न हाला के कवि, न प्याला के , न बाद के न प्रतिवाद के वे एक मात्र मानवता के कवि हैं – उस मानव का जो प्यार भी करता है और नफरत भी, जो हँसता है और रोता भी, जो जीता भी है और मरता भी। बच्चन ने खुद कुछ नहीं लिखा उनका जीवन जो उनसे लिखवाता गया, वे लिखते गए, एक रूप में उन्होंने अपने जीवन का ही अविकल अनुवाद किया है, परन्तु यह अनुवाद इतनी सच्चाई और ईमानदारी से किया गया है कि उसे पढ़कर जीवन की छोटी से छोटी और ग्रह्य से ग्रह्य घटना को भी देखा जा सकता है। व्यक्ति मन की ऐसी कोन सी अनुभूति है जो बच्चन ने नहीं लिखी ? संक्षेप में बच्चन की कविता में बच्चन का व्यक्ति है ओर बच्चन के व्यक्ति में बच्चन की कविता।''[53]

बच्चन का जनम सन् 1907 ई. में 'प्रयाग' में हुआ ।''[54] इनके पिता का नाम बाबू प्रताप नारायण था। जो रूढ़िवादी रीतियों में उलझे निम्न मध्यवर्गीय परिवार के थे। बच्चन जी स्वयं लिखते हैं – ''मेरा जन्म सन् 1907 में एक निम्न मध्यवर्ग के रूढ़ि-रीति-नियम-अंधविश्वास विजड़ित परिवार में हुआ जो उस समय सक्रिय सुधारवादी आन्दोलन को भी सन्देह की दृष्टि से देखता था। सन् 1920 के असहयोग आन्दोलन और सन् 1930 के सत्याग्रह आन्दोलन के बीच मेरी भाव प्रवणता सचेत विकसित और प्रौढ़ हुई। राजनीतिक स्वतंत्रता के संघर्ष ने उस दशक के उस युवक को एक नया व्यक्तित्व, नई स्वच्छन्दता, नया आत्मविश्वास और जग-जीवन को देखने की नई दृष्टि दी। उसके विचार, आचार, व्यवहार, उद्गार सभी में एक नयेपन की झलक-लपक दिखाई दी। नए-पुराने की रगड़-झगड़ स्वाभाविक थी । सरकार पुलिस और देशभक्त स्वयं सेवकों की मुहिमों से हजारों

गुना अधक मुहिमें पुराने बाप और नए बेटे के बीच खड़ी हुई।''[55]

अक्षराम्भ प्रयाग में ही हुआ। वहीं की पाठशाला में स्कूली शिक्षा प्राप्त की। सन् 1925 ई. में 'कायस्थ पाठशाला' से हाईस्कूल पास किया और सन् 1929 में प्रयाग विश्वविद्यालय से बी. ए. पास किया। हाईस्कूल पास करने के बाद ही सन् 1936 में ही इनकी पत्नी श्यामा स्वर्ग सिधार गई। इस घटना से उनके जीवन में नया मोड़ आया। इनकी काव्यधारा ही बदल गई। मस्ती के स्थान पर, निराशा की भावना इनकी कविता में आ बसी। सन् 1939 तक अंग्रेजी विषय में एम. ए. ओर बी. टी. भी कर लिया। पहले ये अग्रवाल कॉलेज में प्रधानध्यापक रहे। फिर प्रयाग विश्वविद्याल में अंग्रेजी के प्रोफेसर रहे।

''अनेक वर्षो तक प्रयाग विश्वविद्यालय में अंग्रेजी विभाग में प्राध्यापक रहे (सन् 1942-1952 ई.) कुछ समय के लिए आकाशवाणी के साहित्यिक कार्यक्रमों से सम्बद्ध रहे। फिर विदेश मंत्रालय में सन् 1955 ई. में हिन्दी विशेषज्ञ होकर दिल्ली चले गये। विश्वविद्यालय के दिनों में कैम्ब्रिज जाकर (सन् 1952-54 ई.) अंग्रेजी कवि 'यीटस' पर शोध-प्रबंध लिखा जो काफी प्रशंसित हुआ।''[56] इसी दौरान पुनर्विवाह भी किया। जीवन की निराशा पुनः आशा में परिवर्तित हो गई। इन्दिरा गाँधी के समय ही संसद (राज्यसभा) के सदस्य भी मनोनीत किए गए। समवीर सिंह लिखते हैं – ''बच्चन जी प्रारम्भ से ही चेतना-सम्पन्न थे। व्याख्यान देना, कवि सम्मेलनों में भाग लेना इनकी बचपन से ही आदत बन गई थी। गाँधी जी की प्रेरणा ले राष्ट्रीय आन्दोलन में इन्होंने सक्रिय भाग लिया।''[57]

बच्चन को बाल्यकाल से ही हिन्दी-कविता से प्रेम था। उनका लेखन लगभग सन् 1930 से आरंभ हुआ – ''मेरा रचनाकाल लगभग सन् 1930 से आरंभ हुआ। 30 और 33 के बीच जो मैंने लिखा वह प्रारंभिक रचनाएँ पहले और दूसरे भाग में संग्रहित हैं। उस समय मैंने अपने आपको इसी राजनीतिक ओर सांस्कृतिक संघर्ष के बीच खड़े पाया। तेइस वर्ष का युवक, जीवन की उद्दाम पिपासा लिए, अपने उल्लास-प्रेरणा से परिचालित होने का अभिलाषी,

अपने स्वप्नों, आदर्शों के अनुसार सोचने जीने का इच्छुक और पल-पल पर विरोध, पग-पग पर बाधाएँ।''[58] ''उनकी पहली रचना 'तेरा हार' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी।''[59] इसमें काव्य प्रौढ़ता का अभाव है। इसके बाद उमर-खैयाम की रूबाइयों का प्रभाव आप पर परिलक्षित होता है। डॉ. शिवकुमर शर्मा लिखते हैं – ''मस्ती और अल्हड़पन से मधु गीत गाने वाले कवि बच्चन का हिन्दी जगत् से सर्वप्रथम ''उमर खैयाम'' की रूबाइयों के अनुवाद से हुआ। यह अनुवाद शाब्दिक न होकर हृदय रस से ओत-प्रोत है।''[60] सन् 1940 के आस-पास एक ऐसा भी समय आया जब बच्चन जी अधिक लोकप्रिय न कोई गीतकार था और न किसी अन्य भारतीय भाषा में ऐसा गायक कवि था। जब इन्होंने अपनी 'मधुशाला' शीर्षक रचना का कवि सम्मेलनों में गेय स्वर में पाठ करना शुरू किया, तब इनकी लोकप्रियता हिन्दी क्षेत्र से बाहर भी फैल गई। उसके बाद सन् 1935 में 'मधुशाला' का प्रकाशन हुआ, इसके साथ ही बच्च का नाम चारों तरफ छा गया। ये व्यक्तिवादी गीति कविता एवं हलावादी कवि के नाम से पहचाने जाने लगे।

व्यक्तिवादी कवि के रूप में बच्चन का परिचय देते हुए डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है– ''बच्चन इस धारा के सर्वोत्तम कवि हैं। इस धारा की समस्त संभावनाएँ और सीमाएँ बच्चन में पूँजीभूत है। बच्चन मूलतः आत्मानुभूति के कवि हैं, इसलिए इन की जिन कृतियों में आत्मानुभूति का सघनता है वे अपने प्रभाव में तीव्र एवं मर्मस्पर्शी हैं।''[61]

कवि बच्चन की कविता के संबंध में कविवर पंत कहते हैं – बच्चन की कविता का परिशीलन करना, भावनाओं के सहज मधुर अन्तःस्पर्शी इन्द्रलोक के सूक्ष्म सौंदर्य-वैभव में विचरण करना है, जहाँ एक ओर कल्पना के कुन्तल जाल छाया-पथों में सद्यः जीवन-शोभा की वर्षिणी मधुवाला मधुरसाप्ती एवं मानव हृदय की धड़कनों में चिर-परिचित पगध्वनि करती है, तथा 'है आज भरा जीवन मुझमें, है आज भरी मेरी गागर' बाला, आनंदमयी नृत्य करती हुई, जीवन-यौवन की हाला को अपनी रश्मि इंगित बाहों में, दिव्य-प्रेम के सुनहले अमरलोक में

उठाती हुई पाठक के हृदय को तादात्म्य के आनन्द ऐश्वर्य में मुग्ध कर देती हैतो दूसरी ओर मानव-चेतना के धूमिल क्षितिजों साहसिकों चपलाओं के आलोक-आलिंगनों में बँधे हुए विषाद निराशा तथा अन्धकार।''[62]

निशा निमन्त्रण, एकान्त संगीत, आकुल अन्तर, विकास विश्व, सतरंगिणी, हलाहल, मिलन यामिनी, प्रणय-पत्रिका आरती और अंगारे, उनकी मौलिक गीत रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त जन गीतों और 'मौलिक गीत रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त जन गीतों और 'मैकबेथ' का भी हिन्दी में रूपान्तरण किया है। अपनी जीवनी भी कई खण्डों में लिखी है। उन्होंने स्वानुभूतिजन्य सौंदर्य एवं प्रेम के गीत गाए हैं, पर उनका स्तर सीमित नहीं है, वह सामाजिक विसंगतियों का भी चित्रण करते हैं। गाँधी जी के स्वतंत्रता आन्दोलन से प्रेरित होकर अनेकों काव्य लिखे, जिसने राष्ट्रीय आन्दोलन में लोगों में जोश एवं उत्साह का संचार किया था। राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लने के कारण जेल भी गए।''[63] बच्चन जी ने जीवन के कितने ही उतार-चढ़ाव देखे। कितनी ही भारी असुविधाओं अभावों, मानसिक क्लेशों का अनुभव मिला। परन्तु वे अपनी मेहनत और प्रतिभा के बल पर हिन्दी साहित्याकाश में छा गए। अपनी अनुपम देन से हिन्दी-साहित्य को समृद्ध एवं उन्नत बनाया है।

त्रिलोचन : हिन्दी की प्रगतिशील यथार्थवादी काव्यधारा को विकसित करने वाले कवियों में त्रिलोचन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कवि हैं । जिन्हें हिन्दी कोश में भी कार्य किया। सन् 1952 ई. में इनकी नियुक्ति गणरासय इंटर कॉलेज डोभी, जौनपुर में अंग्रेजी प्रवक्ता के रूप में हुआ, वे वहाँ भी न टिके। उनको लगा उनकी साहित्य साधना में नौकरी बाधक बन रही है, अतः त्यागपत्र दे दिया। सन् 1953-54 ई. में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के 'हिन्दी, अंग्रेजी मानक कोश निर्माण में सहयोग दिया। वे इस कोश में प्रमुख उपसम्पादक के रूपमें कार्य किया ।

आपने विदेशी छात्रों को हिन्दी, संस्कृत एवं उर्दू की शिक्षा दी। सन् 1975 ई. में म. प्र. के तत्कालीन शिक्षामंत्री अर्जुन के बुलावे पर वहाँ गए और हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल में भाषा सम्पादक का कार्य किया। वहाँ भी दो-तीन वर्ष ही रहे। सन् 1978 ई. में हिन्द आ गये। यहाँ आने पर उर्दू-हिन्दी द्विभाषिक कोश परियोजना, दिल्ली विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में कार्य मिला। इस परियोजना में मई 1978 ई. से मार्च 1984 ई. तक कार्य किया। अनेकों बाधाओं एवं पीडाओं के बावजूद आप हिन्दी साहित्य की सेवा करते रहे।

त्रिलोचन का प्रथम 88 कविताओं वाला काव्य संग्रह 'धरती' का प्रकाशन सन् 1945 ई. में हुआ था। सैसे तो साहित्य जीवन का आरम्भ बनारस से ही हो गया था। कवि केदारनाथ ने शास्त्री जी से प्रश्न किया कि - "कविता का संस्कार पहले पहल आपमें कैसे जगा ?" इसके उत्तर में शास्त्री जी कहते हैं - "मेरे गाँव में वसन्त पंचमी से होली तक चौताल गाए जाते थे। हर चौताल के बाद 'उलारा' गाया जाता था। मेरे मन में कविता का संस्कार उसी को सुनते हुए पडा। यानी कविता मैंने लोक से सीखी, पुस्तक से नहीं[1]"उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ 'गुलाब और बुलबुल, दिगन्त ताप के ताए हुए दिन शब्द, उस जनपद का कवि, अरूधान, फूल नाम है एक, चैती आदि हैं।

त्रिलोचन का महत्व उनके द्वारा रचित 'सॉनेटस' के कारण हैं। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं - "त्रिलोचन की कविताओं का 'कैनवास' विस्तृत है - मानव, मानवीय अभावों, मानवीय संवेदनाओं और मानवीय मूल्यों के प्रति उनका सहज लगाव है। वे सही माने में विश्व-मानव की मंगलाशा के रचनाकार है। जीवन की रंगीनी में डूबने की अपेक्षा वे उसके अभावों का चितेरा बनना पसन्द करते हैं। उन्होंने हिन्दी कविता को, उन लोगों की ककविता स्वीकारा है जो श्रमजीवी हैं, जो अभावों से जूझकर भी अपराजेय है उनके गीत पैदल चलने वालों के गीत हैं, भूखे रहने वालों के गीत हैं।"[2]

गाँधीवादी प्रगतिशील कवियों ने जहाँ ग्रामीण शोषित, उत्पीडित जन को

अपनी कविता का विषय बनाया वहीं ग्रामीण-परिवेश और उसकी जन-संस्कृति के प्रति भी अपना गहरा लगाव प्रकट किया। सन्ध्या, प्रातः वर्षो, धूप, बादल ऋतुएँ, नदी, नाले,खेत-खलिहान, ग्रामीण, रीति-रिवाज आदि को भी उकेरा है। जहाँ तक त्रिलोचन की कविताओं का सम्बंध है उनका गाँव की धरती से निकट सम्बंध है। उन्होंने ग्राम प्रकृति के किसानी रूप और जन-संस्कृति का भरपूर चित्रण किया है। जात-पॉत, भेद-भाव, छूआ-छूत वर्गवाद, नारी की दीन दशा आदि को भी मुख्य विषय बनाया है।

भारत वर्ष में व्याप्त जातिवाद से वे अति क्षुब्ध हुए। उनके पास इतिहासबोध और कालबोध की अपार शक्ति है। समाज की कोई भी विसंगति उनकी निगाह हो। अस्पृश्यता, ऊँच-नीच, बाह्ण, हरिजन इत्यादि भेद-भाव को समाज का कोढ कहा है। नारी की विविध स्थितियों का चित्रण भी उन्होंने किया है। गाँधीवादी विचारों से पूरी तरह सहमत कवि त्रिलोचन, जीवन-संघर्ष तथा आत्मविश्लेषण के कवि हैं। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार - "इनकी कविताओं में बडी सदगी है और हर कविता में धरती की सोंधी गन्ध मिलती है।" उनके काव्य की जितनी व्यापकता है उतनी विविधता भी है।

शिवमंगल सिंह "सुमन" :- सुमन जी का नाम प्रगतिवाद और निम्नमध्यवर्ग के भाव बोध की परिणति है। जीवन का सत्य, यथार्थ, की पहचान और भविष्य का संकेत इनकी कविता की विषिष्टताएँ हैं। प्रायः इनकी कविता के दो रूप देखने को मिलते हैं - प्रथम दो छोटी-छोटी है जिमें कला और प्रभाव उल्लेखनीय होते हैं। दूसरी वे हैं जो बडी हैं और उपदेशात्मक हैं। कवि का अध्यापकीय व्यक्तित्व कविता पर बना हुआ है।

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के झगरपुर ग्राम में सन् 1961 ई. में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा गाँव की ही पाठशाला में हुई। ग्वालियर के विक्टोरिया कॉलेज से बी.ए. पास किए। एम. ए. और डी. लिट की उपाधि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्राप्त की। पढाई पूरी होने के बाद अध्यापन कार्य किया। लेकिन वे यहाँ ज्यादा दिन नहीं रहे उनकी नियुक्ति

नेपाल स्थित भारतीय दूतावास में सांस्कृतिक सहायक के रूप में हुई। 3 वर्ष तक नेपाल में वे रहे। वहाँ से लौटने के बाद सन् 1961 ई.में वे माधव कॉलेज, उज्जैन के प्रधानाचार्य बन गये। कुछ वर्षो बाद विक्रम विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त हो गए। इसी पद से आप सेवा निवृत्त हुए।

सुमन जी देहात में पले-बढे, फिर बनारस की शिक्षा-दीक्षा, नेपाल में हिमालय का दर्शन व सान्निदय इन सबने उन्हें बहुत प्रभावित किया। काव्य के प्रति रूझान तो बचपन से ही था। विद्यार्थी काल से ही कविताओं का सृजन करने लगे थे। देश की तत्कालीन स्थिति से भी वे अनजान न थे। राष्ट्रीय उतार-पढावों को उन्होंने भी अवलोका था। गाँधी के नेतृत्व में हुए असहयोग आन्दोलन में उन्होंने भी बढ चढ़ कर भाग लिया। राष्ट्रभक्ति पूर्ण काव्यों द्वारा जनता में जागृति भी उत्पन्न की। सुमन जी भारतीय दि्ष्ट सम्पन्न कवि हैं किन्तु साम्यवादी व्यवस्था और सिद्धान्तों का उनपर भी प्रभाव पडा। उनका प्रथम काव्य संग्रह "हल्लोल" है इसका प्रकाशन वर्ष 1. हिन्दी साहित्य कोश (2) धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 595 सन् 1939 ई. है। इसके बाद उन्होंने कई कृतियाँ निकाली जिनमें प्रमुख है - जीवन के गान, प्रलय सृजन, विश्वास बढता ही गया, पर आँखे नहीं भरी, विन्ध्य हिमाचल आदि।

सुमन के गीतों में वर्णनात्मकता भी है। उनकी कविताओं की विशेषता मानवीय समता पर आस्था और क्रान्ति के प्रति विश्वास है। प्यार, पीडा और प्रेम की गहरी प्रतीति भी उनकी कविताओं में पाई जाती है। गाँधी जी पर भी आपने कई कविताएँ लिखी है। किसान, मजदूरों, अस्पृश्यों को भी अपने से दूर नहीं रखा है। डॉ. नगेन्द्र ने उनकी कविताओं को दो तरह की माना है - "एक तो वे, जो गीत है या छोटी-छोटी सुगठित कविताएँ हैं, दूसरी वे, जो अधिक लम्बी और उपदेशात्मक है। उनके उपदरेशात्मक काव्य से लोग प्रेरित हुए और स्वतन्त्रता आन्दोलन में भरपूर सहयोग दिया। गाँधी का यह सेनानी गाँधीवादी विचारधाराओं का प्रतिपालक है। उसका काव्य भी उससे अछूता नहीं है।"

5. ख गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख काव्य :

युगाधार : यह सोहनलाल द्विवेदी द्वारा विरचित राष्ट्रीय काव्य चेतना का सोपान है जिसमें संकलित तैंतीस गीत युगीन गतिविधियों का काव्यवद्ध प्रतिवेदन प्रस्तुत करते है। इसका प्रकाशन वर्ष सन् 1944 ई. है। उस युग के सर्वाधिक महान व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे। महात्मा गाँधी और गाँधी-दर्शन समकालीन युगबोध का एकमात्र सुलभ वातायान। युगाधार द्वारा कवि इसी वातायान से पाठकों को युग-बोध कराने का दायित्व वहन किया है। द्विवेदी जी स्वयं लिखते हैं - "युगाधार में युग की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक जन क्रान्तिकारियों की चिनगारियाँ कैसे कहूँ-धर्म रेखाएँ है। मैं जानता हूँ कि जितना महान विषय मेरे सामने है उसकी तुलना में मेरी योग्यता नगण्य है। किन्तु फिर भी मैं इस आशा में कुछ बनता है लिखे जा रहा हूँ। कभी इस राख की चिनगारियों से वह आग्नेय काव्य प्रकट होगा जिससे युग का उज्ज्वल इतिहास स्वर्णाक्षरों में प्रदीप्त हो उठेगा।

युगाधार में संकलित गीत उपर्युक्त कथन की सार्थकता के प्रमाण हैं। बापू उनके द्वारा संचालित विभिन्न आन्पदोलन, उन आन्दोलनों के केन्द्रस्थल के प्रतिपाय है। प्रथम चार गीत गाँधीजी के गरिमा-मंडित व्यक्तित्व की विविध झाँकियाँ प्रस्तुत करते हैं। कुछ कुछ कृषकों, श्रमिकों एवं युवकों क आहवान में प्रवृत्त है। जागरण क्रान्ति अभियान और प्रयाण के स्वरों का निनाद गुंजरित है। गाँधीजी ने देशोत्थान हेतु कृषकों के कर्त्तव्य पालन को बहुत महत्व देते थे। उनके विचारों से शोषण को हेय माना। युगधारा के अन्य गीत भी किसी न किसी रूप में राष्ट्रीय-चेतना को जगाकर कर्मपथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं।

सेवाग्राम :- इसका रचनाकाल सन् 1946 ई. है। इसमें भी सोहनलाल द्विवेदी की राष्ट्रीय कविताएँ संग्रहीत हैं। यह जनता की भाषा में जनता के भावों का, जनता का अपना काव्य है। इसमें द्विवेदी जी द्वारा रचित भैरवी, युगाधार प्रभावी, पूजागीत की प्रतिनिधि रचनाएँ संग्रहित की गई है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के 77 वें जन्मदिवस के अवसर पर गीतांजलि के रूप में

प्रस्तुत यह काव्य संकलन युगवाणी और जनवाणी का सच्चा प्रतिनिधि कहा जा सकता है। गाँधी जी के माध्यम से कवि ने वस्तुतः राष्ट्र देवता के चरणों में ही यह काव्य-नैवैध समर्पित किया है। निःसंदेह मातृ पूजा के ये गीत-सुमन जन-मन वाही राष्ट्र चेतना की गद्य से सुरभित और अतःप्रेरित है। सेवाग्राम के विषय में डॉ. अमर नाथ झा लिखते हैं - "देश-प्रेम और देश-भक्ति तो पद-पद अनुप्राणित है। नवीनता के साथ-साथ प्राचीनता का सम्मिश्रण है। अहिंसात्मक जन-आन्दोलन की झलक इन कविताओं में है। फिर भी कवि को दृष्टिकोण संकुचित नहीं है। राष्ट्र की प्रधान प्रशंसनीय विभूतियों का गुणगान तो है परन्तु ऐसा नहीं कि किसी समुदाय अथवा समाज विशेष की उसमें कोई क्षति हो या अपमान हो।[73] " इस संग्रह में कवि का लक्ष्य विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक पक्षों में अतः संग्रहित भावात्मक ऐक्य और सामंजस्य के सूत्रों का साक्षात्कार करना रहा है।

'सेवाग्राम' में कुल सत्तानवें छोटे-बडे गीत हैं। विविध, विषयक ये गीत द्विवेदी जी की राष्ट्र एवं राष्ट्र धरोहर के रक्षक के रूप में दर्शाते हैं। प्राचीन का गौरव गान इसी बात की पुष्टि करता है। आधुनिकता की दौड में शामिल होकर उसी भीड में न खो जाये वहाँ से निकले व अपने अस्तित्व को पहचाने तभी राष्ट्र का कल्याण संभव है जैसी विचारों से ओत-प्रोत हैं, ये गीत। निश्चय ही गाँधी विचारधारा का पूर्णतः प्रभाव पडा है कवि एवं काव्य पर।

प्रभात फेरी :- सन् 1938 ई. में प्रकाशित यह काव्य संग्रह कवि नरेन्द्र शर्मा द्वारा प्रणीत है। प्रभात फेरी नाम ही राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से जुडा हुआ है। यही प्रभातफेरी नामक जागरण गीत में उस समय की धडकन साफ सुनी जा सकती है। कवि ने शुन्य में सत्य की खोज करने वाले भौतिकता के बंदी मानव को राष्ट्रीय जागरण का संदेश सुनाया है। इस संग्रह में ऐसी अनेक कविताएँ हैं जिनमें तत्कालीन क्रांतिकारी आन्दोलन की अनुगूँजे सुनी जा सकती है। 'भावी संसति' नामक कविता में साम्यवाद कृषकों को 'अंतर्रात्मा : के प्रति' में

किसान आन्दोलन की अंतर्ध्वनियाँ विद्यमान है। कवि अपने जर्जर समाज में पुनः प्राण-प्रतिष्ठा करना चाहता है- उसे बदलना चाहता है।

सामाजिक राजनीतिक चेतना से संसबद्ध कविताओं से नरेन्द्र शर्मा का स्वर यथार्थोन्मुख हुआ है। वह अब केवल अर्न्तमुखी नहीं रहे या रूढिग्रस्त समाज में सामान्य जन की दुर्दशा देखकर उसका मन चीत्कार उठता है। प्रेम एवं प्रकृति की कविताओं में भी आकुलता है। वे स्वयं लिखते हैं - "प्रभातफेरी में आपको जिस प्रभात का संगीत मिलेगा, वह मेरे कवि-जीवन, नव यौवन और मेरे मन में पहले-पहल अंकुरित होने वाले आत्मचिंतन का प्रभात है।"[74]

कुरूक्षेत्र :- युद्ध की समस्या को लेकर लिखे गए प्रबंध काव्यों में कुरूक्षेत्र (दिनकर) का स्थान बहुत ऊँचा है। कुरूक्षेत्र एक काव्यात्मक गीता है। जिसमें आध्यात्मिक चिन्तन के स्थान पर आधुनिक जीवन के प्रश्नों का चिन्तन है। [76] इसका रचनाकाल सन् 1946 ई. है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं - "दिनकर का कुरूक्षेत्र काव्य हमारे देश के चौथे दशक की भाव चेतना को चुनौती देने वाला चिन्तनपूर्ण काव्य है। अहिंसा बडी शक्ति है किन्तु हिंसा के प्रतिरोध के लिए वह कितनी सार्थक हो सकती है, यह विचारणीय प्रश्न है। कुरूक्षेत्र में भीष्म के सामने यही प्रश्न रखकर कवि ने अपने अन्तर्द्वन्द्व को वाणी दी है। कुरूक्षेत्र काव्य में हिंसा की सामुदायिक रूप से विजय पर दिनकर ने प्रश्नचिन्ह लगाया है।"[76]

कुरूक्षेत्र का प्रमुख स्वर क्या है ? इस उत्तर में इसे कोई प्रगतिवाद, कोई युद्धकाव्य, कोई समाजवाद, किसी ने मानवतावाद तो किसी ने गाँधीवाद कहा। इनमें से प्रमुख कौन सा है तो यही समझ में आता है कि प्रभाव सबका है लेकिन दिनकर ने विश्राम गाँधीवाद में आकर लिया है। पहले तो दिनकर ने गाँधीवाद को शंकापूर्ण दृष्टि से देखा है। लगता है पौरूषवाद, प्रगतिवाद, समाजवाद और युद्धवाद के समर्थन के लिए दिनकर ने कुरूक्षेत्र में गाँधीवाद का खण्डन करने की ठान ली थी, पर युद्ध की समस्या के विश्लेषण में दिनकर को

अन्ततः बापू के गाँधीवाद में ही शान्ति प्राप्त हुई। युद्ध समस्या के विश्लेषण में भीष्म और धर्मराज की चर्चा का सहारा लेकर गाँधेय मानवतावाद के शीर्ष पर हृदय का मणि मुकुट धरा है।

भगवद्‌गीता युद्धारम्भ गीता है तो कुरूक्षेत्र युद्धान्त गीता है। महाभारत की शान्ति पर्व की कथा को चुनकर दिनकर ने इस काव्य में युद्ध-शान्ति, हिंसा-अहिंसा, शान्ति-क्रान्ति, शोषण-पोषण आदि युगीन समस्याओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है और अन्त में स्नेह बलिदान देने वाले गाँधीवाद की जयजयकार ध्वनि गर्जित है। समूचे कुरूक्षेत्र में गाँधीवाद का हृदयवाद बोल उठा है। पुण्य की जय एवं पाप की पराजय गाँधीवाद की विशेष प्रवृत्ति है। कुरूक्षेत्र के धर्मराज पाप से प्राप्त विजय से विषण्ण हो प्राश्चित के रूप में राग-द्वेष से पुनर्युद्ध करना चाहते है।

कुरूक्षेत्र के भीष्म सामाजिक चेतना के प्रतीक है। उनमें भावुकता के स्थान पर तटस्थ चिन्तन है। इसलिए वे युद्ध की नियति के बार में बात करते हैं और कहना चाहते हैं कि व्यक्ति के संदर्भ में जो मूल्य है वे ही समाज के संदर्भ में दोष बन जाते हैं। भीष्म भी युद्ध के पक्षपाती नहीं हैं, किन्तु वे युद्ध की नियति की परीक्षा करते हुए कहना चाहते हैं कि समाज में जब तक विषमताएँ है, जब तक दो वर्गो के सुखों और सुविधाओं में आकाश-पाताल का अन्तर है, तब तक युद्ध की सम्भावना मिटायी नहीं जा सकती/ भीष्म के माध्यम से कवि ने आज के समाज के वैषम्य, विसंगति और भयानक विरूपता को उद्‌घाटित किया है। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं - कुरूक्षेत्र केवल युद्ध काव्य नहीं है, युद्ध के प्रश्न के बहाने भीष्म ने आज के सामाजिक जीवन के अनेक प्रश्नों को, अनेक सत्यों को छुआ है।[77]

इस प्रकार दिनकर युद्ध को अनिवार्य मानकर गाँधेय तप, करूणा, क्षमादि को व्यष्टि धर्म बताते हुए आशावाद एवं युद्ध से मुक्ति की घोषणा करते हैं।

रश्मिरथी :- प्रस्तुत खण्ड काव्य प्रगतिवादी कवि दिनकर द्वार प्रणीत है। इसका रचनाकाल

सन् 1952 ई. है।[78] कवि ने 'रश्मिरथी' में अपने मानवतावादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति प्रदान की है। वे सामाजिक व्यवस्था के प्रति गाँधीवादी आवेश के साथ अपना आक्रोश प्रकट किया है। विषमता, अनीति व अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाई गई है। संकुचित स्वार्थ संहारप्रियता, जाति-पाति, वर्ग-भेद आदि सामाजिक व्यवस्थाओं पर ऊँगली उठाई गई है। 'रश्मिरथी' एक ऐसा खण्ड काव्य है जिसमें गाँधीवाद के सामाजिक सिद्धान्तों को प्रश्रय दिया गया है।

'रश्मिरथी' का नायक कर्ण है। कर्ण के चरित्र के माध्यम से दिनकर ने ऊँच-नीच और जाति-भेद का उन्मूलन चाहते हैं। वे व्यक्ति के गुणों के उपासक है। जाति के आधार पर ऊँच-नीच के समर्थक नहीं। रश्मि के रथ पर चढकर आनेवाला नायक और कोई नहीं वरन् कर्ण है जो अपनी जाति से नहीं अपने सद्‌गुणों से प्रलय तक महान बना रहेगा। सूर्य क पुत्र होने के कारण दिनकर ने उन्हें रश्मि अर्थात् किरण और रथी अर्थात् रथ में सवार के रूप में चित्रित किया है। इसका कथानक महाभारत से अवश्य लिया गया है, लेकिन इसकी रचना में जो नवीनता परिलक्षित है, वह कवि 'दिनकर' की सशक्त लेखनी की परिचायिका है, जो गाँधीवाद से सर्वथा प्रभावित है।

दिनकर की यह कृति आदि से अन्त तक गाँधीवाद के तत्वों पर आधारित ही लगती है। कर्ण का चरित्र का प्रतिबिम्ब सा लगता है। दोनों के चरित्र में तप, बलिदान, आत्मबल, परिश्रम, संयम, सहनशीलता, कृतज्ञता, अहिंसा, प्रेम, लगन आदि सद्‌गुणों का संभार है। दोनो जाति भावना से परे समता के पक्षपाती, मित्रता पर मर मिटनेवाले नेता बने। डॉ. नगेन्द्र लिखते है - 'रश्मिरथी' दिनकर का कथानक महाभारत से लिया गया है किन्तु इसमें जयभारत की तरह सम्पूर्ण, महाभारत को गाने का मोह न होकर केवल कर्ण के प्रकाश में उद्‌घाटित किया गया है। कर्ण के जीवन में घटित प्रसंगों के सन्दर्भो में कवि ने आज के जीवन को अनेक प्रश्नों और संवेदनाओं को दृष्टियों और चिन्तन पद्धतियों को मूल्यों और

आकांक्षाओं को उद्‌घाटित किया है। कवि ने कुछ अन्य पात्रों जैसे-परशुराम और कुन्ती को भी नवीन मन:संघर्षो के बीच उपस्थित कर या यों कहिए कि सामाजिक व्यक्तिगत संवेदना कर्त्तव्य और राग आस्था और अनास्था के द्वन्द्व के भीतर से उभारकर-युगानुकूल नई छवि है।[79]

इस मानवतावादी काव्य में मानव की सर्वोच्चता की कामना पीडित मानवता की सेवा आदि प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन है। गाँधीजी के विचारों के अनुरूप कवि ने एक ऐसी समाज व्यवस्था चाही है, जिसमें मनुष्य के जाति व कुल को नहीं अपितु उसके गुणों को उसकी महानता को आधार बनाया जाए।

गीतफरोश : - भवानी प्रसाद मिश्र द्वारा रचित यह प्रथम काव्य है। उसकी प्रथम कविता 'शब्दों के महल तथा अन्तिम कविता गीतफरोश के अतिरिक्त अन्य सभी कविताएँ सन् 1930 ई. से सन् 1945ई. के बीच लिखी गई हैं। अन्तिम कविता के आधार पर संग्रह का नामकरण हुआ है। शब्दों के महत्व तथा कवि के सही दायित्व को दर्शाया है। गाँधी विचार धारा से प्रेरित यह काव्य गाँव, ग्रामीण, किसान, खेत, वन, पर्वत से सहानुभूति रखने वाला है। 'गाँव' नामक कविता में पूरी करूणा के साथ ग्रामीण दुर्दशा एवं दीनता का यथातथ्य चित्रण हुआ है। कृषक की विपन्नता एवं निरीहता इसमें मूर्तिमान हो उठी है। बिना दरवाजों की झोपडियों से धुँए से घुटता हुआ कृषक शोषण का ज्वलंत प्रमाण है। यह चित्रण सर्वहारा वर्ग के प्रति मिश्र जी के सच्चे मानवीय प्रेम का परिचायक है। इन कविताओं में तत्कालीन राजनीतिक जीवन का प्रभाव भी चित्रित है। देश की जनता में जागृति की लहर, अंग्रेजों का दमन चक्र, पूँजीवाद के विरूद्ध आक्रोश तथा भारतीय कवि की आस्था एवं आशावादिता इनमें एक साथ व्यक्त हुई है।

समग्रतः इस काव्य संकलन में मिश्र जी ने विविध आयामों का परिचय दिया है। जो पूर्णतः गाँधीवाद से प्रभावित है । कही सामाजिक वैषम्य कवि के हृदय में करूणा एवं

सहानुभूति का संचार करता है तो कहीं प्रकृति के विविध उपादानों के माध्यम से उसकी सुन्दरता को उजागर करता है।

उर्वशी :- सन् 1961ई. में प्रकाशित यह दिनकर की नवीनतम प्रबंध कृति है, जो ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित है। इसमें कवि ने उर्वशी और पुरूरवा के प्राचीन आख्यान को नये अर्थ से जोडना चाहा है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं - उर्वशी जिसे कवि ने स्वयं 'काव्याध्यात्मक' की उपाधि प्रदान की है। दिनकर की कविता को एक नये शिखर पर पहुँचा देता है।[80] इस काव्य के प्रमुख पात्र पुरूरवा और उर्वशी अलग-अलग तरह की प्यास लेकर एक-दूसरे के करीब आये हैं। पुरूरवा धरती पुत्र है और उर्वशी देवलोक से उतरी हुई नारी। पुरूरवा के भीतर देवत्व की तृषा है और उर्वशी सहज निश्चित भाव से पृथ्वी का सुख भोगना चाहती है। यह प्रेम और सौन्दर्य का काव्य है। इसमें प्रेम व सौन्दर्य का विधान कवि ने बहुत व्यापक धरातल पर किया है। यह प्रेम गाँधीवाद की ही देन है। उपेक्षित को समुचित स्थान दिलाने का प्रयास दिनकर ने हमेशा किया है।

जयगाँधी :- सन् 1956 ई. में सोहनलाल द्विवेदी की राष्ट्रीय रचनाओं का बृहत प्रकाशन हुआ जिसका नाम 'जय गाँधी' नाम रखा गया।[81] गाँधी जयन्ती (2 अक्टूबर, 1956ई.) के अवसर पर प्रकाशित यह गीत-संग्रह द्विवेदी जी की उन पूर्व रचित कविताओं की स्मृति सजीव करता है जो भिन्न-भिन्न समयों पर राष्ट्र कण्ठ का हार बन चुकी है। इसे हाथ में लेते ही महामहिमामय गाँधी-युग अपनी समस्त रंगीनियों, सफलता-असफलता, आशा और दृढता के साथ आँखों के सामने मूर्तिमान हो उठता है।[82] इस संग्रह में चौबीस गीत हैं जिसमें महापुरूषों के गुणगान के साथ ग्रामीण भारत एवं स्वदेशी आन्दोलन सम्बंधी विभिन्न प्रसंगों के चित्र उकेरे हैं।

गाँधी पंचशती :- सन् 1969 ई. में प्रकाशित यह काव्य भवानी प्रसाद मिश्र की प्रसिद्ध कृति है। इसमें सन् 1930 से लेकर सन् 1968 तक की कविताएँ संग्रहीत है। गाँधी

पंचशती नाम होने पर भी सभी कविताएँ गाँधी से सम्बन्धित नहीं है तथापि काव्य में समग्रतः गाँधीवादी दर्शन ही रूपायित हुआ है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने इस सम्बंध में कहा है - इस शताब्दी को सारस्वत श्रद्धा के रूप में ग्रहण करने वालों में भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य-कृति 'गाँधी पंचशती' का मूर्धन्य स्थान है। भाव व विचार के क्षेत्र में गाँधीवादी विचार को स्वीकार करने वाले श्रद्धालुओं के साथ भावना और कल्पनालोक में गाँधी जी के जीवन की गौरव गाथा को अंकित करने का श्रेय भवानी भाई को ही प्राप्त है। [83] इस काव्य संग्रह में 200 विचार कणिकाएँ 'वचन छाया' शीर्षक से संकलित की गई है। जिन्हें कवि के अनुभूत सत्य का दर्पण कहा जा सकता है। गहन चिन्तन तथा तीव्र अनुभूत से अनुस्यूत ये छोटी रचनाएँ अपने छोटे कलेवर में विराट विस्तार तथा अत्यधिक प्रौढता लेकर चली है। डॉ. संतोष कुमार तिवारी लिखते हैं - चाहे इन्हें हम श्लोक धर्मा रचनाएँ कहें, चाहे हाईकू, चाहे मिनी कविताएँ, ये गाँधी के विचारों का नवीनता है या यों कहिए कि गॉधी दोहन हैं। शैली सूत्रात्मक है। ये अनमोल वचन या चिंतन मोती अनुभवों में निखर कर विभिन्न संकेतों और दृष्टांतों में बँधकर सरल शब्दों में सटीक अभिव्यक्ति पा सके हैं। जीवन इन्हीं रेखाओं और वचनों की सांकेतिक छाया में जीने योग्य बन सकता है। ये अनुभव सम्पन्न रचनाएँ इस संग्रह की मूल्यवान धरोहर हैं। [84] इन कविताओं में देश की भाषाई मानवमूल्यकारी, समतामयी दुखस्था के सन्दर्भो को स्थितियों को लेकर कवि में एक आक्रोश का भाव तो उभरा ही है, साथ ही व्यंग्य प्रहार तीव्र हुआ है। अतः गॉधीवाद और उसके प्रति समर्पित भाव रखनेवाले इस कवि के सरोकार जीवन की सम्पूर्णता और विश्व मानवता में आस्था रखने वाले हैं।

मधुशाला :- बच्चन की प्रसिद्ध काव्यकृति जो सन् 1935 ई. में प्रकाशित हुई। अकेले इस एक ग्रन्थों ने जिस प्रकार बच्चन को इतना लोकप्रिय बनाया, वैसा उदाहरण इतिहास में विरले ही मिलेगा। [85] डॉ. मिताली भट्टाचार्जी लिखती हैं - प्रारंभ में बच्चन की कविता की अन्तर्रात्मा न पहचानकर पाठकों ने उन पर मधु प्रचार और श्रृंगार की अति का आरोप किया

था। शनै-शनै जब वस्तु-तत्व प्रकाश में आया तो साहित्य-लोक को उसमें गाँधेय भावालोक दृष्टिगोचर हुआ। हाँ, स्वयं बच्चन ने भी मान लिया था कि वे वासना से मुक्त नहीं है, किन्तु उस वासना के बीच में भी वे उदात्त भावों की उपासना करते रहे। परिमाणतः युग की विभूति का आकर्षन अभिव्यंग्य में आया। 'हालवादी' कविता खैयाम के मधुवाद, भारतीय आनन्दवाद और गाँधीवाद का सुन्दर समन्वय है। मधु के नाम पर बच्चन ने धर्मसापेक्ष, मानवतावाद तथा साम्य-मूलक गाँधीवाद का संदेश दिया है। साम्यवाद मधु काव्य को परिलक्षित अभिव्यंग्य है। [86]

पर आँखे नहीं भरी :- शिवमंगल सिंह 'सुमन' द्वारा रचित इस काव्य संकलन में गाँधी जी पर लिखित छः कविताएँ हैं। गाँधी जी की 79वीं वर्ष गांठ पर नौआखाली यात्रा के समय रचित युग सारथी गाँधी के प्रति शीर्षक कविता एक लम्बी रचना है। जिसमें कवि ने भव्य कल्पना कर गाँधी को विविध सम्बोधनों से सम्बोधित किया है और यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि महात्मा जी वास्तव में युग-सारथी थे। धरती पर फैली हिंसा , ईर्ष्या, दानवता के गरल को पीने वाले गाँधीजी नीलकंठ से किसी प्रकार कम नहीं हैं। वे अहिंसा द्वारा मानवता के पाप धोने का प्रयत्न करते हैं।

सूत की माला :- गाँधी जी के निर्वाण के पश्चात श्रद्धांजलि के रूप में लिखी बच्चन जी की कविताएँ 'सूत की माला' में संग्रहित हैं। गाँधी के बलिदान से सम्बन्धित एक सौ ग्यारह कविताएँ इस संग्रह में संकलित हैं। गाँधी की दिव्यता का वर्णन, उनकी देश को देन, उनका अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से महत्व, देशवासियों को उपदेश कि वे गाँधी जी के मार्ग का अनुसरण कर आदि इन कविताओं के विषय हैं।

धरती :- त्रिलोचन शास्त्री द्वारा रचित यह कविता संग्रह सन् 1945 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कुल 88 कविताएँ संकलित हैं। कविताओं में कवि की तीन मूल प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती है। (1) प्रेम भावना सम्बंधी (2) प्राकृतिक सौन्दर्य सम्बंधी (3) सामाजिक

चेतना सम्बंधी। गाँधी विचार धारा से प्रभावित 'धरती' के गीतों का आधार-क्षेत्र बहुत अधिक व्यापक है, जिनसे मात्र काव्य-सामर्थ्य ही नहीं प्रकट होती, वरन् जीवन के विस्तृत दायरे के विभिन्न भागों का काव्यात्मक आकलन करने की क्षमता भी प्रकट होती है। कवि की 'धरती' सहजता का आधार है। इसमें न तो कहीं कृत्रिमता है और न शब्द जाल। अपने जीवन के सहज अनुभवों को कविता में पिरोया है।

बापू :- 'बापू' दिनकर द्वारा रचित काव्य है। इसका प्रथम संस्करण जून 1947 में प्रकाशित हुआ। द्वितीय संस्करण के पूर्व ही गाँधी जी का स्वर्गवास हो गया। अतः बापू पर रचित दिनकर जी की शोकपूर्ण रचना भी इसमें सम्मिलित की गई। इस काव्य में - बापू, महाबलिदान, बज्रपात, अघटन घटना, वया समाधान आदि कविताएँ हैं। हिंसा और विध्वंस के समर्थक कवि दिनकर गाँधीजी की नोआखाली-यात्रा की सफलता देखकर इतने अधिक प्रभावित हुए कि उनका अब तक का आक्रोश द्रवित होकर करूणा और श्रद्धापूर्ण हो गया। वे गाँधी की आध्यात्मिक शक्ति तथा उसकी ऊँचाई तथा गहराई का वास्तविक परिचय हो गया।

'बापू' काव्य की प्रेरणा देश की व्यथापूर्ण परिस्थिति, हिंसा का प्रचण्ड तांडव, रक्तपात तथा शान्तिदूत गाँधी का ध्रुव-संकल्प और उसकी सफलता है, जिनके सामने दिनकर नतमस्तक हैं।

खिचडी विप्लव देखा हमने :- यह प्रगतिशील कवि नागार्जुन द्वारा रचित काव्य है। इसमें सन् 1964 ई. से लेकर सन् 1979 ई. तक की रचनाएँ संकलित है। ये कविताएँ गाँधीवादी विचरधारा से प्रभावित है। अपने अनुभव के बल पर नागार्जुन इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि देश की दरिद्रता का उपचार करने की जगह इस कोढ पर मणिमय आभूषण का श्रृंगार करने वाला समाज अमानवीय है। इस प्रकार अमानवीयता पर उन्हें रोष है जो कहीं व्यंग्य में ढलकर व्यक्त हुआ है। कहीं चुनौति के ललकार के स्वर में प्रकट हुआ है, वह कहीं इस अमानवीय शासन सत्ता के राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रतिनिधियों का उपहास करते हुए

सामने आता है, कहीं प्रकटतः आदर-श्रद्धा और मंत्र-कविता का रूप लेकर उभरता है। कवि की काव्य-चेतना का यह पक्ष जनजीवन के साथ उनकी सक्रिय हमदर्दी जुडी है। वे खून सने समाज में बदलाव चाहते हैं। वे वास्तव में असंख्य निरीह और पीडित और राजनीतिक विद्रूपता के चक्र में घिरी जनता के प्रखर अभिव्यक्त सहचर थे।

5. ग गाँधीवादी चेतना की अभिव्यक्ति :- प्रगतिवादी कवियों की दृष्टि जहाँ एक ओर साम्यवादी विचारधार के पक्षधर हैं तो वहाँ दूसरी ओर वे भारतीय जीवन के व्याख्याता गाँधी जी के विचारों से प्रभावित होकर एक विराटलक्ष्य की ओर बढते हैं। गाँधीवादी सिद्धान्तों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया तथा स्वयं भी उनको अपनाया। इस सिद्धान्तों को कवियों ने सामाजिक रोगों का स्थायी निदान माना है।

सत्य :- सत्य गाँधीवाद की आधारशिला है। गाँधीवादी कवियों ने भी गाँधी के समान जीवन में सत्य अपनाया और अपनी रचनाओं के माध्यम से सत्य का समर्थन किया। प्रगतिवादी कवियों में अनेक ने सत्य के पारमार्थिक महत्व को स्वीकार किया है। उन्होंने प्रत्येक स्थिति में सत्य के ही ग्रहण और आचरण को सर्वोपरि मूल्य मानें। उन्होंने प्राण देकर भी सत्य की रक्षा करने का सुझाव दिया है। गाँधी जी ने कहा था कि सत्य ही ईश्वर है, इसी सत्य को उन्होंने अपने जीवन और राष्ट्र की आत्मा में खोजा। इसी सत्य को उनके अनुयायी सोहनलाल द्विवेदी ने अपने काव्य के भीतर से उपलब्ध किया। यह सत्य उनके काव्य में 'युग का सत्य' बन गया। उनके मतानुसार सत्य मानव जीवन का आत्मबल है। वह कायरता नहीं है। यह संसार कायरों के लिए नहीं बना। यदि हमें संसार में रहना है, संघर्ष करना है और शक्ति के आँचल में शिलालेख लिखना है, तो हमें कायरता नहीं, आत्मबल का सहारा लेना पडेगा। कवि ने अपने-अपने 'युगावतार गाँधी' के सत्यबल व्यक्तित्व का अमिट चित्र खींचा है :-

> कँपता सत्य, कँपती मिथ्या, बर्बरता कँपती है थरथर।

कँपते सिंहासन, राजमुकुट कँपते, खिसके आते भू पर।[87]

'बापू के प्रति' शीर्षक कविता में उन्हें करूणा का प्रवाह और सत्य का गंधवाह कहकर संबोधित किया है :-

तुम करूणा के पावन प्रवाह, तुम अमर सत्य के गंधवाह। [88]

नरेन्द्र शर्मा ने सत्य को शाश्वत, निभ्रान्त, उद्‌बोधक और इष्ट माना है -

कौन सत्य को खा सकता है ? -धैर्य शर्त, भच-भ्रान्ति व्यर्थ है
विश्वासी के पग न डिगें बस-यहाँ सत्य, संशय अनर्थ है
जाएगा जब समय, सत्य हो हमें जगा भी देगा तत्क्षण,
हम ही उसके हाथ-पाँव हैं, सत्य इष्ट ; एक मात्र प्रयोजन। [89]

शर्मा जी के अनुसार सत्याभिलाषी देवता-रूप गाँधी ने जन-हितार्थ क्या-क्या नहीं किया :

तुम अमृत सत्य के अभिलाषी निर्भीक संत,
पर मर्त्य लोक कल्याण-हेतु चिर आशंकित ममता अनन्त
जनहित के लिए असत्यों से की संधि, शम्भु, विषपान किया।
जनहित के लिए, देव तुमने-क्या नहीं सहा ? क्या नहीं किया। [90]

जिस सत्य को गाँधीजी ने ईश्वर कहा है, भवानी भाई के काव्य में इस सत्य की अनेकशः अभिव्यक्ति हुई है। मिश्र जी की उस असीम परमात्मा में गहन आस्था है। वे उस अज्ञात सत्ता से अपने को अभिन्न मानते हैं। उन्होंने उस अज्ञात, अविजित शक्ति की स्तुति में अनेक कविताएँ लिखी हैं। मंगलाचरण में वे गाँधी जी के छिन्न-भिन्न स्वप्न को सँवारने के लिए प्रार्थना नहीं, सत्याग्रह का स्वर अपनाते हैं :-

प्रार्थना के स्वर तुम्हें लगते हैं अच्छे
किन्तु मेरा आज का स्वर प्रार्थना का स्वर नहीं है
सत्य का आग्रह लिए हूँ आज अपने प्राण में मैं।[91]

विश्व में सत्य की ही सत्ता है। सत्य के स्वभाव में ही बल होता है। अतः सत्य के साधक को किसी से भयभीत होने की कोई बात ही नहीं है -

सत्य सदा अपराजित, तन में उगते उजले तारे,

आघातों से डिगा सका है, कौन सहिष्णु अटल को। [92]

इस प्रकार गाँधी जी ने सत्य को जिस शिवत्व तक पहुँचाया कवियों ने उसी के अनुरूप काव्यमय करने का सफल प्रयास किया है।

अहिंसा :- 'अहिंसा परमो धर्मः' उक्ति की गूँज युगों से प्रत्येक दिशा से प्रतिध्वनित होती रही है। ईसा, बुद्ध, महावीर आदि से अहिंसा सिद्धन्त को धर्म का ही अमर रूप घोषित किया है। अहिंसा का ही अवलंबन कर बापू ने एक विशाल आन्दोलन का बीरा उठाया और उसमें पूर्णतःसफलता भी प्राप्त की। यह अहिंसा किसी विशेष व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं अपितु यह एक सामूहिक शक्ति है। गाँधीवाद अहिंसा का पर्याय है और उसका उद्देश्य सामूहिक हित है। अहिंसा रूपी वीर धर्म का संबल लेकर कठोरता को जीता गया। इस अस्त्र के आगे ब्रिटिश भी झुकने के लिए बाध्य हुई। इस अस्त्र में लाखों तलवारों को मिटाने की ताकत है। इसी अस्त्र को प्रगतिवादी कवियों ने भी अपनाया और इसका वर्णन अपने काव्य में किया।

सोहनलाल द्विवेदी की रचनाओं में गाँधीवाद अद्यांत प्रेरक रहा है। भैरवी की प्रथम कविता में ही आत्म-बलिदान की भावना व्यक्त हुई है। युगाधार के वक्तव्य में अहिंसात्मक जन-क्रांति को भारत वर्ष के तपोत्याग एवं तेज का अपूर्व युग कहा गया है। 'बापू' कविता में अहिंसात्मक आन्दोलन के कर्णधार की निर्भयता का विवेचन है। युगावतार में अभय प्रदान की कामना है। अहिंसात्मक युद्ध के लिए कवि की ललकार है :-

न हाथ एक शस्त्र हो, न साथ एक अस्त्र हो,

न अन्न, वीर, वस्त्र हो हटो, नहीं डटो वहीं

बढे चलो, बढो चलो। [93]

प्रगतिवादी कवि नरेन्द्र शर्मा की आस्था मार्क्सवाद पर हो गयी थी परंतु पंत की तरह ये अहिंसक मार्क्सवादी ही रहे हैं। इनकी आस्तिक भावना इन्हें गाँधीवादी बना देती है। यही कारण है कि कौसानी के प्राकृतिक वैभव एवं प्रशांत वातारण में निमग्न होते ही उन्हें ईश्वर का स्समरण होता है और गाँधी के स्वर में गा उठते हैं -

नभ ज्यों योगी का निर्मल चित्, है धरा मौन ज्यों विनत भक्ति,
बापू के श्रीमुख से निकला-सतकर्म, अहिंसा, अनासक्ति।
यह कौसानी, वह कौसानी, वह कौसानी मिल गई मुझे।
मैं महाभाग, बापू के मन की कौसानी मिल गई मुझे। [94]

केवल यह नहीं कवि ने गाँधी की अहिंसा का उल्लेख मात्र किया, अपितु गाँधीवाद को आत्मसात करते हुए अहिंसा को पूर्णतया समझाया है। उनके मतानुसार क्रान्तियाँ तो संसार में अनेकानेक हुई, किन्तु गाँधी जी ने अहिंसक क्रान्ति द्वारा इतिहास में एक नूतन अध्याय का श्री गणेश किया।

क्रान्तियाँ जग में हुई अब तक कई
पर अहिंसा-क्रान्ति की संज्ञा नई, शैली नई।
साध्य-साधक और साधन में न हो व्यवधान जब,
क्रान्ति तब मंगलमयी करूणामयी। [95]

गाँधी रूपी ज्योति पुरूष के उद्भव से अहिंसा और स्नेह के स्रोत ही फूट पडे। घृणा, द्वेष, बैर, ईर्ष्या का स्थान प्रेम, स्नेह एवं मित्रता ने ले लिया -

तुम समस्त ज्योतिर्मय दिसवों के ज्वलन्ततम आत्मज्ञ जैसे
तुम उतरे फट गया अँधेरा युगों-युगों का
x x x x x
निष्क्रिय था जो शब्द अहिंसा वह सक्रिय हो गया

प्राण पड गए प्रेम में।[96]

वास्तव में रक्तपात रहित क्रान्ति ही विश्व-कल्याण के लिए उपयोगी है। परन्तु यह तभी संभव है जब मनुष्य अहिंसा के मर्म को समझ ले :-

एकता सब धर्मो का धर्म
अहिंसा ही जीवन का मर्म
सत्य की सेवा हो, सत्कर्म
विश्व में हो मंगल कल्याण।[97]

नरेन्द्र शर्मा ऐसे व्यक्तियों को सावधान भी करते हैं जो अहिंसा को दीनता मानते हैं अथवा अहिंसा का भली-भाँति पालन नहीं करना चाहते :-

यदि अहिंसा सबल के प्रति और हिंसा निर्बल से,
हार होगी वह अहिंसा देश की।
यदि अहिंसा अरीति थी, या दीनता की देन थी,
तो न सत्याग्रह हुआ जग में सफल।[98]

कवि त्रिलोचन के बापू का 'सर्वे भवन्तु सुखिन', वाला सर्वोदय सत्याग्रह, सत्य, नैतिकता, समाजवाद तथा अहिंसा वाला सिद्धान्त आकृष्ट करता है। हालांकि उनका मन बापू के मन से मेल नहीं खाता लेकिन, फिर भी उनका अभाव उसे खलता है।

बापू तुम होते तो कितना अच्छा होता ! बिना तुम्हारे सुना
सा लगता यद्यपि तुमसे मेरे मन का मेल न होता। जन्मजात जो विद्रोही है
पर जगता है। वह विद्रोही का रूप तुम्हारा जो उगता है।
अब भी पथ पर नहीं वही शुर की धारा है।
ललकारा है। चारण नहीं बनेगे आगामी मसजिवी उच्च वर्ग के,
वर्गहीन होगा समाज यह। पूज्य रहोगे उस समाज में पर तुम अहरह।[99]

गाँधी के महान व्यक्तित्व से प्रेरित होकर ही तो संसार उनको अनुसरण करता है -

चल पडे जिधर दो डग पग में, चल पडे कोटि पग उसी ओर

पड गई जिधर भी एक दृष्टि, पड गये कोटि दृग उसी ओर। [100]

अंततः अहिंसा का सिद्धान्त गाँधीवाद की आधार शिला है। स्वातंत्र-आन्दोलन ने अहिंसा के अस्त्र को धार दे दी। फलतः उस काल के प्रायः सभी कतियों ने किसी न किसी रूप में उसे अवश्य स्वीकार किया है।

सत्याग्रह :- गाँधी जी ने देश को स्वतंत्र कराने के लिए विविध योजनाओं का निर्माण किया था। उन सबका उद्देश्य एक ही था स्वतंत्रता प्राप्ति। गाँधी के सत्य-अहिंसा तत्वों का रचनात्मक अथवा कर्ममय रूप 'सत्याग्रह' है और उसके द्वारा सर्वोदय की साधना करने वाला साधक सत्याग्रही। सत्याग्रह रूपी यह अस्त्र हृदय-परिवर्तन पर अवलंबित और आत्मबल का प्रतीक है। गाँधी जी ने अन्याय का प्रतिरोध करने के लिए ही इस पद्धति का आविष्कार किया था जिसमें प्रतिपक्ष को प्रेम के बल पर जीता जा सके। गाँधी जी इसे आत्मत्याग का चिर प्राचीन नियम मानते हैं। सत्याग्रह और उससे उद्भूत असहयोग तथा सविनय अवज्ञा, कष्ट सहन की विधि के नये नामों के अतिरिक्त कुछ नहीं। डॉ. विनय मोहन शर्मा के शब्दों में - "गाँधीवाद युद्ध के स्थान पर सत्याग्रह है। लेकिन यह आग्रह विरोधी के नाश अथवा उसकी किसी प्रकार की हानि करने की प्रवृति को प्रश्रय नहीं देता। गाँधीवाद सत्याग्रह द्वारा विरोधी के हृदय-परिवर्तन में विश्वास करता है।" [101]

सोहन लाल द्विवेदी के काव्यग्रन्थ भैरवी और युगाधार में संकलित अनेक कविताओं का प्रणयन सत्याग्रह आन्दोलन के प्रभाव स्वरूप हुआ। वस्तुतः गाँधी जी का सत्याग्रह जन-आन्दोलन था। गाँधी जी के पीछे-पीछे अनेकों सत्याग्रही चल पडे नव युग का संदेश देने :-

ये कोटि-कोटि चल पडे किधर ? नव यौवन का आवेश लिए।

यह कौन चला आता पथ पर नव युग का नव संदेश लिए। [102]

नरेन्द्र शर्मा भी अपने काव्य में सत्याग्रहियों को प्रेरित करते कहते हैं -

श्वास-श्वास में द्वंद्व छिडा है
जो न निमिष भर थमता !
रक्तपात से नहीं रूके की
गति पर मानवता की। [103]

कवि को पूर्ण विश्वास है कि ये सत्याग्रही अपनी क्रान्ति से नव-जागृति लायेंगे और अन्ततः जीवन की जीत होगी :-

गीत का दीपक सजा दो। दीप्त गागृति के स्वरों से।
उर जल दपट पर लिखो फिर। दामिनी के अक्षरों से। [104]

भवानी प्रसाद मिश्र सत्याग्रह में पूर्ण आस्था रखते थे। उनके मतानुसार सत्याग्रही को अपने आचरण में सत्य को उतारना पडता है :-

प्यार से सच से तो अपने काम में उसको उतार
है बहुत मुमकिन कि दो दस, बार तू जायेगा हार। [105]

सोहनलाल द्विवेदी जी 'कुणाल' के माध्यम से सत्याग्रही का सहनशील, लोकसेवी, धैर्यवान, सर्वसद्भाव एवं निःस्वार्थ कर्त्तव्यपरायणता जैसे आदर्शों का संचार करने को कहते हैं -

सह सके जो नग्न तन पर, शीत वर्षा धाम,
हो कठिन पाषण सा जिसका सुदृढ व्यक्तित्व। [106]

स्वतन्त्रता संग्राम में सत्याग्रहियों ने जो योगदान दिया उससे भावुक हृदय कवियों का प्रभावित होना स्वाभाविक था। इसलिए कवियों ने बलिदान सत्याग्रहियों के उत्साह और बन्दी सत्याग्रहियों की सहिष्णुता के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। ये सभी कविताएँ सत्याग्रहियों के अहिंसात्मक ओज से दीप्त है।

साम्प्रदायिक एकता :- गाँधी जी ने अपने अठारह सूत्री कार्यक्रमों में साम्प्रदायिक एकता को प्रथम स्थान दिया। यह वह समय था जब हिन्दू मुस्लिम एकता साम्प्रदायिक प्रश्नों को लेकर पडी गुत्थियों में सर्वाधिक उलझी हुई थी। गाँधी अन्त तक इस समस्या को हल करने में लगे रहे। वे साम्प्रदायिकता के घोर विरोधी थे तथा संसार के सभी धर्मो की समता में विश्वास रखते थे। उनका विश्वास था कि इस देश में हिन्दू-मुस्लिम सद्भावपूर्वक साथ-साथ रह सकते हैं। गाँधी जी की इसी बात का प्रभाव हिन्दी कवियों पर पडा और उन्होंने अपने-अपने काव्य के माध्यम से उनसे आग्रह करने लगे।

सोहनलाल द्विवेदी ने 'प्रभाती' की गाँधी कविता में गाँधी के विराट व्यक्तित्व में कृष्ण, पैगम्बर और बुद्ध को समायित किया है। वे धर्म के बाह्य प्रतीक, मंदिर, मस्जिद आदि से ऊपर उठने की बात करते हैं। हिन्दू-मुसलमान दोनों से निवेदन करते हैं कि अपने को पहचाने और देश को बचा लें। [107]

मिश्र जी में भी साम्प्रदायिक एकता के भाव की गहरी छाप है। सन् 1946 ई. में मुस्लिम लीग द्वारा एक अलग देश की माँग पर वे प्रतिक्रिया स्वरूप लिखते हैं -

बडा जोर है माना भाई, तुम निष्ठुर हो जाना भाई
भाई कहने से चिढते तो, इतना ही पहचाना भाई
लेकिन सब मरघट करने से ऐसे इस हल का क्या होगा। [108]

स्वाधीनता-प्राप्ति के पूर्व ही हिन्दू-मुस्लिम दंगे पूरे भारत में फैल जाते हैं। सांप्रदायिक विद्वेष उस समय की मुख्य समस्या बन जाती है। नरेन्द्र शर्मा इसे त्यागने तथा मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रेम और नैतिकता, स्थापित करने की दुहाई कविता के माध्यम से देते हैं। इस दृष्टि से हिन्दू-मुसलमान और 'तुला' नामक कविताएँ महत्वपूर्ण है। कवि कहते हैं ज्ञान-विज्ञान के आलोक में नए फूल खिलाने की आवश्यकता है। खून बहाने या हिन्दुओं को बोदा, मुसलमानों

को देशद्रोही कहने की नहीं। कवि ने उनसे इन्सान बनने की अपील की है। दोनों को एक दूसरे का सम्मान करने की बात कही है -

जनक्रान्ति जगाने आई है, उठ हिन्दू ! उठ ओ मुसलमान !

संकीर्ण भेद-संदेह त्याग, उठ महादेश के महाप्राण। [109]

इस प्रकार कवियों ने गाँधीवाद के साम्प्रदायिक एकता से प्रेरित होकर उदार मानव-धर्म के उद्‌गार प्रकट किये और साम्प्रदायिक विद्वेष पर प्रहार कर हिन्दू-मुस्लिम एकता के स्वप्न देखे, दोनों मिलकर खडे हो जायें तो निश्चय ही यह देश उन्नति करेगा। भवानी भाई लिखते हैं -

हिन्दू और मुसलमान मिलकर खडे रहें

X X X

समता का स्वतंत्रता का बन्धुता का सपना। [110]

अस्पृश्यता निवारण : प्रगतिशील कविता में समाज की विसंगतियों का वर्णन जनवादी लेखकों तथा कवियों ने किया, जिनमें जात-पाँत, भेद-भाव, छूआ-छुत वर्गवाद आदि का वर्णन मुख्य विषय रहा। समाज की यह विषम स्थिति भारतीय जनता के ऊपर सामन्ती समाज द्वारा उत्पन्न की गई थी। भारत वर्ष में सामन्ती व्यवस्था के लिए प्रोत्साहन अंग्रेजों के द्वारा दिया गया। परिणाम यह हुआ कि अव्यवस्था समाप्त होने की जगह सुदृढ होती गई। उस समय गाँवों में 3 वर्गों का उदय हुआ। प्रथम-उच्चवर्ग-धनी, आर्थिक दृष्टि से सुदृढ, भोग-विलास में लिप्त तथा प्रशासनिक कार्य में सहयोग पहुँचाने वाले, द्वितीय-मध्यम वर्ग जिसमें गाँव से शहर आकर मिलों, कारखानों तथा कार्यालयों में नौकरी करने वाले लोग कारीगर तथा गरीब किसान होते थे। इस सामाजिक व्यवस्था में उच्च वर्ग सदैव मध्यवर्ग को मिलाकर उसकी सहायता से निम्न वर्ग को सदैव अपने शोषण का शिकार बनाता रहा, फलतः जनता में उस सामाजि व्यवस्था के प्रति असंतोष व्याप्त रहा। उसके स्म्बंध में सुप्रसिद्ध आलोचक शिवकुमार

मिश्र का कथन है - "जिस समाज में एक ओर धनिक वर्ग जनता के ही बल पर ऐश्वर्य के दिन बिताए, उसके कुत्ते को दूध और वस्त्र मिले, दूसरी ओर सामान्य जनता विशेषकर निम्नवर्ग के दूधमुंहे शिशु दूध के अभाव में विलखकर जाडों में माताओं के सीने से चिपके हुए रात बिताए, जहाँ युवतियों के लज्जा-वसन बेचकर ब्याज चुकाये जायें, ऐसे समाज में यदि जनता व्यापक परिवर्तनों की माँग करे और उसका कवि इस माँग को वाणी दे तो कोई आश्चर्य नहीं।" [111]

ऐसी ही आवाज गाँधी ने उठाई थी समाज से देश से अस्पृश्यता रूपी राक्षस को दूर किया जाए। इस अस्पृश्यता ने देश को नई वर्गो में विभाजित कर दिया है। इसके कारण लोगों में घृणा एवं नफरत बढ रहा है। प्रेम एवं करूणा लोगों से दूर हो रहे हैं। गाँधी जी का साथ कवियों ने भी दिया। सोहनलाल द्विवेदी के 'युगावतार गाँधी' युग-युग की रूढियाँ तोडने वाले हैं। गाँधी जी 'दुर्बल दलितों के क्रान्तिघोष तथा पद-दलितों के शक्तिकोश हैं।' [112] वे पद-दलितों को हृदय से लगाने वाले हैं। जिस हरिजन बस्ती में गाँधी जी ने अपना दिल्ली निवास रखा है, उसका गुणगान 'गाँधी तीर्थ सा भंगी बस्ती' नामक कविता में है। अस्पृश्यों को मन्दिर प्रवेश का अधिकार दिलाने की माँग करते हुए कहते हैं -

क्यों तुमने शबरी निषाद की अपने मन से बात बिसारी ?
मैं भी एक उन्हीं के कुल का प्रभु-पद पूजन का अधिकारी।
खोलो मंदिर-द्वार पुजारी। [113]

इस प्रकार सभी कवियों ने अस्पृश्यता निवारण आन्दोलनों में गाँधी का साथ प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से दिया। सभी राष्ट्र को समानता के सूत्र में बाँधने के आकांक्षी हैं।

खादी : भारत में स्वदेशी आन्दोलन का उद्‌भव अंग्रेजों की शोषण-नीति के कारण हुआ। इस नीति से टक्कर लेने के लिए ही गाँधी जी ने स्वावलंबन पर बल दिया। उनके अथक प्रयास व प्रेरणा से भारत के वातावरण में खद्दर की सात्विकता फैल गई। गाँव-गाँव व नगर-नगर में

चरखे चलने लगे। गाँधी जी चाहते थे गाँव की जरूरत की हर चीज गाँव में ही बननी चाहिए। खादी इसकी पहली सीढी है। स्वराज्य के समान ही खादी भी राष्ट्रीय जीवन के लिए खॉस जितनी ही आवश्यक है। खादी में स्वदेश प्रेम व स्वावलंबन छिपा है। खादी का एक-एक धागा शोषित, पीडित ग्रामीण जनता के श्वास में बँधा हुआ है -

खादी के धागे-धागे में अपनेपन का अभिमान भरा।

X X X X

कितनों की इसमें भूख छिपी, कितनों की इसमें प्यास छिपी।[114]

गाँधी जी द्वारा प्रचारित चरखे और खादी की भावना मौलिक परिवर्तन की सूचक थी। वे इस बात को भली भाँति जानते थे कि सच्चा इन्कलाब तो तभी होगा जीवन का यह निर्जीव माध्यम (आर्थिक) समाप्त हो जाए जिसने हमारे जीवन को जटिल एवं दु:खी बना दिया है। उस दु:ख से उबरने के लिए लोगों को स्वावलंबी बनना होगा। गाँधी को बात मानकर हर किसी को चरखा चलाना ही होगा।

'महामानव' कविता में भवानी प्रसाद मिश्र गाँव-गाँव में फिर से चरखा चलाने का श्रेय गाँधी जी को देते हैं।[115] वे साथियों को जेल से बिदा देते हुए उन्हें खादी का कार्य नये ढंग से करने को प्रोत्साहित करते हैं। वे कारागार में बैठे हुए गाँधी जी की 75 वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में कुछ लिखने की अपेक्षा सूत काटना अधिक श्रेयस्कर समझते हैं। बच्चन बापू की वाणी को खादी ही मानते हैं-

यह वाणी खादी ही कट-छँटकर आई

ले मिला इन्हें भी जन शत श्रद्धांजलियों में।[116]

गाँधी जिस खादी के लिए जिये मरे उस खादी के अपमान को भी हिन्दी कवि सहन नहीं कर सकें। सोहनलाल द्विवेदी कतई नहीं चाहते हैं कि खादी-निर्मित धोती-कुर्ता, टोपी स्वदेशी के प्रतीक न रहकर मक्कारी, धूर्तता तथा कुर्सी प्रलोभन के द्योतक बने-

यह खादी का वेश, सत्य का
वेश, शहीदों का बाना।
इसकी धवल कीर्ति को
धूमिल करने का छोडो गाना।[117]

गाँधी जी ने अपनी दूरदर्शिता से खादी प्रचलन कर विदेशी मोह से छुटकारा तथा स्वदेशी उद्योगों का प्रोत्साहन का मार्ग निकाला था। इसके माध्यम से त्याग और विकेन्द्रीकरण का मन्त्र दिया था। इसके द्वारा श्रम व कठिनाई सहने की महत्ता तथा राष्ट्रीयता की प्रतिष्ठा की थी। उन्होंने कहा था कि हिन्दुस्तान पहले अपनी पोशाक और भाषा अपनाए। खादी राष्ट्रीय पोशाक के तौर पर स्वीकार हुई।

ग्रामोद्योग :- आर्थिक संगठन पर गाँधी जी ने अत्यधिक बल दिया। दरिद्रनारायण बापू भारत में आर्थिक अभ्युदय चाहते थे। स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने के पीछे वास्तव में देश की डगमग करती अर्थ व्यवस्था थी। राजनीतिक क्षेत्र में यह अनुभव किया जा रहा था कि भारत वर्ष जैसा देश जब तक कला-कौशल में दक्ष होने के लिए वह स्वयं प्रयत्नवान नहीं होता, जब तक इसमें चकाचौंद करने वाली वस्तुओं के प्रति घृणा के भाव जागृत नहीं होते तब तक कोई भी राष्ट्रीय योजना सफल नहीं हो सकती। इसलिए ऐहिक व्याधियों की तरह औद्योगिक व्याधियों की भी बापू प्राकृतिक चिकित्सा करना चाहते थे। उनका ग्रामोद्योग यही प्राकृतिक उपचार है जो मनुष्यों का सीधा सम्बंध धरती के साथ जोडता है। आज के अन्यायपूर्ण महोद्योग में जब पृथ्वी और मनुष्य का यह आत्मीय सम्बंध विच्छिन्न हो गया है, ग्रामोद्योग द्वारा वह पृथ्वी से अपना सम्बंध सूत्र स्थापित कर लेगा तब उसके जीवन में रसात्मकता भी आ जाएगी। पृथ्वी रसात्मा है। पृथ्वी के ही रस-दान से ग्राम्य गीतों में जीवन का मधुर विकास हुआ है।[118]

गाँधी जी ग्रामोद्योग द्वारा लोगों को आर्थिक रूप से सुदृढ करना चाहते थे। इसमें चरखा अतीव कारगर है। द्विवेदी जी ने चरखा उद्योग का बिम्बात्मक चित्रण किया है-

चर्खे का नहीं टुटता है तार

कानों में सुन पडता झंकार

क्या है सब यही योग ?

यहाँ का उद्योग ? [119]

दिनकर जी आर्थिक क्षेत्र में स्वावलंबन की नीति को सही मानते हैं। जब स्वदेशी आंदोलनद्वारा व्यापारिक शोषण पर अछूत साम्राज्यवाद की नींव डगमगाने लगी, लंकाशायर और मैनचेस्टर के व्यापार का दिवाला निकलने लगा तब अंग्रेजों ने रक्तपात, त्रास्त और दमन नीति का अवलंबन लिया। कवि ने 'कस्मै देवाय' कविता में इसके सुन्दर चित्र खींचे हैं।[120]गाँधी जी कहा करते थे भारत के लिए दूसरा कोई उद्योग उतना सरसकार नहीं हो सकता जितना चरखा। हाँ इस कार्य में सबका सहयोग अवश्य चाहिए। दिखावे के लिए कार्य करने को गाँधीजी धूल झोंकने के समान मानते थे। कुटीर उद्योगों के द्वारा स्वावलम्बन प्राप्त करने पीछे गाँधी जी की एक दृष्टि यह भी रही कि इस निर्धन देश के लिए मशीन उद्योग न तो आर्थिक दृष्टि से सम्भव है और न भारतीय नैतिक मूल्यों की दृष्टि से वांछनीय। ग्राम प्रधान देश की उत्पादन व्यवस्था केन्द्रीकृत न होकर विकेन्द्रीकृत ही हो सकती है। इसलिए गाँधी व्यक्ति की सहायता के लिए मशीन के उपयोग से सहमत होते हुए भी मशीनीकरण के विरूद्ध थे क्योंकि वह सम्पति बटोरने का साधन बन सकती थी। सोहन लाल द्विवेदी छोटे-छोटे बच्चों के अंदर भी स्वदेश प्रेम की भावना भरना चाहते हैं। वह तकली की क्रिया दिखाकर बच्चों में उसके प्रति प्रेम उत्पन्न करना चाहते है -

यह मेरी नहीं तकली,

है नाचती जैसे मछली

मैं, सूत बनाता इसमें

मैं गाना गाता इसमें

मैं, दिल बहलाता इसमें

मैं, खेल मचाता इसमें

यह फिरती उछली-उछली

यह मेरी नन्ही तकली। [121]

त्रिलोचन कबीर के माध्यम से गृहद्योग की पुष्टि करते हैं -

ब्राह्मण को तुकारने वाला वह काशी का जुलाहा जो

अपने घर नित्य सूत बनाता था।

लोगों की नंगई ढाँकता था।

आशी का उल्मूलन करता था। [122]

लेकिन दलितोद्धार करने वाला चरखा आज कहीं हो गया जिससे गाँव उजड गए, किसान भूखों मरने लगे। जिस ग्रामोद्योग से लोग आत्मनिर्भर हुए आज वे उसी पर निर्भर हैं। गाँधीवादी मानव यह सब देशकर सिसक पडता है और भवानी भाई के शब्दों में कवि कराह उठता है -

गाँधी जिसके लिए मरा अथवा जिया

फूँक दिया चरखा अणु भट्ठी जला ली। [123]

स्त्रियों की उन्नति : भारत जैसे पुरुष प्रधान समाज में नारी की स्थिति वैदिक युग के बाद से विवादित रही है तथा पुरूषों ने उसे कठपुतली मात्र बनाकर घर के भीतर रख दिया। तभी से नारी शोषण का शिकार बनती रही । पुरूष से किसी भी क्षेत्र में कम न रहने वाली

नारी की परिधि घर की देहलीज तक बना दी गई। धीरे-धीरे यह बंधन अत्यन्त कठोर होता जा रहा था। लेकिन किसी भी चीज की एक सीमा होती है। नारी आंदोलनों ने देश में ऐसी क्रान्ति पैदा की कि आज वे दलित तथा शोषित न होकर पुरूषों की सहधर्मिणी तथा उसके कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाली हो गई।

सदियों से उपेक्षित नारी के स्वाभिमान तथा अस्तित्व को नकारकर उसे अबला जैसे शब्दों से विभूषित किया गया तथा उसे 'आँचल में है दूध और आँखों में पानी' तक ही सीमित रखा गया। आखिर कब तक यह प्रक्रिया चलती रहती या सहन की जा सकती थी। धीरे-धीरे नारी की स्थिति में सुधार हुआ। प्रगतिवादी कवियों ने नारी के शोषण का पर्दाफाश किया। "आवश्यकता है, हर एक मनुष्य के पुतले में, चाहे वह पुरूष हो या स्त्री कोमल कठोर दोनों भावों का विकास हो। अब दोनों के लिए एक ही धर्म होना चाहिए। पुरूष के आभाव में स्त्री साथ समेटकर निश्चेष्ठ बैठी न रहे। उपार्जन से लेकर संतान-पालन गृह कार्य आदि वह संभाल सके, ऐसा रूप, ऐसी शिक्षा उसे मिलनी चाहिए। पहले दोनों के भाव और कार्य अलग-अलग थे, अब दोनों के भाव और कार्यो का एक ही साथ होना आवश्यक है।" [124]

महात्मा गाँधी ने भी नारी जागरण के लिए अनेको कार्य किए। उनके कार्य को कवियों ने सराहा तथा स्वयं नारी उद्धार कार्यक्रम में जुट गए। जहाँ-जहाँ स्त्रियों पर अत्याचार होते देखा वहीं उसका खण्डन किया। नरेन्द्र शर्मा गाँधी के विचारों से प्रभावित होकर कहते हैं -

तुम नहीं हो भोग की वस्तु मुझको, अस्तु तुमसे,
भीख मधु की माँगता मन भी नहीं ज्यों अलि कुसुम से।[125]

समाज के कल्याण के लिए नारी का सब प्रकार से सहयोग और उद्धार आवश्यक है।

राष्ट्रभाषा प्रेम : सम्पूर्ण राष्ट्र द्वारा स्वीकृत भाषा राष्ट्रभाषा होती है। गाँधी जी ने राष्ट्रभाषा

के विभिन्न लक्षणों पर विचार करते हुए हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा के उपयुक्त माना है। भाषा समानता के अभाव में राष्ट्रीयता की कल्पना अपूर्ण है। भूमि, जन और संस्कृति-राष्ट्रीयता के इन तीन प्रधान अवयवों में से संस्कृति के साथ भाषा का सीधा सम्बंध है क्योंकि वही राष्ट्र-जन के अन्तः सम्बन्धों की साधिका बन सांस्कृतिक चेतना में समन्वय-सूत्र जोडती है। भाषा ही राष्ट्रीय जागरण का माध्यम बनकर भावात्मक एकता का उद्देश्य सिद्ध करती है।[126] अपने देश एवं अपने वेश के साथ-साथ अपनी भाषा का ज्ञान अभिमान और उसकी उन्नति का ध्यान राष्ट्र-जन के लिए ही नहीं राष्ट्र नेताओं के लिए भी आवश्यक है। इसके बिना सच्चा राष्ट्र-कल्याण संभव नहीं है। सोहनलाल द्विवेदी लिखते हैं -

जिसका अपने देश, वेश
अपनी भाषा का ज्ञान नहीं
उसे देश का प्रतिनिधि नहीं
ऐसे राष्ट्र नेताओं से संघता
कभी राष्ट्र कल्याण नहीं।[127]

भारत वर्ष में 'मैकाले' की शिक्षा-पद्धति के श्रीगणेश (सन् 1835 ई.) से भारतीय चेतना में योरोपीय संस्कार आने लगे थे और कदाचित उस शिक्षा-नीति के प्रसार में अंग्रेजों का यही साध्य भी था। गाँधी जी का सर्वतोमुखी व्यक्तित्व विराट था और उनकी दृष्टि दूरदर्शी थी। भारत व्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात करते समय ही उनकी यह मान्यता थी कि हिन्दी या हिन्दुस्तानी ही देश की राष्ट्रभाषा हो सकती है। उन्होंने तभी से अपनी इस मान्यता का जनता में प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया था। परिणाम स्वरूप असहयोग आन्दोलन के समय से ही हिन्दी भाषा को राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो चुका था। कवि भी अपनी वाणी से हिन्दी का गुणगान किया -

कुसुमित हो आज मधुर आशा,

निज हिन्दी बने राष्ट्र भाषा

गूँजे स्वदेश के जन-जन में। [128]

यह केवल अकेले कवि का विश्वास नहीं अपितु राष्ट्रीयता आन्दोलन के सूत्रधार सभी नेताओं की सहमति से सम्पुष्ट एक राष्ट्रीय अभिमत था। बंगाल के सुभाष, मद्रास के राजगोपालचारी, गुजरात के गाँधी और पटेल, पंजाब के लाला लाजपतराय तथा सिंध के आचार्य कृपलानी-सभी एक स्वर से हिन्दी को राष्ट्र-भाषा स्वीकार कर स्वतंत्रता-संग्राम में उसकी जन-संचार क्षमता का उपयोग कर रहे थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन इंदौर में गाँधी जी के अध्यक्षीय भाषण को स्वीकृति देते हुए गाँधी पंचशती के कवि श्री भवानी प्रसाद मिश्र की अभिव्यक्ति है -

पूरा देश एक है, इसका भाव ढंग से फैलाना है,

गाँधी जी ने हमें हमेंशा इस विचार की याद दिलाई। [129]

इस प्रकार प्रगतिवादी कवियों ने एक स्वर में हिन्दी को राष्ट्रभाषा माना तथा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा भारत-जन-मानस विहारिणी राष्ट्रभाषा हिन्दी उत्थान का अभियान चलाया।

आर्थिक समानता : भारत देश एक कृषि प्रधान देश है तथा यहाँ की अधिकांश जनता की जीविका कृषि ही है। खेती का पुराना तरीका तथा आर्थिक आभाव किसानों के जीवन स्तर को सुधारने में बाधक होते हैं। सामंती व्यवस्था के पोषाक अंग्रेजों के यहाँ के घरेलू उद्योग-धन्धों को एकदम नष्ट कर दिया। अतः आर्थिक सन्तुलन सदैव अस्थिर ही रहा। दिन पर दिन किसानों की स्थिति बदतर होती जा रही थी । किसान मजदूरों में परिवर्तित होने लगे। अव्यवस्था यहाँ तक हुई कि एक वर्ग पूँजीपति बन गया दूसरा दरिद्र वर्ग निर्धन लोगों की इन दयनीय तथा विकट परिस्थितियों ने साहित्यकारों की चेतना को जागृत किया। इसका सबसे बडा कारण यह था कि अधिकांश प्रगतिशील कवि तथा लेखक मध्यवर्ग की उपज थे तथा उन्होंने अपने जीवन में खुद संकटों को झेला था । इसलिए वे जनता के

पक्षधर तथा जनजीवन के वाहक बन गए।

बापू ने भी कभी नहीं चाहा कि भारत में आर्थिक विषमता के कारण लोगों के दो या तीन समूह बने। एक ओर धन का एकत्र हो जाना और दूसरी ओर लाखों लोगों का भूखा मरना वे कदापि नहीं देख सकते थे। अमीरों ने इस विषमता को इतना उग्र बना दिया कि कवि का करूणापूर्ण ह्दय इसे देखकर भर-भर आता है -

हन्त भूखा मानव कैसा,
गोबर से दाने बीन रहा है।
और कलेजा मुँह को आता
हाय ! नहीं यह देखा जाता। [130]

कवि लोगों को भूख से छटपटाते हुए देखकर विचलित है। वह मानव की क्षुधा एवं वसुधा-व्यथा हरण करना चाहता है -

मुझसे न जाती झेली,
व्यथा वसुधा की
हरने को व्यथा-भार,
नर की क्षुधा अपार। [131]

किसानों का संगठन :हिन्दी साहित्य के इतिहास में काव्य जगत में किसान के ऊपर कवियों ने अपनी लेखनी बहुत चलाई है। उन्होंने किसान के वास्तविक सुख-दु:ख, आशा-निराशा और संघर्षों की कविता लिखी। भारत देश कृषि प्रधान देश है और यहाँ की 60% जनता की जीविका कृषि से ही चलती है। ब्रिटिश काल के दौरान भारतवासियों पर किसी न किसी प्रकार अत्याचार किया गया लेकिन किसानों पर सबसे ज्यादा जुर्म हुआ। जो किसान खेती कर अपना व परिवार का भरण-पोषण करता था सामंती व्यवस्था ने उसे मजदूर बनने पर बाध्य कर दिया। वे किसान गरीबी, शोषण और उत्पीडन का शिकार बने।

उनकी स्थिति बद से बदतर हो गई। गाँधी जी ने किसानों की स्थिति देखकर आवाज उठाई। वे सबको एकत्रित करने लगे। उन्होंने लोगों को समझाना शुरू किया कि भारत को अगर शान्तिपूर्ण सच्ची तरक्की करनी है तो पैसे वाले यह समझें कि किसानों में भी आत्मा है। वे किसानों को भी जागरूक कराने लगे। उनके भीतर छिपी प्रतिभा को उजागर करने लगे। उन्हें गाँव की अच्छाई बताकर शहरी बुराइयों से दूर रहने की हिदायत देने लगे।

कवियों ने भी गाँधी जी के स्वर में स्वर मिलाना प्रारम्भ कर दिया। सोहनलाल द्विवेदी सेवाग्राम में किसान को सम्बोधित करते हैं -

यदि उठ तू ओ शेषनाग ! हो ध्वस्त पलक में राज्यभोग
सम्राट निहोर नींद त्याग ....
साम्राज्यवाद का यह विधान। शासन का यह गुमान,
वह तेरी रहमत पर किसान। वह तेरी गफ्लत पर किसान। [132]

किसान के कारण ही सम्पूर्ण वसुधा में हरियाली छायी है अगर वही सो गया या कर्त्तव्यहीन हो गया तो कौन उसे धरती की देखभाल करेगा -

करूण है यह सभी तुम्हासरी, जो वसुधा है हरि आई,
जगो किसान, आज तुम्हारे जगने की बेला आई। [133]

त्रिलोचन के काव्य में भी किसानों का यथार्थ छिपा है। किसान जीवन का जो रूप अन्य लोगों के यहाँ दिखाई नहीं देता वही त्रिलोचन के यहाँ बडे ही सहज रूप में उपलब्ध दिखाई देता है। उनका ग्रामीण किसान अपने वास्तविक रूप में धूप और ताप को सहन करता हुआ अपनी जीविका हेतु प्रकृति से लडता है -

है धूप कठिन सिर ऊपर। थम गयी हवा है जैसे
दोनों दूबों के ऊपर। रख पैर खींचते पानी
उस मलिन हरी धरती पर। मिलकर वे दोनों प्रानी

दे रहे खेत में पानी। [134]

ऐसे मेहनती किसानों से द्विवेदी जी निवेदन करते हैं -

आजीवन श्रम करते रहना
मुँह से न किन्तु कुछ भी कहना
नित विपदा पर विपदा सहना
मन की मन में साधे रहना। [135]

इस प्रकार ग्रामों का प्रत्यावर्तन, ग्रामोन्नति की भावना कृषकों के शोषण पर रोष, कृषकोद्धार, कृषि की वृद्धि आदि के वर्णन गाँधीवादी रचनाओं में मिलते हैं। सभी कवियों में गाँववालों तथा कृषकों के प्रति गहरी सहानुभूति एवं प्रेम है। ये सबको संगठित देखना चाहते हैं, जिससे इनकी उन्नति हो। क्योंकि इनकी उन्नति ही देश की उन्नति है।

इस युग की कविता अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना, मिथ्या धार्मिक उपचार पर प्रहार एवं वर्ग रहित समाज को परिकल्पना से मण्डित है। समाज को आर्थिक एवं सामाजिक दशा के प्रति गाँधी जी के समान ही ये कवि भी संवेदनशील रहे। भारतवासियों के आत्म-सम्मान को जगाने में जितना सक्रिय हाथ गाँधी जी का रहा, उतना ही सक्रिय इन कवियों का।

संदर्भ :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 622
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 321
3. वही, पृ. 345
4. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रवृत्तियाँ : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 101
5. प्रगतिशील साहित्य की परम्पराएँ : राम विलास शर्मा, पृ. 140
6. आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ नगेन्द्र, पृ. 108
7. सोहनलाल द्विवेदी और उनका काव्य : विजय कुमार मल्होत्रा, पृ. 3
8. काव्य के इतिहास पुरुष : सोहनलाल द्विवेदी : अमर बहादुर सिंह, पृ. 3
9. एक कवि एक देश : अमृत लाल नागर, पृ. 94
10. सोहनलाल द्विवेदी और उनका काव्य : विजय कुमार मल्होत्रा, पृ. 157
11. वही, पृ. 93
12. भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और हिन्दी साहित्य : कीर्तिलता, पृ. 295
13. हिन्दी साहित्य कोश (भाग-2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 658
14. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 273
15. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 622
16. उपन्यासकार नागार्जुन : राम गुप्त, पृ. 3
17. आज के लोकप्रिय कवि नागार्जुन : प्रभाकर माचवे, पृ. 3
18. उपन्यासकार नागार्जुन : राम गुप्त, पृ. 2
19. नगार्जुन का रचना-संसार : विजय बहादुर सिंह, पृ. 14
20. उपन्यासकार नागार्जुन : राम गुप्त, पृ. 2
21. वही, पृ. 13
22. बाबा नागार्जुन : सं. नरेन्द्र कोहली, पृ. 16
23. वही, पृ. 16
24. उपन्यासकार नागार्जुन : राम गुप्त, पृ. 6
25. नागार्जुन की कविता : अजय तिवारी, पृ. 203
26. हिन्दी साहित्य कोश (भाग-2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 514
27. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 269
28. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 621
29. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : शिव कुमार, पृ. 530
30. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 621
31. हिन्दी साहित्य कोश (भाग-2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 515
32. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 629
33. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 621

34.हिन्दी साहित्य कोश (भाग-2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 516
35.वही, पृ. 405
36.भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य और वक्रोक्ति सिद्धान्त : अंजना चौहान, पृ. 3
37.आज के लोकप्रिय कवि : भवानी प्रसाद मिश्र : सं. विजय बहादुर सिंह, पृ. 13
38.भवानी प्रसाद मिश्र : बलदेव बंशी, पृ. 7
39.विश्व इतिहास की झलक : जवाहर लाल नेहरू, पृ. 407
40.भवानी प्रसाद मिश्र : बलदेव बंशी, पृ. 21
41.वही, पृ. 9
42.भवानी भाई : प्रेम शंकर, पृ. 6
43.भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य-यात्रा : संतोष तिवारी, पृ. 5
44.भवानी प्रसाद मिश्र : बलदेव बंशी, पृ. 15
45.हिन्दी साहित्य कोश (भाग-2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 286
46.नरेन्द्र शर्मा : हरिमोहन शर्मा, पृ. 13
47.आधुनिक कवि : नरेन्द्र शर्मा, पृ. 13
48.वही, पृ. 15
49.ज्योति कलश : सं. आनन्द प्रसाद दीक्षित, पृ. 444
50.नरेन्द्र शर्मा : हरिमोहन शर्मा, पृ. 18
51.वही, पृ. 90
52.वही, पृ. 25
53.बच्चन की बिम्ब -योजना : मृदुला गुप्ता, पृ. 72
54.हिन्दी साहित्य कोश (भाग-2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 675
55.आधुनिक कवि : हरिवंश राय बच्चन, पृ. 6
56.हिन्दी साहित्य कोश (भाग-2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 675
57.आधुनिक काव्य संग्रह : सं. रामवीर सिंह, पृ. 338
58.आधुनिक कवि : हरिवंश राय बच्चन, पृ. 7
59.हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 274
60.हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : शिवकुमार शर्मा, पृ. 524
61.हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 616
62.बच्चन : व्यक्ति और काव्य : बाँके बिहारी लाल भट्नागर, पृ. 23
63.हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 559
64.आलोचना : सं. नामवर सिंह, सन् 1987, पृ. 8
65.हिन्दी साहित्य कोश (भाग-2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 239
66.हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 559
67.आधुनिक काव्य संग्रह : सं. रामवीर सिंह, पृ. 401

68.हिन्दी साहित्य कोश (भाग-2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 595
69.हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 276
70.हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 626
71.हिन्दी साहित्य कोश (भाग-2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 659
72.युगाधार : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 3
73.सेवाग्राम : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 5
74.प्रभातफेरी : नरेन्द्र शर्मा, पृ. 3
75.हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 644
76.हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 270
77.हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 645
78.हिन्दी साहित्य कोश (भाग-2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 515
79.हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 640
80.हिन्दी साहित्य कोश (भाग-2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 515
81.वही, पृ. 659
82.एक कवि एक देश : कृष्ण दास, पृ. 289
83.गाँधी पंचशती : भवानी प्रसाद मिश्र, पृ. 5
84.भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य यात्रा : संतोष कुमार तिवारी, पृ. 74
85.हिन्दी साहित्य कोश (भाग-2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 427
86.आधुनिक हिन्दी कविता में गाँधीवाद : मित्ताली भट्टाचार्जी, पृ. 184
87.भैरवी : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 4
88.युगाधार : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 3
89.पलाशवन : नरेन्द्र शर्मा, पृ. 61
90.गाँधी अभिनंदन ग्रंथ : सं. नरेन्द्र शर्मा, पृ. 58
91.गाँधी पंचशती : भवानी प्रसाद मिश्र, पृ. 9
92.रक्त चंदन : नरेन्द्र शर्मा, पृ. 27
93. भैरवी : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 150
94.पलाशवन : नरेन्द्र शर्मा, पृ. 34
95.रक्त चंदन : नरेन्द्र शर्मा, पृ. 13
96.गाँधी पंचशती : भवानी प्रसाद मिश्र, पृ. 84
97.पूजागीत : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 89
98.रक्त चंदन : नरेन्द्र शर्मा, पृ. 14
99.उस जनपद का कवि हूँ : त्रिलोचन, पृ. 77
100.भैरवी : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 21
101.हिन्दी साहित्य कोश (भाग-1) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 807

102.भैरवी : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 45
103.अग्निशस्य : नरेन्द्र शर्मा, पृ. 10
104.वही, पृ. 51
105.गाँधी पंचशती : भवानी प्रसाद मिश्र, पृ. 421
106.कुणाल : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 65
107.युगाधार : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 45
108.गाँधी पंचशती : भवानी प्रसाद मिश्र, पृ. 149
109.हंसमाला : नरेन्द्र शर्मा, पृ. 18
110.गाँधी पंचशती : भवानी प्रसाद मिश्र, पृ. 46
111.नया हिन्दी काव्य : शिव कुमार मिश्र, पृ. 30
112.युगाधार : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 3
113.भैरवी : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 3
114.वही, पृ. 6
115.गाँधी पंचशती : भवानी प्रसाद मिश्र, पृ. 46
116.खादी के फूल : हरिवंशराय बच्चन, पृ. 159
117.मुक्तिगंधा : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 34
118.गाँधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव : अरविन्द जोशी, पृ. 238
119.प्रभाती : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 20
120.रेणुका : रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ. 30
121.शिशुगीत : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 25
122.दिगंत : त्रिलोचन, पृ. 52
123.गाँधी पंचशती : भवानी प्रसाद मिश्र, पृ. 31
124.निराला की साहित्य साधना : रामविलास शर्मा, पृ. 36
125.मिट्टी और फूल : नरेन्द्र शर्मा, पृ. 134
126.चिन्तन का क्षण : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 87
127.मुक्तिगन्धा : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 17
128.पूजागीत : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 108
129.गाँधी पंचशती : भवानी प्रसाद मिश्र, पृ. 18
130.जीवन के गान : शिवमंगल सिंह 'सुमन', पृ. 106
131.वासवदत्ता : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 39
132.सेवाग्राम : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 23
133.विशाल भारत : अप्रैल, 1944, पृ. 222
134. भैरवी : सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 12
135.वही, पृ. 12

षष्ठ अध्याय
प्रयोगवादी युग में गाँधीवादी चेतना

षष्ठ अध्याय

प्रयोगवादी युग में गाँधीवादी चेतना

साहित्य में 'प्रयोग' की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वैसे तो प्रयोग प्रत्येक युग में होते रहे हैं किन्तु हिन्दी कविता में यह प्रयोगवाद नाम उन कविताओं के संबंध में उभारा गया जो स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्ष पूर्व नये बोधों-संवेदनाओं तथा उन्हें संप्रेषित करने वाले शिल्पगत चमत्कारों को लेकर लिखी गयीं। यद्यपि कुछ लोगों की मान्यता के अनुसार इस प्रकार की छिटपुट कविताएँ सन् 1938 ई0 के आस-पास लिखी जाने लगीं थीं। वस्तुतः यह निःसंकोच माना जा सकता है कि 'प्रयोगवाद' का प्रारम्भ अज्ञेय द्वारा संपादित 'तार सप्तक' (1943) से हुआ। 'तार सप्तक' में संकलित कविताओं के अधिकांश कवियों द्वारा 'प्रयोग' शब्द पर विशेष जोर दिए जाने के कारण इस नूतन काव्य धारा को आलोचकों ने व्यंग्य में प्रयोगवाद नाम दे दिया। इसके मुख्य पुरस्कर्ता आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी हैं। उन्होंने लिखा है - ''पिछले कुछ समय से हिन्दी काव्य क्षेत्र में कुछ ऐसी रचनाएँ हो रही हैं जिन्हें किसी सुलभ शब्द के आभाव में प्रयोगवादी रचना कहा जा सकता है। इन रचनाओं का नाम स्वयं इनके रचयिताओं ने दिया है। अतएव इनके लिए कोई दूसरे नाम की खोज करना हमारे लिए आवश्यक नहीं है। इन रचनाओं पर इनके प्रयोगवादी नाम और गुणों पर इनके रचयिताओं को बहुत काफी गर्व है और वे समय-समय पर अपने इन प्रयोगों के पक्ष में अनेक तर्क और दलीलें देते रहते हैं।''[1]

'प्रयोगवाद' नाम से यह भाव प्रकट होता है कि इन कवियों ने प्रयोग को साध्य मानकर एक नया वाद चलाया जबकि यहाँ प्रयोग को न साध्य माना गया और न इसे 'वाद' के रूप में स्वीकारा गया है। दूसरा सप्तक (सन् 1951ई.) की भूमिका में स्वयं अज्ञेय ने प्रयोगवाद नाम की निरर्थकता सिद्ध की है । उनका कथन है प्रयोग कोई वाद

नहीं है। हम वादी नहीं रहे । न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। 'कवि कर्म' की व्याख्या करते हुए उन्होंने आगे स्पष्ट किया है कि प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है, वह साधन है और दोहरा साधन है क्योंकि वह एक तो उस सत्य को जानने का भी साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह प्रेषण की क्रिया को और उनके साधनों को जानने का भी साधन है। अर्थात प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है। वस्तुतः 'नकेनवाद' को इसके समर्थकों ने पृषधवाद भी कहा है। उनका कहना है कि सप्तकों में जिस काव्य की सैद्धान्तिक व्याख्या हुए हैं वह प्रयोगशील थी, प्रयोगवादी नहीं। इस प्रकार उनके अनुसार प्रयोगवादी कविता वह है जो प्रयोग को कविता का साधन नहीं, साध्य मानती है।[2]

नकेन के कवियों को भले ही प्रयोगवादी कहलाए जाने की ललक रही हो, किन्तु अज्ञेय ने यह स्वीकार नहीं किया कि वे प्रयोगवादी हैं अथवा 'तार-सप्तक' या उस दशक की अन्य प्रकाशित काव्य-कृतियाँ प्रयोगवाद के अन्तर्गत आती हैं। अज्ञेय ने प्रयोगवाद नाम का विरोध किया। दूसरे इस छोटे से काल-खंड में प्रकाशित कविताओं के आधार पर तार सप्तकीय कवि प्रयोगवादी करार नहीं दिए जा सकते। यह अवश्य है कि पूर्ववर्ती काव्य धारा के पाँचवें दशक की कविता वस्तु-बोध से अधिक शिल्प चमत्कार के कारण बिलगाव को घोषित करती है। सप्तक के कवियों ने प्रयोग को पूर्वापेक्षा अधिक महत्व दिया है, इसलिए मैंने नई कविता के पूर्व पक्ष को प्रयोगकाल कहा है। ....मान्य हो गया है कि प्रयोगशाली कविता का अगला चरण 'नयी कविता' है।[3]

प्रयोगवादी कविता का आरंभ अग्रेजी शासन के अंतिम चरण से माना जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध (सन् 1939 से 1945 ई.) का समय ब्रिटिश शासन के साथ-साथ हम भारत के लिए भी संकट का समय था । औपनिवेशिक दास्ता के कारण ब्रिटिश शासन

के पक्ष में भारत को अनिच्छा से इस युद्ध में भाग लेना पड़ा। परिणामतया किसी प्रकार का प्रत्यक्ष संबंध न होने पर भी वह युद्धजनित संक्रमण के प्रभाव से अछूता न रह सका। देश की आर्थिक स्थिति पहले ही बहुत खराब थी, युद्ध के कारण और भी बदतर हो गई। राम स्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है - 'आर्थिक क्षेत्र में देश व्यापी मँहगाई तथा रूपये के गिरते हुए मूल्य ने शताब्दियों से चली आती हुई विनिमय पद्धति को चूर-चूर कर डाला। सिक्कों का प्रचार तथा प्रभाव छोटे-छोटे गाँव में दिखाई पड़ने लगा। कुल मिलाकर देश आर्थिक दृष्टि से विपन्न हो चला था।'[4] इस युद्ध में प्रयोग देने पर भी सहयोग भारत की स्थिति संदिग्ध बनी रही। अंग्रेज स्वेच्छा से यहाँ से हटना नहीं चाहते थे। उनकी मंशा को समझकर महात्मा गाँधी ने सन् 1942 ई. में 'भारत-छोड़ो' आन्दोलन का आह्वान किया। अंग्रेजों के खिलाफ देश व्यापी आन्दोलन आरम्भ हो गया। स्कूल-कॉलेज बंद हो गए। विद्यार्थी बड़ी संख्या में इस आन्दोलन में कूद पडे। सरकारी संस्थानों, संपत्ति को जलाया जाने लगा। अंग्रेजी सरकार इसका उत्तर नृशंसतापूर्वक अंधाधुंध गोली-वर्षण द्वारा देने लगी। इस काल का चित्र स्वयं नेहरू जी ने खींचा है — "एक फिर पुराना दमन चक्र चला। सन् 1857 ई. के बाद पहली बार सन् 1942 ई. में विशाल जनता ने भारत वर्ष के महान अंग्रेजी शासन को फिर निःशस्त्र चुनौती दे डाली।"[5]

इस विशाल क्रान्ती में निम्न-मध्य-सभी वर्ग, सभी अपनी-अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे थ। छोटे-बडे, अमीर-गरीब, मजदूर-मालिक के रिश्तों में जहॉ एक ओर नये संतुलन की खोज शुरू हो गई थी, वहीं किसान-जमींदार अपने संबंधों को मानसिक तौर पर स्थापित कर रहे थे, किन्तु इस सबसे ऊपर था उन्हीं के साथ प्रखर होता स्वाधीनता का प्रचंड रोष, उनकी शक्ति और क्रियाशीलता थी यथार्थ से जूझने की एक अदम्य तत्परता। भारतीय जनता के इस विशाल आन्दोलन उसके अदम्य साहस एवं दृढ

मनोबल के सामने अंग्रेजी सत्ता डगमगा गयी थी, किन्तु देश की आर्थिक स्थिति एकदम बदतर हो गयी थी, और इस समय दुर्दैव ने एक प्रहार और किया-सन् 1943 ई. में बंगाल के भीषण आकाल के रूप में यह उस समय की सबसे हृदय विदारक घटना थी जिसमें सिर्फ भूख से चालीस लाख लोग मर गये।

15 अगस्त, सन् 1947 ई. को देश आजाद तो हो गया लेकिन भारत-पाकिस्तान के विभाजन ने आजादी के हर्ष हो अधूरा कर दिया। देश के लिए यह स्थिति अत्यन्त दुःखद सिद्ध हुई। भारत माता का हृदय खंडित करने के बाद भी मजहबी उन्माद ठण्डा नहीं हुआ बल्कि इसके विपरीत हिन्दू-मुस्लिम में आपसी बैर और मनमुटाव बढ़ गया। वे एक-दूसरे के धर्मो पर आक्षेप-प्रहार करने लगे। साम्प्रदायिक दंगों के भरकने का उपयुक्त अवसर मिल गया। पंजाब, बिहार, बंगाल के दंगे इसके उदाहरण हैं। हजारों निर्दोष धर्मान्ध लोगों की पाशविकता के शिकार हुए। लाखों के तादात में लोग बेघर-वार हो गये। उस समय गाँधी जी के व्यक्तिगत प्रयत्नों से साम्प्रदायिक स्थिति में थोड़ा-बहुत सुधार हुआ किन्तु उनकी ओर से मुसलमानों को भारत में बसाये रखने का जो प्रयत्न चला इससे हिन्दुओं के मन में एक गलत धारणा पैदा हो गई कि गाँधी जी मुसलमानों के पक्ष में हैं और उनके हितों की रक्षा चाहते हैं। इसी गलत धारणा के कारण 30 जनवरी, सन् 1948 को बापू की हत्या कर दी गई। सारा देश क्षुब्ध हो रो पड़ा। शोक विषाद शून्यता की लहर दावानल-सी पूरे विश्व में फैल गई।

देश में हुई सभी विपरीत परिस्थितियों का प्रभाव काव्य पर भी पडा। कवियों ने अपने काव्य में गाँधीवादी विचारधाराओं का समावेश किया।

6 क गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख कवि :

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षरों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का नाम अत्यन्त सम्मानजनक रूप में लिया जाता है । वे जीवन पर्यन्त कभी यह नहीं भूले की

वे एक छोटे से परिवार और कस्बे से निकले व्यक्ति हैं। उन्होंने विदेशीपन को कभी अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया। हाँ, पाश्चात्य जीवन-दर्शन और साहित्य से उन्होंने बहुत कुछ सीखा, पढ़ा और अनुभव कर अपने ढंग से अभिव्यक्त किया। टी. एस. इलियट का उन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। उनके काव्य में कहीं भी कृत्रिमता दृष्टिगोचर नहीं होती। उन्होंने एक ऐसे रचना-संसार की सृष्टि की है, जो मेरा, आपका और सबका है। दमित, अपेक्षित, बेसहारा-वर्ग की आवाज को उन्होंने महत्ता दी। मार्क्स का भी उनपर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उन्हें दुनिया भर की कलाओं से बेहद लगाव था। इसलिए संगीत, नृत्य, नाटक, चित्रकला और साहित्य का ऐसा शायद की कोई कार्यक्रम होता, जहाँ वे मौजूद न रहते हों और अपनी मौजूदगी से भरा-पूरा न करते हों।[6]

सुप्रसिद्ध साहित्यकार सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का जन्म 15 सितम्बर, सन् 1927 ई. को उत्तर प्रदेश के बस्ती जनपद के महसों नामक स्थान पर हुआ।[7] इनका परिवार पूर्ण सुशिक्षित एवं संस्कारयुक्त था। इनकी माता निरन्तर अस्वस्थ रहा करती थीं। वह अध्यापन कार्य करती थीं। अस्वस्थता में भी पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह उन्होंने कुशलतापूर्वक किया। फरवरी, सन् 1949 ई. में उनका देहान्त हो गया। इनके पिता भी एक अध्यापक थे। सन् 1957 में जब सर्वेश्वर दयाल सक्सेना तीस साल के थे परिवार की जिम्मेदारी उनपर डाल पिता भी चल बसे। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का बाल्यकाल बस्ती में ही व्यतीत हुआ। कहने को तो बस्ती जिला है लेकिन यह एक कस्बेनुमा शहर ही है, जिसके चारों ओर खेत ही खेत है। तालाब भी बहुत से हैं। ऐसे छोटे-छोटे ताल-तलैयों और खेतों के बीच में उनका बचपन बीता। आर्थिक-संघर्ष और पारिवारिक-कलह उनके बचपन के अभिन्न मित्र बने, जिनसे उनका जीवन अंत तक प्रभावित रहा।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की प्रारंभिक शिक्षा 'ऐंग्लो संस्कृत हाईस्कूल' बस्ती में ही हुई। इसके बाद की शिक्षा 'क्वीन्स कॉलेज' वाराणसी में हुई । सन् 1949 ई. में प्रयाग

विश्वविद्यालय से एम. ए. की परीक्षा पास की। इसके पश्चात् कुछ समय तक एक स्कूल में अध्यापन-कार्य किया, लेकिन वह अधिक समय तक नहीं चल सका। उसके बाद इलाहाबाद में 'एकाउण्टैण्ट-जनरल' के कार्यालय में 'क्लर्की' कर ली। उन्हें वहाँ का बाबूगीरी वाला माहौल अच्छा नहीं लगा। वे क्षुब्ध रहने लगे फलतः विरक्त होकर नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और सन् 1957 ई. में दिल्ली आ गये। यहाँ कुछ वर्ष आकाशवाणी के समाचार-विभाग में कार्य किया। आकाशवाणी के अन्य केन्द्रों पर 'असिस्टैण्ट प्रोड्यूसर' रहे इसके बाद 'दिनमान' में चले गये और वर्षों तक 'दिनमान' में ही कार्य किया।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की पारिवारिक स्थिति शोचनीय थी। पारिवारिक आभावों ने कवि को शुरू से ही प्रभावित किया। माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त उनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त डाँवाडोल हो गई। वैसे तो वे स्वयं परिश्रमी थे कि जब वे पढ़ते थे, तो स्वयं ही अपनी आर्थिक व्यवस्था का प्रबंध भी करते थे। यह संस्कार इन्हें अपने परिवार से ही मिला था और इन्होंने आत्मनिर्भर बनना सीख लिया था। वे ट्यूशन करते थे। किसी से कुछ लेना-देना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। यही कारण है कि उन्होंने जीवन-पर्यन्त गरीबी और शोषण से संघर्ष किया और गरीबों के प्रति उनकी सच्ची आत्मीयता रही। वे हमेशा दीन और असहाय लोगों का साथ देते रहे। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने जीविका को अपनी सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम बड़े कौशल से बनाया। रोटी और सुविधाओं के लिए न तो कहीं नाक रगड़ी और न ही कहीं समझौता किया।[8] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना सहृदयी व्यक्ति थे व समाज सेवा के पक्षधर थे। रघुवीर सहाय के शब्दों में - 'सर्वेश्वर जी हमारी पीढ़ी के उन लोगों में से थे, जो अकेले नहीं रहना चाहते थे, हर काम में वे लोगों को साथ लेते थे और साथ देते थे। ....उनका अपने साथियों से, मित्रों से और उनसे भी जो बहुत से आन्दोलनों में उनके साथ थे संबंध बहुत गहरा

था । लेकिन इसके बावजूद वे कहीं सबसे अकेले भी थे। समाज की समझ उन्होंने अपने बहुत गहरे और निजी कष्टों से हासिल की।'' [9]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का लेखन-काल लगभग 40 वर्षो का रहा। साहित्य-जगत में अज्ञेय, मुक्तिबोध, डॉ. धर्मवीर भारती, शमशेर, भवानी भाई, गिरिजा कुमार माथुर, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय की भाँति वह लोकप्रिय न हो पाये। संभवतः अपनी स्पष्टवादिता और लीक से हटकर चलने की प्रवृति के कारण। इसमें तनिक भी संदेह नहीं की सर्वेश्वर का योगदान इन साहित्यकारों से किसी भी भाँति कम नहीं है। पर कुछ लोगों का जन्म ऐसे ही होता है, जो आकाश में छोटे तारे की भाँति टिमटिमाते हैं, लेकिन उनका प्रकाश वर्षो के उपरान्त पृथ्वी तक पहुँच पाता है। सर्वेश्वर ऐसे ही व्यक्ति थे। उनका साहित्यिक जीवन सीधा-सादा और गंभीर था। साहित्यकार, कलाकार, पत्रकार, विचारक, ऑफिस के कर्मचारी, गाँव के किसान, मजदूर आदि उनके इस जीवन के अभिन्न अंग थे। [11]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का सहित्य की ओर बचपन से झुकाव रहा। उनका साहित्यिक जीवन उनके सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक पक्षों का ही सम्मिश्रण है। राजधानी से प्रकाशित साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्र- पत्रिकाओं व कार्यक्रमों में वे रहते। उनका काव्य संसार बडा ही व्यापक है। अपने साहित्यक विविध विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। कितनी ही पत्र-पत्रिकाओं एवं संघ-संस्थाओं से वे जुड़े। संगम, परिमल, दिनमान, पराग आदि पत्रिकाओं से वे जुड़े रहे। काठ की घंटियाँ, बाँस का पुल, एक सूनी नाव, गर्म हवाएँ, कुआनो नदी, जंगल का दर्द, खूँटियों पर टँगे लोग, क्या कहकर पुकारूँ, कोई मेरे साथ चले आदि उनके द्वारा रचित काव्य-संग्रह हैं। इसके अतिरिक्त वे एक सफल संपादक, नाटककार, बाल साहित्यकार, कहानीकार, अनुवादक एवं सामाजिक कार्यकर्ता भी थे।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का साहित्यिक लेखन उस समय से आरंभ हुआ जब देश की राजनीतिक स्थिति सामान्य नहीं थी। कई उतार एवं चढ़ाव देश की राजनीति में जो हो रहे थे। अतः उनका सम्पूर्ण जीवन चिंतन राजनीति से आत्मायित था, उन्होंने कभी अपनी मान्यताओं के मूल्य पर समझौता नहीं किया। एक युगान्तारी के रूप में वे उभरे। गाँधी जी का भी प्रत्यक्ष प्रभाव उनपर पड़ा अतः अपने काव्य गाँधीवादी मूल्यों को भी स्थान प्रदान किया। आज के प्रचलित वादों पर भी उन्होंने करारी चोट की है। राजनीतिक अन्याय, शोषण, पाखंड और आडम्बर का जितना विरोध वह निजी बात में करते थे उससे कही तीव्र व उनकी रचनाओं में मिलता है। उनका मानना था कि ....यदि साहित्यकार, पत्रकार, रंगकर्मी, कलाकार, सामाजिक, राजनीतिक बदलाव चाहता है, तो उसे राजनीतिक आन्दोलन व संगठन से जुड़ना होगा।[11] इसलिए वे 'इण्डियन पीपुल्स फ्रण्ट' के संस्थापक सदस्य व इसके राष्ट्रीय पार्षद थे। विभिन्न क्रान्तिकारी शक्तियों के साथ उनका संबंध गहरा व जीवंत था। 'दिनमान' के 'चरखे-चरखे' स्तंभ ने राजनीतिक-सामाजिक रूप में सर्व साधारण को इतना कुछ दिया कि कोई और विधा न दे सकती थी। उन्होंने राजनीति और राजनैतिक नेताओं की विसंगतियों को अपने इस स्तंभ में इतना उभारा कि लोगों में राजनीतिक जागरूकता की एक बड़ी लहर-सी आ गई थी।

सन् 1970 ई. के बाद उनके राजनीति चिंतन व लेखन में बडी तेजी से परिवर्तन आया। उनके जीवन एवं कृतित्व में धरणा, जुलूस, प्रदर्शन, हड़ताल, रैली, आन्दोलन व संघर्ष स्थान लेने लगे। देश व्यापी आन्दोलनों में भी वे सक्रिय भाग लेने लगे। कृषक-आन्दोलन में भी भाग लिया। सन् 1975 ई. में कृषक नेताओं को फाँसी दिये जाने पर आप बहुत दुःखी हुए, इस घटना से वे उद्वेलित हो गये। वे राजसत्ता व उसके लिए होनेवाली मारा-मारी से अनजान न रहे । उन्होंने 8 जून, 1975 ई. को

लोकतंत्र का गाना' लिखा, जो प्रसिद्ध व लोकप्रिय हुआ। वे आजीवन मानवता के लिए लड़ते रहे।

उनकी कविताओं में आम आदमी के प्रति गहरी सहानुभूति और प्रेम का अथाह सरोवर भरा पडा है और जनवादी-दर्शन से प्रभावित होकर मानवतावादी-दृष्टि को समाज में फैलाने का प्रयत्न प्रतीत होता है। उनकी रचनाओं में कवि का आत्मविश्वास, जणक्रोश, विद्रोह, संघर्ष तथा राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक ढाँचे पर गहरा चिंतन-मनन दृष्टिगोचर होता है। उनकी कविताओं में जीवन और जगत के विभिन्न पक्षों का सुक्ष्म दृष्टि से वर्णन मिलता है। भावात्मक तथा यथार्थ जगत के परिप्रेक्ष्य में कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का जीवन-दर्शन सच्चा सिद्ध हुआ है, क्योंकि उनका जीवन उन अनुभवों के पथ से गुजरा है। वे इस युग के विचारों और समस्याओं को वाणी देने वाले एक सजग कवि हैं।

नरेश मेहता : कवि समाज का एक विशेष व्यक्ति होता है। वह समाज का घटक होकर समाज के बीच रहकर उसे समझने और मूल्यांकित करने का अधिकारी होता है। एक सर्जक रचनाकार के रूप में वह जिन विचारों को अभिव्यक्त करता है वे विचार समाज से उद्‌भूत होते हैं। इसलिए काव्य से हम मनःतुष्टि के अतिरिक्त वैचारिक धरातल पर भी कुछ पाने की अपेक्षा रखते हैं। जागरूक कवि के काव्य में कुछ ऐसे अन्तरनिहित तथ्य होते हैं जो काव्य के विचार - दर्शन को सूचित करते हैं। ऐसे ही विचारशील गाँधीवादी कवि हैं श्री नरेश मेहता।

श्री नरेश मेहता का जन्म मालवा के शाजापुर नामक कस्बे में आर्ष-परम्परा को मानने वाले एक गुजराती ब्राह्मण परिवार में 15 फरवरी, सन् 1922 में हुआ।[12] इनके पिता श्री बिहारीलाल प्रोलेतेरियत वर्ग के माने जाते हैं। ये अपनी पिता की तीसरी पत्नी के संतान थे । बालक नरेश के जन्म के डेढ वर्ष पश्चात् ही इनकी माता का स्वर्गवास

हो गया। ऐसी परिस्थिति से उनके पिता पहले भी गुजरे थे। इसके बाद उन्हें परिवार से विरक्ति हो गई । वे घर-परिवार की तरफ से उदासीन रहने लगे । फलस्वरूप नरेश का बचपन अपने चाचा श्री शंकर लाल मेहता की छत्रछाया में संपन्न वातावरण, भौतिक सुख-सुविधाओं के बीच बीता। तीन-चार वर्ष की नन्हीं उम्र में ही शंकर मेहता ने उन्हें गोद ले लिया था। इनके पिता की मृत्यु, जब वे तेईस वर्ष के थे, तब हुई।

नरेश जी की छठी कक्षा तक की पढ़ाई चाचा के यहाँ धार में ही हुई फिर आगे की पढ़ाई के लिए वे अपनी बुआ के पास नरसिंहगढ़ चले गये । वहाँ रहकर इन्होंने मैट्रिक पास किया। इंटरमिडियेट की पढ़ाई उज्जैन में पूरी की। अपनी पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त ऐसे अनेकों पुस्तकों का अध्ययन किया जिनसे तत्कालीन आन्दोलन की जानकारी मिलती थीं। काशी विद्यापीठ से बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1942 ई. में स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रियता से भाग लिया। सन् 1946 ई. में बनारस विद्यालय से साहित्य से एम. ए. करने के पश्चात् बनारस छोड़ दिया।

पढाई एवं खर्च के लिए पिता की ओर से मिलने वाली बीस रूपये की निश्चित राशि से महीने भर का खर्चा नहीं चलता था। लेकिन अपने को असहाय घोषित कर दूसरों से सहायता प्राप्त करने का मार्ग उनके स्वाभिमानी स्वभाव के विरूद्ध था। परिणामतः आभाव, यातना और दुःखों के दौर से भी उन्हें गुजरना पड़ा फिर भी उन्होंने किसी की सहायता लेना ठीक नहीं समझा। इनके चाचा प्रतीक्षा करते कि सम्भवतः नरेश आर्थिक कठिनाइयों में होने पर उनकी सहायता की अपेक्षा करेगा लेकिन वह दिन नहीं आया। इस प्रसंग में उनके स्वभाव को दर्शाने वाली घटना है-घर जाना था। पास में किराये के पैसे नहीं थे। माँगना स्वभाव में नहीं था। एक रास्ता सूझा। कुंजगली में कुछ सुरूचि संपन्न व्यापारियों को कविता सुनाकर चालीस रूपये पारिश्रमिक के रूप में प्राप्त किये और उसी से घर गये।[13]

नरेश मेहता का जीवनारम्भ सन् 1948 ई. में लखनऊ के 'ऑल-इंडिया रेडियो' के सेवा कार्य से हुआ। उस समय उनका झुकाव कम्यूनिस्ट पार्टी की ओर था। वे 'प्रगतिशील लेखक संघ' के संपर्क में भी थे। फिर आकाशवाणी विभिन्न केन्द्रों में लगभग छः वर्षों- सन् 1948 ई. से सन् 1953 ई. तक कार्यक्रम अधिकारी के पद पर वे कार्यरत रहे। सन् 1950 ई. से सन् 1952 ई. तक आप प्रयाग में रहे। कम्यूनिस्ट विचारधारा के होने पर भी उनका लगाव आर्ष साहित्य और वैदिक मूल्यों के प्रति भी था। वैदिक धारा के प्रति लगाव ने उन्हें अपने साथियों से दूर कर दिया। पार्टी में भी वे विश्वसनीय नहीं रह गये थे। वे एकाकी जीवन जीने लगे। सन् 1953 ई. में रेडियो की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। अलग-अलग स्थानों पर रहने के कारण इनकी मुलाकात अन्य लोगों से भी होती। लखनऊ में वे गिरिजा कुमार माथुर से मिले तो नागपुर में गजानन माधव मुक्तिबोध से।

नरेश मेहता को बचपन से ही यात्रा का शौक था। इस शौक के कारण सत्यवाजक परिव्राजक का 'अमरीका भ्रमण' को कई बार पढा। बचपन में खानाबदोश लुहारों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते देखा। अपनी दो रूचियों का संकेत देते हुए लिखा है-'वह ऐसा ही घूमते रहे, जैसा कि उसने अपने बचपन में खानाबदोश लोहारों को अपनी बैलों की घण्टियाँ बजाते हुए विन्ध्य की घाटियों में घूमते हुए देखा, क्योंकि उसे एक सजे हुंए कमरे से कहीं अधिक किसी तम्बू में केवल पडे रहना और कुहरे को देखना ज्यादा अच्छा लगता है। दूसरी यह कि वह लिखे और आग लिखे।'[14]

कुसाग्र बुद्धि अपनी सृजनात्मक क्षमता एवं अपनी पहली तुकबंदी का श्रेय अपनी सौतेली बहन शांति को देते । बहन शांति से उन्हें बहुत लगाव था। पांडिण्यपूर्ण वातावरण तो इन्हें परिवार से ही मिला था उसे गरिमापूर्ण बनाया काशी के मनीषात्मक परिवेश ने। वहाँ इन्हें आचार्य केशव प्रसाद मिश्र, पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र एवं आचार्य

नन्ददुलारे वाजपेयी का सान्निध्य प्राप्त हुआ । वे विद्वानों के वैदिकता के अमूल्य ज्ञान से लाभान्वित हुए और यह वैष्णव संस्कार के बीज भी पोषित हुए। वैदिक मार्ग एवं अनुभव ने इन्हें पूर्वजों के उस कर्म मार्ग का पथिक बना दिया जिसे ऋषि-मुनियों-तपस्वियों ने अपने शारीरिक मोह को त्याग कर प्राप्त किया था। उनके संबंध में यशपाल, अमृतलाल नागर जैसे प्रगतिशील लेखकों से थे। अज्ञेय के साहित्यकार, उनके साहित्यिक कृतित्व और व्यक्तित्व के प्रति उनमें समर्पण भाव था। इस संदर्भ में अज्ञेय के प्रयाग आगमन पर नरेश जी द्वारा विशेष रूप से किया गया आतिथ्य सत्कार उल्लेखनीय है-'अज्ञेय जी प्रयाग में आये हुए थे। उनके सम्मान में नरेश जी ने अपने घर पर कुछ मित्रों को बुला रखा था। यूँ तो अज्ञेय जी की इच्छा सीधे अकेले नरेश जी से ही मिलने और पूरी आत्मीयता से बातचीत करने की थी परन्तु अज्ञेय जी की इस इच्छा से नरेश परिचित नहीं थे। और उनकी दृष्टि में अज्ञेय जी का सम्मान ही उस समय प्रमुख रूप से था। अतः कई मित्रों के साथ ही अज्ञेय और नरेश जी का मिलना उनके घर पर हुआ। उसके पूर्व एकाध बार अज्ञेय जी नरेश जी के घर पहले ही गए थे, परन्तु भेंट नहीं हुई थी। उस भेंट की सबसे केन्द्रीय बात- यह थी कि नरेश मेहता इतने प्रसन्न थे कि जैसे उन्होंने कोई नशा सेवन कर रखा हो। उनकी हँसी और उनके किस्से से दोनें एक - दूसरे को मात दे रहे थे। लगता था जैसे उल्लास एक उन्माद के रूप में उनपर छाये जा रहा हो।'[15] उनके साहित्यिक जीवन में उनकी पत्नी महिमा का भी उल्लेखनीय योगदान रहा। इनके दिल्ली निवास के समय कुछ विशिष्ट साहित्यकारों से भेंट हुई जो साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

कवि नरेश मेहता पर वैदिक - दर्शन एवं गाँधीवादी सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा है। उन्होंने अपने काव्य में मानव की बुनियादी गरिमा स्वीकार की है। वे कविता को आत्माभिव्यक्ति ही नहीं मानते वरन् यह भी मानते हैं कि कविता मानवीय औदात्य की

अभिव्यक्ति एवं मानवीय मन की उर्ध्वचेता आकांक्षा है । कविता एवं कवि के संबंधों को स्पष्ट करते हुंए वे कहते हैं कि सृजन की उदात्तता के लिए कवि को स्वयं कविता बन जाना पड़ता है-कविता अवतरित होती है, घटित होती है।[16]

कवि नरेश मेहता ने आधुनिक युग के बदलते हुए राजनीतिक संदर्भ में सत्ता व्यवस्था एवं शोषित के संबंध को लेकर महत्वपूर्ण विचार दिए हैं। आधुनिक समाज के ज्वलन्त प्रश्नों, राज्य-व्यवस्था, शासन पद्धति, साम्राज्यवाद तथा युद्ध आदि के संबंध में समसामयिक संदर्भ में चिंतन किया है। राजनीतिक दृष्टि से वे जनवातंत्र्य के पक्षघर हैं तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को मनुष्य का मौलिक अधिकार माना है। उनके काव्य में भारतीय दर्शन का सहज रूप दिखाई पड़ता है। उन्होंने प्रकृति में अन्तरनिहित परात्पर सत्ता का अनुभव किया है। प्रकृति के माध्यम से अपनी जिज्ञासा व्यक्त की है।

इनका प्रथम कविता संकलन अज्ञेय द्वारा संपादित दूसरा-सप्तक में संकलित हुई थी। इस सप्तक में कवि मेहता की कुल दस कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएँ मुख्यतया सांस्कृतिक भूमिका पर कवि की प्रकृति-चेतना एवं सौन्दर्य-भावन को उदघाटित करती हैं। 'वनपाखी सुनो (सन् 1957 ई.), बोलने दो चीर को (सन् 1961 ई.), मेरा समर्पित एकान्त (सन् 1963 ई.), उत्सवा (सन् 1979 ई.), तुम मेरा मौन हो (सन् 1982 ई.) उनके मुक्तक काव्य हैं। संशस की रात, महाप्रस्थान, प्रवाद-पर्व, शबरी, प्रार्थना पुरूष इनके प्रबंध काव्य हैं। उनके गीतों के विषय में डॉक्टर विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है-नरेश मेहता धरती के प्रति आस्था के कवि हैं। उनके काव्य की विशेषता है-मानव और प्रकृति के साथ गहरा लगाव। मनुष्य के महिमा की प्रकृति, कृषि जीवन के प्रति आकर्षण, वैश्विक दृष्टि तथा अखण्ड आस्था।[17]

रघुवीर सहाय : रघुवीर सहाय हमारे समय के उन महत्त्वपूर्ण रचनाकारों में से एक है,

जिनकी रचनाओं के समझे बगैर समकालीन साहित्य की कोई भी पहचान अधुरी होगी। उन्होंने अपनी कविता, कहानी, निबंध और सम्पादकीय टिप्पणियों के जरिए हमारी समय और समाज को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। वह मूलतः कवि हैं और उनकी काव्य-दृष्टि ही अन्य विधाओं को एक उत्कर्ष देती है। खासकर एक ऐसे समय में जब नई कविता रूढ हो चली थी, एक तरह से अमूर्त स्तर पर जाने लगी थी तब इस परिदृश्य में हस्तक्षेप करते हुए रघुवीर सहाय ने अपनी रचनाओं को संभव बनाया।[18]

रघुवीर सहाय का जन्म 9 दिसम्बर, 1929 ई. को लखनऊ में हुआ था। इनके पिता श्री हरदेव सहाय बैसबाडे की जमींदारी को छोडकर नौकरी करने के लिए लखनऊ आ गए थे। रघुवीर सहाय की आरंभिक शिक्षा लखनऊ के प्रिंपरेटरी स्कूल में सम्पन्न हुई। सन् 1944 ई. में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। उन्होंने सन् 1947 ई. में अपनी पहली कविता 'कामना' लिखी। उस काल के अगस्त अंक में उनकी पहली प्रकाशित कविता 'आदिम संगीत' है। सन् 1948 ई. अज्ञेय द्वारा संपादित द्विमासिक 'प्रतीक' में पहली बार लंबी कविता छपी जिसका शीर्षक था-'सायंकाल'! सन् 1948 ई. में ही उन्होंने बी. ए. की परीक्षा पास की। लखनऊ विश्वविद्यालय में अंग्रेजी एम. ए. में दाखिला लिया लेकिन कक्षा में उपस्थिति पूरी न होने के कारण तत्कालीन उपकुलपति आचार्य नरेन्द्र देव ने परीक्षा में बैठने की अनुमति नहीं दी। इसके बाद ये इलाहाबाद आ गये, वहाँ शमशेर जी एवं श्री कृष्णदास के साथ रहने लगे वहीं वे अज्ञेय जी के सम्पर्क में भी आये। 'दूसरा सप्तक' के लिए कविताएँ भी अज्ञेय को दी। बाद में उन्होंने सन् 1951ई. में लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम. ए. किया।

सन् 1953 ई. के मई महीने में ये आकाशवाणी के समाचार विभाग में उप संपादक बने। लगभग 4 वर्षो तक काम करने के बाद उन्होंने वहाँ से इस्तीफा दे दिया। आपने 'प्रतीक' पत्रिका के सहायक संपादक भी बने । 'युग-चेतना' में दिल्ली के

प्रतिनिधि भी रहे। इस पत्रिका में उनकी कविताएँ भी प्रकाशित हुई। कवि के रूप में उन्हें दूसरा सप्तक (सन् 1951 ई. सं. अज्ञेय) से विशेष पहचान मिली।

रघुवीर सहाय का काव्य-लेखन करीब-करीब सन् 1946 ई. से आरम्भ हुआ। हालाँकि साहित्य में उनकी रूचि बचपन से ही थी। उनके पिता साहित्य पढाते थे। दसवीं कक्षा में ही उन्हें अन्य कवियों के साथ केशव दास और हरिऔध को पढने का अवसर मिला। भाषा के प्रति भी वे बडे सजग व सतर्क थे। उन्हें यह सतर्कता बचपन में संस्कार के रूप में मिली थी। उन्होंने अपने बचपन की स्मृति को प्रकट करते हुए कहा है-"वे अनुभव ऐसे नहीं हैं, जिनके द्वारा मैं अपने को कोई महिमा दूँ, गरीबी या कोई ऐसी बात शुद्ध रागात्मक बात तो यह है कि मुझे बहुत ज्यादा प्यार मिला और उसी के साथ-साथ बहुत ज्यादा अकेलापन भी रहा है। एक बार अजब तरीके से किताबों का खजाना मिल गया था। मेरे एक संबंधी की किताबों की दुकान चल नहीं रही थी। उन किताबों में तमाम तरह की किताबें थीं, तीसरे, चौथे दर्जे की पाठ्य-पुस्तकें, बंगला उपन्यास, अंग्रेजी उपन्यास, मिथक-कथाएँ, परी-कथाएँ। दूसरा प्रभाव घर में और आसपास में रहने वालों की भाषा का था। हिन्दी एक हद तक अंग्रेजी, अच्छी उर्दू, स्कूल में दूसरी भाषा बंगला, इसके अलावा साहित्य और संस्कृति के एक अध्यापक मेरे पिता का बहुत साथ रहा। भाषा के बडे मजेदार प्रयोग हमने साथ-साथ किये। विचित्र तरीके से वाक्यों का स्थानान्तरण, वाक्यों के हिस्से क्या-क्या है, भाषा के साथ खलने, उसे बदलने में मेरी दिलचस्पी रही है। सटीक अभिव्यक्ति ढूँढने में मेरे पिता ने हमेंशा मुझे सहारा और सहयोग दिया।"[19]

एक कवि के रचनात्मक विकास में बचपन की स्मृतियों, संस्कारों और ग्रन्थियों का सार्थक और प्रभावशाली योग हुआ करता है। पदार्थों के साथ, भाषा के साथ, मनुष्य के साथ और संस्थाओं के साथ बचपन की पवित्र पहचान आगे चलकर रचना की बनावट को कभी ज्ञात और कभी अज्ञात रूपों में प्रभावित करती है । रघुवीर सहाय के

आरंभिक मन को गढने में उनके पिता का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यह प्रभाव उनकी कुछ कविताओं में भी देखा जा सकता है। पिता ने उन्हें जन्म दिया, भाषा के प्रति सतर्क रहने की दिशा दी, उसके सही इस्तेमाल को सार्थक जीवन के लिए जरूरी मानने वाले संस्कार का रोपण किया। इतना ही नहीं, भारत के बहुत से बुद्धिजीवी जिन असंगत धार्मिक रूढियों में जन्म से ही बन्दी रहते हैं, से रघुवीर सहाय के पिता ने उन्हें इन सबसे मुक्त रखा। [20]

रघुवीर सहाय के प्रसिद्ध काव्य संग्रह हैं : - सीढियों पर धूप में (सन् 1959 ई.), आत्महत्या के विरूद्ध (सन् 1967ई.), हँसो-हँसो जल्दी हँसो (सन् 1975 ई.), लोग भूल गए हैं (सन् 1982 ई.) आदि हैं। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है-"रघुवीर सहाय की कविता राजनीतिक-सांस्कृतिक चेतना के प्रखर रूप को लेकर सामने आयी। हिन्दी-कविता को राजनीतिक-कविता की शक्ति संभावनाओं में इस कवि ने ही ढाला तथा कविता के पुराने साँचे और ढाँचे को तोडकर एक नया साँचा तैयार किया। बोलचाल की अखबारी भाषा के प्रयोग से काव्यात्मकता को निचोडने का साहस भी इस कवि ने दिखाया। अपने समय की अमानवीय राजनीति पर व्यंग्योक्ति तथा नये ढंग की कविता को ईजाद किया। " [21]

भारतीय समाज में एक दब्बूपन है, कायरता है। मानवीय मूल्य टूटते जा रहे हैं। सत्ता-केन्द्रित राजनीति मनुष्य के प्रति क्रूर होती रही है। यथास्थिति अपनी मजबूत जडों के साथ आज भी कायम है। ऐसे समय में सहाय जी का साहित्य यह बोध कराता है कि यथास्थिति का निरूपण नहीं है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि यथार्थ को देखने की दृष्टि वस्तुओं को देख सकने की क्षमता पर नहीं बल्कि वस्तुओं के आपसी रिस्तों को बदलने की इच्छा पर निर्भर है। वह यथार्थ नहीं है जो पराधीन और पराजित मनुष्य पन निरीक्षण शक्ति का वर्चस्व स्वीकार करता है।

रघुवीर सहाय के मन में एक बेहतर दुनियाँ का नक्शा है। इस दुनियाँ को बेहतर बनाने की इच्छा भी है। उनकी कविताओं में, कहानियों में, निबन्धों में उन्होंने आज

के मनुष्य को, उसकी समूची त्रासदी को इस उम्मीद के साथ परिभाषित करने का प्रयत्न किया है कि एक बेहतर संसार की रचना संभव हो सके। इसलिए उनका साहित्य बडबोला साहित्य न होकर शब्दों की सही कीमत पहचानने वाला सहित्य है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रघुवीर सहाय का साहित्य समकालीन हिन्दी साहित्य का महत्वपूर्ण हिस्सा है। उनकी कविता के बगैर साहित्य की दुनियाँ वैसी नहीं होती जैसे कि वह आज की आजादी के बाद कोई साहित्य के समान मुख्यतया दो खतरे रहे हैं। एक साहित्य का संवेदनशून्य एवं अनुभवहीन होना दूसरा आधुनिकतावादी लेखकों का रचना जिसमें लोक-मंगल नहीं विराजता। इन दोनों का पहचानते हुए सहाय जी ने सहित्य रचा है, उसमें सामाजिक अनुभवों की पडताल के साथ-साथ गहरा शिल्प-विवेक भी मौजूद है। ये रचनाएँ समाज के त्रास, भय तथा अंधेरे और आतंक का अविनत रूपों में बखान करती है। यह वही त्रास, भय व अंधेरा है जिसे गाँधी जी समाज से, देश से, दुनियाँ से दूर करना चाहते थे। वे सबको त्रासदी मुक्त, भयहीन एवं तमहीन करना चाहते थे। गाँधी जी के विचारों की परछाई रघुवीर सहाय के काव्य में है।

अज्ञेय : - आधुनिक हिन्दी भाव बोध के इतिहास में अज्ञेय का व्यक्तित्व एवं कृतित्व केन्द्रीय महत्व का है। इन्होंने लगभग अर्धशती तक अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी जगत को प्रभावित किया। इनका यह चिन्तन बार-बार व्यक्त करता है कि सर्जनात्मक व्यक्तित्व मूलतः स्वाधीन होगा और स्वाधीन होकर ही स्वाधीन चिन्तन को जन्म दिया जा सकता है। कहना न होगा, नवीन सर्जनात्मकता की गहरी और खरी चिन्तन दृष्टि स. ही. वात्स्यायन अज्ञेय के विचार मंथन में मिलती है। अपनी स्वाधीन चेतना के कारण ही अज्ञेय को हिन्दी में जितना विरोध झेलना पडा है उतना शायद ही किसी रचनाकार को झेलना पडा हो। [22]

अज्ञेय का जन्म 7 मार्च, सन् 1911 ई. में कसिया ग्राम, जिला देवरिया (उ. प्र.) में हुआ था। इनके पिता पंडित हीरानन्द शास्त्री पुरातत्व विभाग के उच्च अधिकारी थे। पिता

भ्रमण करते रहते थे अतः उनका बचपन अधिकांश लखनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रास में बीता। शिक्षा मद्रास और लाहौर में हुई। बी. एस. सी. तक शिक्षा पाने के बाद अंग्रेजी, हिन्दी-साहित्य का स्वाध्याय किया। घर पर ही संस्कृत भाषा का भी अध्ययन किया। अंग्रेजी विषय में एम. ए. करने हेतु प्रवेश भी लिया लेकिन क्रान्तिकारी आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण उसे जारी न रख सके।

अज्ञेय का जीवन यायावरी और क्रान्तिकारी रहा है। सन् 1937 ई. में अज्ञेय को 'सैनिक' पत्रिका और पुनः कलकता से निकलने वाले 'विशाल भारत' के संपादन का दायित्व सौंपा गया। इसी पत्र के माध्यम से ये सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' के नाम से साहित्य जगत में प्रतिष्ठित हुए। सन् 1939 ई. में इन्होंने 'ऑल इण्डिया रेडियो' में नौकरी की। लेकिन उन्हें यह कार्य उबाऊ लगा अतः उसे छोड सन् 1943 ई. में सेना में भर्ती हो गये। द्वितीय विश्व युद्ध के समय इन्हें कुछ दिनों तक असम और वर्मा के मोर्चो पर ही रहना पडा। सन् 1946 ई. में सेना की नौकरी छोड दी और सन् 1947 ई. में 'प्रतीक' नामक हिन्दी पत्र का सम्पादक शुरू किया। सन् 1955 ई. में यूनेस्को के आमंत्रण पर पश्चिमी यूरोप की यात्र पर गए। तभी से इनकी विदेश यात्राओं का दौर शुरू हुआ। सन् 1961ई. में इन्हें 'केलिफोर्निया विश्वविद्यालय' में भारतीय संस्कृति और साहित्य के अध्यापक के रूप में नियुक्ति मिली। यहाँ से इन्होंने पूरे अमेरिका का भ्रमण किया। सन् 1960 ई. में ये रूमानिया, युगोस्लाविया, मंगोलिया, रूस आदि देशों की यात्र पर गए। सन् 1965ई. में इन्हें हिन्दी के प्रसिद्ध पत्र 'दिनमान' का संपादक बनाया गया। कुछ समय तक जोधपुर विश्वविद्यालय में हिन्दी-निर्देशक पद पर कार्य किया। इस प्रकार साहित्य के साथ 'अज्ञेय' ने हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अज्ञेय ने तार सप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक एवं रूपाम्बरा इनके द्वारा सम्पादित काव्य-संकलन हैं। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है 'भग्नदूत' और 'चिन्ता' की छायावादी

कविताओं से अपनी काव्य-यात्रा आरम्भ करने वाले अज्ञेय प्रयोगवाद और नयी कविता के विशिष्ट कवि हैं। इस धारा के कवियों में उनका स्वर सबसे वैविध्यपूर्ण है। उनका स्वर अहं से लेकर समाज तक, प्रेम से लेकर दर्शन तक, आदिम गन्ध से लेकर विज्ञान की चेतना तक, यंत्र-सभ्यता से लेकर लोक-परिवेश तक यातना-बोध से लेकर विद्रोह की ललकार तक, प्रकृति-सौन्दर्य से लेकर मानव-सौन्दर्य तक फैला हुआ है। [23]

रामवीर सिंह ने लिखा है-अज्ञेय जी प्रयोगवादी कविता के प्रोधा हैं। तार सप्तक या द्वितीय या तृतीय सप्तकों की योजना और प्रकाशन का श्रेय आप ही को है। प्रयोगवाद का घोषण-पत्र भी आपने तैयार किया। छायावादोत्तर कविता को प्रयोगवाद की ओर ले जाने का कार्य 'अज्ञेय' जैसा प्रतिभाशाली कवि ही कर सकता था। [24]

भग्नदूत, चिंता इत्यलम् हरी घास पर क्षणभर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनु रौंदे हुए से, अरी ओ करूणा प्रभामें, आँगन के द्वार पर, कितनों नावों में कितनी बार, क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, सागर मुद्रा, महावृक्ष के नीचे और पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ आदि काव्य संग्रह हैं। कवि के अतिरिक्त ये लेखक, निबन्धकार, कहानीकार, उपन्यासकार एवं आलोचक के रूप में हिन्दी साहित्य में प्रकट हुए हैं। जैसा इनका जीवन वैविध्यपूर्ण है वैसा ही इनका साहित्य भी। [25]

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है-काव्य-चिन्तन में ही नहीं उनके जीवन व्यापी साहित्य और कर्म चेष्टाओं में भी सांस्कृतिक अस्मिता का यह आग्रह निरन्तर प्रतिफलित होते देखा जा सकता है। [26]

अज्ञेय की काव्य-चेतना का मूल्य स्वर आत्मनिष्ठ और व्यक्तिवादी है। सैनिक सेवा और किसान आन्दोलन से जुडे रहकर भी वे सामान्य जन जीवन के साथ नहीं जुड पाए। व्यक्ति निष्ठा का आग्रह ही व्यक्तित्व की खोज के मुहावरे में बदलकर उनके जीवन परिस्थितियों के लगातार बढते हुए क्रूर और आक्राम दबावों के बीच अज्ञेय ने बार-बार यह

जानना चाहा है कि मानव-व्यक्तित्व का व्यष्टि रूप में क्या स्थान है, वह सामाजिक ईकाई के रूप में बचा भी रह सकता है या नहीं ? यह सवाल ही उनके भीतर संघर्ष की जमीन तैयार करता है।[27]

इनके काव्य में किसान, मजदूर, आम जनता आदि का चित्रण है। कुछ कविताएँ भौतिकवादी और सामाजिक विषमता को रेखांकित करने के लिए विख्यात हैं। हरी घास पर क्षणभर, बावरा अहेरी और इन्द्रधनुष रौंदे हुए आदि रचनाओं में अज्ञेय की व्यक्ति-चेतना निरन्तर एक दर्शन के रूप में संघनित होते हुए दिखाई देती है। 'आँगन के द्वार पार' तक आते-आते अज्ञेय का व्यक्ति चिन्तन भारत के विभिन्न धार्मिक संप्रदायों की तत्व विचार संबंधी अवधारणाओं के सार को अपने मनोनुकूल ढाल कर एक नया दर्शन खडा करता है। इस संग्रह की 'असाध्यवीणा' शीर्षक कविता में कवि ने बौद्ध कालीन परिवेश की सृष्टि कर जगत् व्यापी मौन की एकात्मकता का प्रतिपादन किया है। इस कविता का वीणावाद 'केशकबली' भारतीय दर्शन जगत का प्रसिद्ध अजित केशकेब हैं, जो भौतिकवादी और सामाजिक विषमता को रेखांकित करने के लिए विख्यात है। लेकिन 'अज्ञेय' ने अपनी व्यक्तिवादी चेतना की पुष्टि के लिए सामाजिक समता का अग्रदूत बना दिया है। उसकी वीणा की झंकृति से राजा-रानी, किसान, मजदूर, जनता, तिजोरियाँ भरकर रखने वाले सेठ साहूकार और रंक-भिखारी सभी समान रूप से आह्लादित होते हैं।

जिस उच्च मध्यवर्गीय वैयक्तिक चेतना को अज्ञेय ने अपने काव्य की विषय-वस्तु बनाया है उसका सीधा असर उनकी कविताओं के संरचना-शिल्प पर भी पडा है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है-तार सप्तक के प्रवर्तक सम्पादक के रूप में इन्होंने हिन्दी में उन कवियों को पाठक के लिए उजागर किया जो काव्य को नई दृष्टि से देखने में समर्थ थे। अज्ञेय की काव्य दृष्टि वैश्विक थी।[28] डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है "अज्ञेय की प्रयोगात्मकता एवं नवीनता को लेकर काफी आलोचना होती रही है ।"[29] अज्ञेय ने चाहे

कितनी आलोचनाएँ सही हैं ये प्रयोगवाद के जन्मदाता व एक क्रान्तिकारी कवि, देश की स्वतंत्रता के लिए वे कुछ भी करने को तैयार थे। ये चार साल तक जेल में तथा दो वर्ष तक नजरबंद भी रहे। किसान आन्दोलन में बढकर भाग लिया। हिन्दी का यह एक सच्चा सिपाही है जिसने साहित्य की सेवा एवं देश की सेवा एक साथ गाँधी विचारधाराओं का अनुसरण करते हुए किया है।

शमशेर बहादुर सिंह :- इनका जन्म उत्तर प्रदेश के देहरादून नगर (अब उत्तरांचल) में 3 जनवरी, 1911 ई. को एक जाट परिवार में हुआ। इनकी प्रारंभिक शिक्षा देहरादून में हुई। बाद में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सन् 1933 ई. में बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1930 ई. में इनका विवाह हुआ था। लेकिन चार-पाँच वर्ष के अन्दर ही पत्नी का देहान्त हो गया। इन्होंने पुनर्विवाह से इन्कार कर दिया। कला-विद्यालय से चित्रकला की ओर इनका झुकाव हुआ और चित्रकला की समुचित शिक्षा प्राप्त की। डॉ. राम विलास शर्मा और श्रीराम सिंह चौहान के संपर्क में आने के बाद इनका झुकाव मार्क्सवादी चिंतन की ओर हुआ और ये प्रगतिशील काव्य आन्दोलन के साथ जुड गए।

काशी से प्रकाशित 'हंस', बम्बई से प्रकाशित 'नया साहित्य' पत्रों में काम करते हुए शमशेर भारतीय साम्यवादी दल से जुडे रहे। दिल्ली में हिन्दी-उर्दू कोश-निर्माण योजना में भी काफी समय तक कार्यरत रहे। विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में बहुत समय तक अध्यापन किया। उर्दू और अंग्रेजी साहित्य के प्रति भी इनका गहरा लगाव था। सहज, संकोचशील स्वभाव के कारण ये आत्म-प्रचार से काफी दूर रहे हैं। गंभीरता, सहनशीलता और शान्त स्वभाव इनके व्यक्तित्व की मूल विशेषता रही है। वाद-विवाद और अन्य झंझटों से दूर रहकर गहन अध्ययन में भी लगे रहे। अन्य कवियों की तुलना में इन्होंने कविताएँ कम लिखीं हैं, लेकिन एक-एक कविता के शिल्प को तराशने में इन्होंने अपने कौशल का पूर्ण परिचय दिया है।

कुछ कविताएँ इतने पास अपने, उदिता, चुका भी नहीं हूँ मैं, अभिव्यक्ति का संघर्ष, बात बोलेगी आदि इनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। डॉ. विजयेन्द्र के अनुसार-चित्रकला के प्रति प्रेम होने के कारण इन्होंने अपनी कविताओं में भी चित्रात्मक बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। तात्विक दृष्टि से शमशेर को काव्यानुभूति में प्रेम और सौन्दर्य की ही अनुभूतियों का रंग चटख है। शमशेर की प्रवृत्ति सदा ही वस्तु परकता और उसके मार्मिक रूप में ग्रहण करने की रही है। उसकी काव्यानुभूति बिम्ब की ही नहीं बिम्बलोक की है। दूसरा सप्तक के कवि शमशेर का जीवन संघर्ष ही कविता बनकर सामने आया है।[30]

शमशेर की कविता उनकी उदारवादी और अतिशय रागात्मक प्रकृति के कारण प्रायः आत्मपरक होती गई है। इनकी कविताओं में विश्व बंधुत्व के उदार भावना भी प्रतिपादित हुई है। रामवीर सिंह ने लिखा है-"शमशेर बहादुर सिंह मार्क्सवादी विचारधारा के अनुयायी हैं। आम आदमी का दुःख-दर्द इनकी कविता का विषय है। वर्तमान विसंगतियों से छटपटाता 'आधुनिक व्यक्ति' इन्हें बहुत दूर से बुलाता-सा दिखता है। "[31]

शमशेर ने अन्य प्रगतिशील कवितयों की भाँति प्रकृति के अनेक भावपूर्ण चित्र निर्मित किए हैं। उषा, शाम, नल, दरिया, गुलाब आदि इनकी कवितओं के विषय बने हैं। अन्य कवियों की भाँति इनकी कविताओं में विषय-वैविध्य तो नहीं मिलता, लेकिन इनकी अभिव्यक्ति प्रणाली का वैशिष्ट्य पूरी तरह उद्घाटित होता है। धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है- "इनकी रचना प्रकृति हिन्दी में अप्रतिम है और अनेक संभावनाओं से लिप्त है। हिन्दी के नये कवियों में इनका नाम प्रथम पांक्तेय है। अज्ञेय के साथ शमशेर ने हिन्दी-कविता में रचना-पद्धति की नयी दिशाओं को उदघाटित किया है और छायावादोत्तर काव्य को एक गति प्रदान की है।"[32]

गजानन माधव मुक्तिबोध :- मुक्तिबोध का जन्म 13 नवम्बर, सन् 1917 ई. को श्योपुर (ग्वालियर) में हुआ था।[33] इनके पिता माधव मुक्तिबोध उज्जैन में इंस्पेक्टर पद से सेवा निवृत्त

हुए थे। इनकी माता जी बुंदेलखंड के ईसागढ गाँव के एक किसान की पुत्री थी। वे एक सुशिक्षित महिला थीं। मुक्तिबोध की घर की भाषा मराठी तथा घर से बाहर हिन्दी थी। ये चार भाई थे। इनसे छोटे भाई शिरचन्द्र मराठी भाषा के प्रतिष्ठित कवि थे, इनकी प्रारंभिक शिक्षा उज्जैन में ही हुई। उज्जैन में पढते समय इनका एक सहयोगी था जिसका नाम शान्ताराम था। शान्ताराम रात को चौकीदारी का काम करता था। मुक्तिबोध उसी के साथ रात-बेरात शहर की तफरी को निकल जाते। यही से इन्हें बीडी पीने की लत लग गई। रात का भयानक सन्नाटा, पुलिस की सीटियाँ, रहस्यमयी वातावरण, जुर्मो का अंधेरा संसार जो इनकी कविता में है, रात की तफरी ने हीं इन बिम्बों को सजाने में मदद की है। मुक्तिबोध के पिता चाहते थे कि बेटा पढ-लिखकर बडा वकील बने, सामाजिक प्रतिष्ठा कमाये किन्तु उनकी जिज्ञासाऐं उन्हें कही दूसरी ओर खींच ले गईं। वह ज्ञान की तलाश में थे धन की नहीं। वे तो मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, तर्कशास्त्र की समस्याओं में से रस ढूँढने में लगे थे। बीस-एक्कीस साल की आयु में अपनी जाति से बाहर की लडकी से प्रेम किया और उसी से विवाह भी किया। जातिवादी लोगों से विरोधों का, आलोचनाओं का शिकार हुए लेकिन हिम्मत नहीं हारी। घर-परिवार में भी घोर विरोध हुआ जो अन्त तक हुआ लेकिन वे किसी के आगे नहीं झुके।

सन् 1938 ई. में इंदौर के 'होलकर कॉलेज' से बी. ए. पास किया तथा उज्जैन के एक मोडर्न स्कूल में अध्यापक हो गए। पिता सेवा निवृत्त हो चुके थे। घर में आर्थिक तंगी थी। सन् 1945 ई. में मुक्तिबोध बनारस चले गये। वहाँ त्रिलोचन शास्त्री के साथ 'हंस' का संपादन करने लगे। लेकिन वे वहाँ भी ज्यादा दिन नहीं टिके। भारत भूषण अग्रवाल तथा नेमीचन्द जैन के बुलावे पर कलकत्ता गये लेकिन वहाँ कोई काम नहीं मिला। सन् 1946-47 ई. में कलकत्ता से जबलपुर चले गये और हितकारिणी हाई स्कूल में अध्यापक बन गए। वे यहाँ भी नहीं टिके और नागपुर पहुँच गये जहाँ 'ऑल इण्डिया रेडिया' में कुछ दिन समाचार विभाग में संपादक के रूप में कार्य किया । नागपुर से प्रकाशित साप्ताहिक 'नया खून' में

लिखने लगे। वहाँ मजदूरों का पक्ष लिया, भ्रष्ट तत्वों का पर्दाफाश किया। नागपुर विश्वविद्यालय से ही हिन्दी में एम. ए. किया और राजनाँद गाँव के दिग्विजय कॉलेज में नियुक्त हुए।

काव्य के प्रति तो रूझान तो बचपन से ही था। छिटपुट कविताएँ लिखते भी थे। लेकिन महत्वपूर्ण काव्यों का प्रणयन नागपुर प्रवास के दौरान ही किया। इनके प्रमुख काव्य "चाँद का मुँह टेढा है (सन् 1964 ई.) एवं "भूरी-भूरी खाक धूल" है। कवि के अतिरिक्त मुक्तिबोध कथाकार एवं आलोचक भी हैं। "मुक्तिबोध की कविता में संघर्ष, धुटन, टुटन और खालीपन की अभिव्यक्ति है। मध्य वर्ग के जीवन में आनेवाले सुबह और जानेवाली शाम के बीच जितने परिवर्तन होते हैं, मुक्तिबोध ने एक-एक को निकटता से देखा है। वे स्वयं भी एक मध्यवर्गीय सदस्य थे अतः आभाव और खालीपन द्वारा बनाया जाने वाला खोखला व्यक्तित्व उनके सौन्दर्य के रूप में प्रकट हुआ। नौकरी करना, छोडना, फिर पकडना, समय-समय पर व्यवस्था की कटु कृपाएँ इन्हें बराबर मिलती रही। प्रारंभ में इनका कृतित्व शासन का कोप भाजन भी बना। 'भारत इतिहास और संस्कृति' नामक पुस्तक मध्य प्रदेश शासन द्वार जब्त की गई और उसे गैर कानूनी करार भी दिया गया।"..........अभिप्राय यह कि जहाँ कहीं भी उन्होंने छोटे और मझोले आदमी पर शोषण और अत्याचार देखा, उनके संघर्ष का जहरी नाग भभक पडा। उन्होंने तार-सप्तक में कहा था-"आज के वैविध्य में उलझन भरे रंग-बिरंगे जीवन को यदि देखना है तो अपने-अपने वैयक्तिक क्षेत्र से एक बार तो उडकर बाहर जाना ही होगा ....कल का केन्द्र व्यक्ति है, पर उसी केन्द्र को अब दिशाव्यापी करने की आवश्यकता है। वास्तव में इनकी कविता की आधार-शिला इसी भावना पर रखी हुई है। स्वयं के भोगे हुए यथार्थ को समाज का सामंजस्य करते हुए उन्होंने अपनी कविता को आगे बढाया।" [34]

डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है-"मुक्तिबोध एक ऐसे कवि हैं जिनका अनुभव-जगत् बहुत व्यापक है, जो अपने परिवेश के जीवन के बहुत गहन भाव से जुडे हुए हैं। उनकी

प्रगतिवादी-दृष्टि, परिवेश-बोध, सामाजिक-चिंतन और अनुभव-वैविध को बल देती है। अतः कहा जा सकता है कि बाद के जीवन की बहुविद्ध छवि को लेकर विकसित होने वाली नई कविता के अग्रज कवि सच्चे अर्थों में मु क्तिबोध ही हैं। उनकी सबसे बडी शक्ति है-लोक परिवेश से गहरी संपृक्ति तथा जन-जीवन में विश्वास।"[35] मुक्तिबोध रोमांटिक शैली की कविता से पूरी तरह पिण्ड छुडाकर नया प्रयोग की ताकत से कविता की धारा को नया रूप देने का प्रयास किया। नयी - कविता आन्दोलन को पूरी शक्ति से आगे बढाया तथा तार सप्तक(सन् 1943 ई.) की अपनी कविताओं में मानवीय आस्तित्व की अर्थवक्ता की ओर न केन्द्रित किया। उनकी सम्पूर्ण कविता मानवीय चिन्ताओं-संघर्षो-तनावों को व्यक्त करती हैं। गरीबों व शोषितों की व्यथा को अपने काव्य में वरीयता प्रदान कर प्रगतिशील धारा को ऊँचाइयों पर पहुँचाया।

गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव इनके काव्य के पिछे के शब्दों तक हैं। उन्हें शोषित तथा दरिद्र लोगों से वैसी ही सहानुभूति है जैसी गाँधी जी को थी। उनकी 'अंधेरे में' कविता को गाँधी के इर्द-गिर्द ही है। वे इस कविता के नायक द्वारा समाज की स्थिति को बेहतर बनवाने का संकल्प करवाते हैं। यही संकल्प है कि जो गाँधी जी भारत के प्रत्येक नागरिक से करवाना चाहते हैं। गाँधी के समान मुक्तिबोध भी मनुष्य में मनुष्यता का भाव जगाना चाहते हैं। स्वार्थी मनोवृत्ति ने मनुष्य को संवेदनहीन बना दिया है। संवेदना और भाव मनुष्य की संस्कृति की सर्वोत्तम उपलब्धि है। वे करूणा और प्रेम को जगाना चाहते हैं क्योंकि यही मनुष्य को मनुष्य से जोडता है।

6. ख गाँधीवादी चेतना से प्रभावित प्रमुख काव्य

हरी घास पर क्षणभर :- यह प्रयोगवादी कवि 'अज्ञेय' द्वारा रचित काव्य-संकलन है। इसका प्रकाशन वर्ष सन् 1948 ई. है।[36] व्यक्ति परम्परा और समाज अज्ञेय के काव्य चिन्तन के केन्द्र में है। नदी के द्वीप, कलगी बाजरे की, हरी घास पर क्षणभर और कच्ची कतकी पूनों आदि इस संकलन की कविताएँ हैं । 'नदी के द्वीप' कविता में कवि समाज और व्यक्ति के

संबंधों की खोज करता है। सामुहिक जीवन के बीच कवि समाज का महत्व वहीं तक स्वीकारता है जहाँ तक वह व्यक्ति के विकास में सहायक होता है। सामुहिक जीवन के बीच व्यक्ति के निजी अस्मिता को सुरक्षित रखने की अभिलाषा अज्ञेय की है। 'कलगी बाजरे की' कविता में प्रकृति के टूटते मानवीय रिस्तों के प्रति दर्द है। प्रकृति का रंग मानव मन से अलग नहीं है। प्रकृति को बाहर से रौंदने पर मानव के भीतर के भाव नष्ट होते हैं। कवि मानव के जीवन में छायी कृत्रिमता को उससे अलग करना चाहता है। इस युग की कविता यथार्थ के धरातल पर सामाजिक जीवन में चलने वाले सत्य का उद्घाटन करती है।

अरी को करूणा प्रभामयी :- यह काव्य संग्रह अज्ञेय द्वारा रचित है तथा यह सन् 1957ई. में प्रकाशित हुआ था। हिरोशिमा मैंने देखा, एक बूँद सोन मछली आदि इस काव्य संग्रह की कविताएँ हैं। 'हिरोशिमा' कविता में कवि ने अणु बम से पैदा हुई भयावहता का वर्णन किया है। हिरोशिमा शहर में अणु बम गिराया गया था। अणु बम के विस्फोट से आग की गोला प्रकट हुआ और समूचा शहर उसमें जल गया। उस बम से उत्पन्न विभीषिका को आज भी उस शहर में देखा जा सकता है। मानव से परमाणु बम बनाया और वही बम मानवीयता को सोख गया। 'मैंने देखा एक बूँद' में कवि समय के पूर्ण प्रवाह में एक क्षण की खोज करता है। 'सोन मछली' मानव की आंतरिक सच्चाई को उजागर करती है।

संशय की एक रात :- नरेश मेहता-कृत 'संशय की एक रात'' आख्यानक काव्य है। इसका प्रकाशन वर्ष सन् 1962 ई. है। कवि ने इसमें राम के जीवन के घटनाहीन प्रसंग को अपना विवेच्य बनाया है। सेतुबन्ध के पूर्ण हो जाने पर सीता की मुक्ति के लिए लंका पर अभियान होने के समय युद्ध हो या नहीं के संशय से व्यस्त राम के माध्यम से युगीन प्रश्नों पर विचार करना कवि का अभिप्रेत है। प्रस्तुत कृति में राम अपनी वैचारिक समस्या-सीता की मुक्ति को लेकर द्वन्द -ग्रसित हैं। राम की मनःस्थिति दुविधा, अद्विग्नता, अनिश्चय, विवशता, असहायता इत्यादि को केन्द्र में रखकर मानव की मनःस्थिति को चित्रित किया है।

महाप्रस्थान :- नरेश मेहता ने इस खंड काव्य में व्यक्ति, समाज, शासक राज्य, शासन-व्यवस्था आदि को लेकर वैचारिक मंथन किया है। इसमें युद्ध के पश्चात ही वीभत्सता का भयावह चित्रण किया गया है। कवि की मान्यता है कि सारे मानवी-दु:खों का आधार यह राज्य, राज्य-व्यवस्था और राज्य-व्यवस्था का दर्शन है। धर्म का उत्स व्यक्ति की प्रज्ञा में होता है, राज्य में नहीं। राज्य का अकूत शक्ति - सम्पन्न होने का अर्थ ही है व्यक्ति का स्वत्वहीन हो जाना, क्योंकि किसी भी व्यवस्था को बडा होना अमानवीय तंत्र का प्रबल होना है। राजनीति विषकन्या की आत्मजा है क्योंकि सत्ताधारी कभी भी उदार चरित नहीं होता।

नरेश मेहता के मनन-चिन्तन तथा आधुनिक बोध के कारण इसमें अनेक समस्याओं की प्रस्तुति समकालीन परिवेश की पृष्ठभूमि पर हुई है। आज जिस मानव मुक्ति की आवश्यश्कता है उसी प्रतीक-पुरूष के रूप में युधिष्ठिर इस काव्य में अवतरित हुए हैं। कवि की वैयक्तिक चेतना काफी सशक्त है। वस्तुतः 'महाप्रस्थान' एक सफल काव्यकृति तो है हीं, विशिष्ट भी है।

प्रार्थना-पुरूष :- यह काव्य नरेश मेहता द्वारा लिखित गाँधी-गाथा है। इस इतिवृत्तात्मकता लघुकृति में कवि ने गाँधी जी के जीवन-काल की प्रमुख घटनाओं एवं कार्यो का उल्लेख किया है। गाँधी जी बचपन के प्राप्त संस्कारों का निरन्तर मार्जन करते हुए जहाँ व्यक्ति रूप में सिद्ध महापुरूष और महात्मा बन गए, वही अपने सम्पूर्ण जीवन को उन्होंने जनहित में समर्पित कर दिया। सत्य तथा अहिंसा के एक नये अस्त्र का आविष्कार किया। विदेश में रहकर रंग-भेद की समाप्ति का सफल प्रयास किया और अपने देश को विदेशी दासता से मुक्त कराया। वे व्यक्ति से नहीं मन के विकारों से घृणा करते थे। उनकी दृष्टि में सभी मनुष्य समान थे। उनका जीवन सम्पूर्ण विश्व के लिए प्रेरणा स्रोत है।

हँसो-हँसो जल्दी हँसो :- यह संग्रह रघुवीर सहाय द्वारा रचित है। इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ सहाय जी के सामाजिक और नैतिक सरोकारों को संकेतिक करती हैं। यह कविता

आज के जीवन की त्रासदी के साथ कवि के अपने सरोकारों को भी उजागर करती है। इस संग्रह की कविताओं में भय है, दहशत है, अकेले होते जाने का बोध है। लगभग हर कविता यह बताती है कि सत्ता की क्रूर ताकतें मनुष्य के साथ किस तरह का सलूक कर रही है। उसमें किसी की हत्या की व्यवस्था की जा रही है या फिर हत्या की जा चुकी है। ताकत से पैदा होनेवाली हिंसा कई रूपों में व्यक्त होती है।

सडक और समाज में होती हुई लगातार हत्याओं के त्रासद दृश्यों में यह भी लक्षित है कि मनुष्य एक दूसरे मनुष्य के साथ किस तरह असंवेदनशील हो गया है। मनुष्य की संवेदनहीनता ने उसे बोदा बना दिया है। यह कविता सन् 1974 ई. में लिखी गई थी, जब बिहार के साथ ही पूरे देश में एक जोरदार संघर्ष चल रहा था। शासक समुदास जैसे, शक्ति और सेंसरशिप के माध्यम से आतंक के नए रास्ते ढूँढने लगा था। इन सारी स्थितियों को देखते हुए रघुवीर सहाय द्वारा आपातकाल का पूर्वाभास अंतश्चेतना के आधार पर की गई भविष्यवाणी न होकर उनके द्वारा यथार्थ पहचान पर आधारित था।

चाँद का मुँह टेढा है :- यह संग्रह मुक्तिबोध द्वारा रचित है। इस संग्रह में 'पता नहीं' एवं 'अंधेरे में' आदि कविताओं सहित बहुत सी कविताएँ हैं। ये कवितायें तत्कालीन प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही है। इसकी लगभग सभी कविताएँ अपने नागपुर प्रवास के दौरान लिखी गई थी। इस संग्रह की 'अंधेरे में' कविता मुक्तिबोध की सबसे लम्बी कविता के रूप में भी जानी जाती है। इसकी रचना सन् 1957 ई. से लेकर सन् 1962 ई. तक हुई थी। यह कवि की प्रतिनिधि कविता भी है। "मुक्तिबोध की कविता की जडे हमारी उस जिंदगी में है जिसमें हम जीते हैं। उसमें एक ओर युद्ध, अकाल और महामारी है, प्रजातंत्र, संसद और संविधान है। दूसरी ओर हमारी निजी आसक्तियाँ और आशंकाएँ हैं, प्रेम और पूजा की सैकडों संवेदनाएँ हैं। तीसरी ओर जन्म और मृत्यु से जुडे सवाल हैं। ऊपर से अलग-अलग दिखाई देने वाले ये पक्ष वास्तव में अलग-अलग नहीं हैं। मुक्तिबोध ने जिन्दगी को किश्तों में

अभिव्यक्त नहीं किया।उनकी मुख्य चिन्ता जीवन को तनावमय समग्रता में देखने की है। वस्तु संसार के प्रति मुक्तिबोध की प्रतिक्रियाएँ सीधी और तात्कालिक नहीं हैं। उनकी प्रतिभा इस प्रतिक्रियाओं को संगठित कर उन्हें एक समूचे आस्तित्व की व्यवस्था से जोडती है। परिणामस्वरूप जीवन के किसी भी हिस्से की अनुभव-यातना उनकी रचनाओं में पूरे जीवन की अनुभव-यातना बनकर अभिव्यक्त होती है।" [37]

इस काव्य की कविताएँ सामाजिक, राजनीकि, धार्मिक एवं आर्थिक यथार्थ को उजागर करती हैं। इनमें स्वार्थ भावनाओं की आलोचना की गई है। मनकी आंतरिक दशाओं का चित्रण है। लोक जीवन का चित्र है। जनक्रांति की आशा कवि को है। शोषित लोगों का दु:ख-दर्द सामूहिक पीडा के रूप में वर्णित है। कवि स्वयं जनता के बीच जाकर उन्हें जागरूक बनाना चाहता है। काव्य का नायक तो गाँधी का ही प्रतिबिम्ब है जो क्रान्ति द्वारा समाज का, व्यक्ति का परिवर्तन चाहता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज की समस्त अर्थपूर्ण इकाइयाँ और मूल्य सभ्यता के दबाव में विश्रृंखलित और अर्थशून्य हो गए थे। उनके टूटने की गहन पीडा भारतीय आत्का में दिखाई पड रही थी। मुक्तिबोध ने इन स्थितियों का सामना किया था। इसलिए इनकी कविता में मध्यवर्ग के, छल के प्रति तीव्र वितृष्णा का भाव मिलता है। समाज का सच इन कविताओं में है।

आत्महत्या के विरूद्ध :- रघुवीर सहाय द्वारा रचित इस काव्य का प्रकाशन वर्ष सन् 1967 ई. है। इसमें 31 कविताएँ हैं। इस काव्य में कर्त्तव्य की निष्क्रियता का बोध है। बौद्धिक बहस से उपजी निष्क्रियता पर कवि व्यंग्य करता है। सत्ता और राजनीति जनता को मूर्ख बनाकर अपने स्वार्थ के लिए कार्यरत हैं। सहाय का मानना है कि नेहरू युग से विरासत में जो राजनीति देश में गतिशील हुई वह बहुत ही भ्रष्ट थी। वास्तविकता से जनता को हटाने के लिए नारे गढे जाते हैं । वर्ग, जाति और दल में बँटी विचारधारा के बीच

कराहती मानवीयता को अभिव्यंजित किया गया है। रघुवीर सहाय की कविताएँ त्रास, भय एवं आतंक के अनगिनत रूपों का बखान करती है। वे समाज एवं मानव के अन्दर से त्रास, भय एवं आतंक को दूर करना चाहते हैं। यही आत्महत्या के विरूद्ध का प्रतिपाद्य है।

6. गाँधीवादी चेतना की अभिव्यक्ति :-

द्विवेदी युगीन, छायावादी, प्रगतिवादी कवियों के समान प्रयोगवादी कवियों के काव्य में भी गॉधीवादी विचारधाराओं की पुष्टि हुई है। इन कवियों का सरोकार किसान, शोषित वर्ग एवं सामान्य जन से भी रहा है। विघटित मूल्यों को अवलोका था। ये उन मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा चाहते थे जो शाश्वत एवं नित्य हैं। गाँधी जी के सत्य-अहिंसा का प्रभाव भी इन पर पडा। इस युग के अधिकांश कवि मार्क्सवाद से प्रेरित हैं। लेकिन गाँधी के विचारों का प्रभाव भी इन पर है, जो इनकी कविताओं में दृष्टव्य है।

सत्य :- गाँधी जी का दृढ मत था कि दुनिया में सबसे बडी शक्ति लोकमत है और वह सत्य एवं अहिंसा से ही पैदा हो सकती है। गाँधी जी ने अपनी इस कथनी को करनी से चरितार्थ कर दिया। वे सत्य का ही आधारन करते थे -

मंदिर-सी धुली देह
प्रभु-प्रतिमा-सा हो मानव-मन
केवल करूणा, दया अहिंसा
और सत्य का आराधन। [38]

सत्यान्वेषी जीवन-दर्शन में ये कवि ज्ञानोन्मुख रहे हैं और रहने का संकल्प भी लेते हैं :-

मैं नया कवि हूँ, इसी से जानता हूँ
सत्य की चोट बहुत गहरी होती है, मैं नया कवि हूँ। [39]

सत्य के स्वभाव में बल होता है। सत्य आग्नेय है, तेजस है एवं अप्राप्य भी है। नरेश शर्मा वैदिक विचारों को मानते थे । वे सच्चाई की जड को जानना चाहते थे । उनकी दृष्टि में

सत्यः-

सत्य की शोध में

मैंने उस दिन अपने सम्पाती को भेजा

x x x x

सत्य अप्राप्य है।

लोगों ने तपस्वी सम्पाती को नहीं

मुझे ऋषि कहा [40]

अहिंसा :- गाँधी विचारधारा की उदात्त प्रेरणा हिंसा से अहिंसा की ओर विकास है। विकास की इस प्रवृत्ति का हिन्दी-कविता पर अत्यधिक प्रभाव पडा है। गाँधी जी की अहिंसा भावना ने चारों ओर एक नवीन दृष्टिकोण निर्माण कर दिया था। निरीह प्राणियों की हिंसा मनुष्य को शोभा नहीं देती। फिर युद्ध तो अनेक निर्दोष प्राणियों को अपनी दावाग्नि में समेट लेते हैं। इसलिए गाँधी संदेश देते हैं :-

उनका संदेश है -

पूर्ण अहिंसा और सत्याग्रह

x x x

महाशक्ति जागा करती जब

जन हो अनुशासन में। [41]

लेकिन युद्ध रूपी दानव सब कुछ निगल जाता है। हिरोशिमा पर जब बम गिराया गया तब वहाँ हिंसा का ताण्डव दिखा जो सब कुछ तहस-नहस कर गया-

छायाएँ मानव-जन की

दिशाहीन

सब ओर पडी

मानव का रचा हुआ सूरज

मानव को भाप बनाकर सोख गया।[42]

विज्ञान ने भी हिंसा को बढाया है। हिरोशिमा का विनाश उसी की देन है -

हिरोशिमा में मनुज मर गया।

वही मनुज, जिसके सिर पर यह गगन मुकुट है,

X X X X

धूप सुनाती। वही सृष्टि।

श्री मनुज आज विज्ञान कब्र में मरा पडा है।[43]

अहिंसा गाँधी दर्शन का प्राण है। गाँधी जी के अनुसार यही एक आत्मा की शक्ति है जो विश्वशान्ति का अखंड अस्त्र है। हिंसक के मन में भय एवं क्रोध होता है। रघुवीर सहाय भी अत्याचारी के रूप में एक हिंसक का चित्रण करते हैं -

पर अत्याचारी के मन में डर बैठा है

X X X X

और इसके बच्चों को भी मारकर खा जाओ।[44]

कभी-कभी व्यक्ति जीवन में कुछ न बन पाने पर भी हिंसक बन जाता है -

यह जवान जब कुछ नहीं बना

छर्रों की बंदूक लिए हवेलियाँ

लूटने की सोंच रहा है।[45]

गाँधी जी युद्ध के प्रति कभी आकांक्षी नहीं रहे। वे तो निरन्तर मानवता बनाने का प्रयास करते रहे -

मैं सत्य चाहता हूँ

युद्ध से नहीं, खड्ग से भी नहीं

मानव से मानव का सत्य चाहता हूँ
क्या यह संभव है ?
क्या यह नहीं है ? [46]

यह कवि चारों तरफ शान्तिपूर्ण वातावरण चाहता है क्योंकि यही सभी को अभिष्ट है-

हर घर में सुख
शांति का युग
हर छोटा-बडा हर नया पुराना हर आज-काल परसों के
शांति की स्निग्ध कला में डुबा हुआ
क्योंकि इसी कला का नाम जीवन की भरी-पूरी गति है। [47]

युद्ध बडे भयानक होते हैं। ये मानव को मानवहीन कर देते हैं। इसलिए कवि ऐसे युद्ध से घृणा करता है-

मैं घृणा करता हूँ उस युद्ध से
जो बेडियाँ खोलने की जगह
बेडियाँ पहनाता है
दीवारें ढलाने की जगह
दीवारे उठाता है
मैदानों को छोटा करता है
रेगिस्तानों को बढाता है। [48]

अहिंसा का सिद्धान्त गाँधीवाद की आधारशिला है। मानव-कल्याण के लिए प्रेम और अहिंसा ही एकमात्र उपाय है। हिंसा पर सदैव अहिंसा की विजय का विचार कवियों ने प्रतिपादित किया है।

अस्पृश्यता निवारण :- भारत एक धर्म प्रधान देश है, यहाँ धर्म के प्रति आस्था इस कदर

जनता में व्याप्त कि कि धर्म को व्यक्ति से अलग नहीं किया जा सकता। धर्म के प्रति आस्था तो ठीक है लेकिन जनता में अशिक्षा के कारण कुछ रूढियाँ भी धर्म के साथ इतनी घुल-मिल जाती है कि वे भी धर्म का स्वरूप बन जाती है। इसी धर्म को आड में बहुत सी कुरीतियाँ एवं अंधविश्वास जगत में पलते हैं। इन विश्वासों के कारण मानव से मानवता दूर हो रही है। मानव आपस में बँट गया है। समाज भी जाति-पॉति, ऊँच-नीच आदि खेमों में बँटा हुआ है। एक मानव अन्य का हनन करता है। कुरीतियों के चक्कर में पडकर हम भगवान तक का बॉंट देते हैं। क्या दलितों का भगवान नहीं होता ? या फिर उनकी आत्मा नहीं है। जैसे कई सवालों से घिरे कवियों ने समाज से छूआछुत जैसी भावना को दूर करना चाहा है। नयरेश मेहता की शबरी कुल-कुटुम्ब की चिन्ता से प्रभु-आराधना को श्रेयस्कर मानकर परिवार छोड देती है। वे पूछते हैं -

क्या आत्मा की उन्नति केवल
है उच्च वर्ग तक ही सीमित
प्रभु तो हैं सबके पिता, भला
उनका, आराधन क्यों सीमित। [49]

नीच, अछूत एवं हरिजन कहकर हम मानवता को शर्मसार करते हैं। ये लोग जीवन से तो सताए हुए है धर्म के तथाकथित ठेकेदारों द्वारा और भी सताए जाते हैं-

वह हरिजन था इसे जिन्दा जला दिया गया,
वह अनपढ गरीब था,
इसे देवी की बलि चढा दिया गया,
वह आस्थावान धर्म गुरूओं की कोठियों में मरा,
यह अनजानी ऊँचाइयाँ छूना चाहता था,
छत की कडी से झूल गया। [50]

शोषक-वर्ग एवं तथाकथित सभ्य लोगों पर व्यंग्य करते हुए अज्ञेय लिखते हैं -

साँप !

तुम सभ्य तो हुए नहीं

नगर में बसना

भी तुम्हें नहीं आया।

एक बात पूँछू - उत्तर दोगे ?

तब कैसे सीखा हँसना

विष कहाँ पाया ? [51]

ये ऊँच-नीच, जाति-पाँति सब मध्य युग की देन है। वैदिक-युग में तो 'जन्मना जायते द्विज कर्मणाब्राहमण मुच्यते' कहकर मानव को प्रतिष्ठित किया जाता था।

थी मध्ययुगों की जडता

अब भी जीवन में फैली

थे जाति-पाति के झगडे

और छूआछुत थी फैली। [52]

साधु-संतो, गुणीजनों के लिए ऐसी जाति की कोई दीवार नहीं होती। उनकी तो सब पर श्रद्धा होती है। राम ने शबरी के जूठे बेर प्रेमपूर्वक खाए थे

वह झुकी हुई थी प्रभु के

चरणों पर श्रद्धानत होकर

आँसू से भींग गए पग

श्रद्धा थी झुकी, विनत हो

प्रभु ने शबरी को सादर

आसन देकर बैठाया

वह गूँथ रही थी आँखों

से प्रेम-अश्रु माला। [53]

राम के मन में कभी नहीं आया कि यह शूद्र है। मैं इसके जूठे बेर क्यों खाऊ ?

वह सहज भाव से चखती

मीठे प्रभु को दे देती

प्रभु सहज भाव से खाते

आँखों से कृपा बरसती। [54]

इसी प्रकार गाँधी जी भी कहते थे। समाज का हर वर्ग मिलकर रहे। उनमें किसी प्रकार का भेद-भाव, ईर्ष्या, द्वेष, छल, मिथ्या, दंभ न हो। जहाँ ऐसा प्रेमपूर्ण वातावरण होगा वहीं रामराज्य कायम होगा।

स्त्रियों की उन्नति :- गाँधी जी ने नारी को उन्नति के पथ पर अग्रसर कराने का आग्रह किया है। जिस देश की नारियों में जागृति हो वह देश कदापि पराधीन नहीं होगा। ये नारियाँ पुरूषों की अर्द्धांगनी है, सुख-दुःख की सहचरी है, संतति का निर्माण करने वाली हैं। प्रयोगवाद के कवियों ने भी नारी पर लेखनी चलाई है। नारियों पर हुए अत्याचारों एवं उनकी व्यथा का चित्रण किया है। गाँव की औरतें जो कडी मेहनत करती हैं, लेकिन वे नरक तुल्य जीवन जीने पर बाध्य हैं -

गाँव की औरतें/गन्दी कोठरियों में हाँफती

खाँसती सरोटती, रूखे बाल, घिसती हैं।

जाँता जटिलतर। गाँवों की औरतें। सूखा

पिसान फॉक-फॉक कर/पीठ पेट एक कर

हाड तोड/मरती है पत्थर रगडकर। [55]

नारियाँ क्षमा, धैर्य एवं त्याग की प्रतिमूर्ति होती हैं । सीता के त्याग के कारण ही वे एक

आदर्श नारी का सम्मान प्राप्त कर सकी। एक अनाम साधारण जन की शंका उनके चरित्र पर उठी वे विरोध कर सकती थी लेकिन राम को न्यायी शासक के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए जनतांत्रिक शासन का समर्थन करती हैं। सीता अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत हैं। वे राम को कर्तव्य से विमुख होते नहीं देखना चाहती हैं। साधारण जन की आवाज को महत्वपूर्ण बतलाते हुए राम से कहती हैं -

आर्यपुत्र ;
यदि सभासद
मंत्री और आपके बंधु अन्याय कर रहे हों, तो
आप को।
मुझे और
इस राज्य को भी त्याग कर
उस अकेले व्यक्ति के पक्ष का समर्थन करना चाहिए।[56]

सीता सहर्ष वन को जाना स्वीकार कर लेती हैं। राम के वचन उनके लिए सहर्ष स्वीकार्य हैं-

कल सूर्योदय के साथ ही
सीता वनवास के लिए प्रस्थान करेगी
वनवास काल में
वह किसी भी राजकीय पद
मर्यादा, सुविधा और सुरक्षा की अधिकारिणी नहीं होगी।[57]

रघुवीर सहाय उन नारियों की भी उन्नति चाहते हैं जो पुरूष की कठपुतली हैं। जो पुरूष के साथ सिर्फ इसलिए हैं कि वे सुरक्षित हैं अन्यथा उन्हें उनसे कुछ नहीं मिला -

कितनी सचमुच है वह स्त्री
कि एक बार इसके सारे बदल का एक व्यक्ति बन गया है

उसके बाल अब घने काले नहीं

दु:ख उसे केशो का नहीं है

वह उदास नहीं डरी हुई है अधेड है औरत है। [58]

समाज के कल्याण के लिए नारी का सब प्रकार से उद्धार आवश्यक है।

किसानों का संगठन :- भारत कृषि प्रधान देश है और देश की 60 प्रतिशत जनता गाँवों में ही निवास करती है। वर्तमान की आधुनिकता ने लोगों के मन में शहरी आकर्षण है इसलिए गाँव को वे पिछडा हुआ मानते हैं। गाँधी जी का मानना था "गाँव ही भारत" है। भारत का असली एवं स्वच्छ रूप उन्होंने गॉवों में ही देखा था। वे किसानों से आग्रह करते हैं कुछ भी क्यों न हो जाये, मिलकर संगठित होकर ही रहना चाहिए। किसान हैं तो सबको अनाज मिल रहा है। जिस दिन किसान कर्म विमुख हो जायेंगे उस दिन से अवनति का द्वार खुल जायेगा। यह किसान ही है जो सबका भाग्य रचता है -

एक साधारण जन

पृथ्वी पर

हल की रैख से

धन्य-धान्य का

भाषा ग्रन्थ रचता है। [59]

सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, मुक्तिबोध, अज्ञेय आदि भी यही चाहते रहे हैं कि व्यक्ति गाँव से अपना सम्बंध न तोडे। जो सुख यहाँ की हँसी-निठोली में है वह शहर के दम घोटूँ वातावरण में नहीं।

भारत ने आजादी की लडाई गाँधीवादी जीवन मूल्यों के आधार पर लडकर स्वतंत्रता प्राप्त की। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के महानायक गाँधी ने रामराज्य का सपना देखा था-जिसमें स्वतंत्र भारत में कोई भी दु:खी एवं पीडित नहीं होगा । परस्पर

आस्था एवं विश्वास, सर्वधर्म सम्भाव, नैतिकता, सांस्कृतिक एकता एवं मानवीय मूल्यों के आधार पर देश आगे बढेगा। किन्तु हमने आज गाँधी द्वारा बताए गए जीवन मूल्यों को छोड दिया है। देश में अलगाववादी शक्तियाँ सिर उठाने लगी हैं। धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर उठने वाले विवादों तथा बदलते मूल्यों ने इस संकट को और भी गहरा दिया है। ऐसी स्थिति में गाँधीवादी चेतना सर्वाधिक उपयोगी एवं प्रासंगिक है।

संदर्भ :

1. नई कविता : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 87
2. वही, पृ. 89
3. छायावादोत्तर हिन्दी प्रगति : डॉ. विनोद गादरे, पृ. 164
4. हिन्दी नवलेखन : रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 35
5. डिस्कवरी ऑफ इण्डिया : पंडित जवाहर लाल नेहरू, पृ. 499
6. दिनमान (अक्टूबर, 1983) : सं. नेमिचन्द्र जैन, पृ. 25
7. सर्वेश्वर का कविता लोक : डॉ. महेश दिवाकर, पृ. 24
8. दिनमान : (अक्टूबर, 1983) सं. नेमिचन्द्र जैन, पृ. 24
9. वही, पृ. 24
10. सर्वेश्वर का कवितालोक : डॉ. महेश दिवाकर, पृ. 6
11. सर्वेश्वर का रचना-संसार : सं० प्रदीप सौरभ, पृ. 109
12. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 364
13. नरेश मेहता : कविता की उर्ध्व यात्रा : डॉ. रामकमल राय, पृ. 23
14. तीसरा सप्तक : नरेश मेहता, पृ. 108
15. नरेश मेहता : कविता की उर्ध्व यात्रा : डॉ. रामकमल राय, पृ. 113
16. तुम मेरी कौन हो : नरेश मेहता, पृ. 2
17. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 364
18. समकालीन रचना-दृश्य और रघुवीर सहाय का कृतित्व : शीला दानी, पृ. 19
19. सारिका (दिसम्बर, 1979), पृ. 19
20. समकालीन रचना-दृश्य और रघुवीर सहाय का कृतित्व : शीला दानी, पृ. 28
21. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 363
22. वही, पृ. 357
23. वही, पृ. 635
24. आधुनिक काव्य संग्रह : सं. रामवीर सिंह, पृ. 374
25. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ : शिव कुमार शर्मा, पृ. 561
26. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 357
27. नई कविता की पहचानः राजेन्द्र मिश्र, पृ. 17
28. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 357
29. हिन्दी सहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 11
30. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 358
31. आधुनिक काव्य संग्रह : रामवीर सिंह, पृ. 404
32. हिन्दी सहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 590
33. वही, पृ. 120

34.आधुनिक काव्य संग्रह : रामवीर सिंह, पृ. 398
35.हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 636
36.हिन्दी सहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 10
37.नई कविता की पहचान : राजेन्द्र मिश्र, पृ. 17
38.प्रार्थना-पुरूष : नरेश मेहता, पृ. 33
39.सर्वेश्वर की कविताएँ : सं. महेश, पृ. 38
40.आधुनिक काव्य संग्रह : रामवीर सिंह, पृ. 224
41.प्रार्थना-पुरूष : नरेश मेहता, पृ. 31
42.आधुनिक काव्य विविधा : सं. राकेश वत्स, पृ. 181
43.दूसरा सप्तक : सं. अज्ञेय, पृ. 123
44.लोग भूल गए हैं : रघुवीर सहाय, पृ. 26
45.कुआनो नदी : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 30
46.संशय की रात : नरेश मेहता, पृ. 39
47.आधुनिक काव्य विविधा : सं. राकेश वत्स, पृ. 196
48.सर्वेश्वर की कविताएँ : सं. महेश कुमार, पृ. 60
49.शबरी : नरेश मेहता, पृ. 19
50.कुआनो नदी : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 27
51.आधुनिक काव्य संग्रह : रामवीर सिंह, पृ. 202
52.प्रार्थना-पुरूष : नरेश मेहता, पृ. 15
53.शबरी : नरेश मेहता, पृ. 57
54.वही, पृ. 59
55.जो शिलाएँ तोडते हैं : केदार नाथ अग्रवाल, पृ. 77
56.प्रवाद पर्व : नरेश मेहता, पृ. 49
57.वही, पृ. 204
58.आधुनिक काव्य विविधा : सं. महेश कुमार, पृ. 289
59.महाप्रस्थान : नरेश मेहता, पृ. 115

उपसंहार

उपसंहार

महात्मा गाँधी (1869-1948) बीसवीं शताब्दी के महानतम व्यक्तियों में गिने जाते हैं । वे सच्चे अर्थों में युग पुरुष थे । वे संत, महात्मा, राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक ही नहीं, ऋषि परम्परा के महामानव भी थे । उनका मार्ग आध्यात्मवादी था । विश्व के किसी भी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक महापुरुष ने हर समस्या के लिए जीवन के हर क्षेत्र में आध्यात्मिकता का इतना व्यापक स्तर पर इतनी सफलता के साथ प्रयोग नहीं किया, जितना महात्मा गाँधी ने । उन्होंने मानव जीवन को विभिन्न खण्डों में नहीं वरन् अखण्डपूर्ण अथवा सुसम्बद्ध रूप में देखा । आश्रमों की स्थापना कर नये जीवन का रास्ता दिखाने वाले वे अकेले महापुरुष थे ।

देशकाल की आवश्यकताएँ महापुरुषों को जन्म देती आई हैं । जिस समय भारतवर्ष को स्वतंत्रता संग्राम में जूझने के लिए सबल नेतृत्व की आवश्यकता थी, ठीक उसी समय राष्ट्रात्मा के रूप में महात्मा गाँधी का अवतरण हुआ । कमलापति त्रिपाठी के अनुसार– "ऐसे समय जब राष्ट्र अपनी वेदना और असंतोष को व्यक्त करना चाहता था, भारतीय अंतरिक्ष सहसा किसी एक व्यक्ति के स्वर से गूँज उठा । वह स्वर यद्यपि मधुर था किन्तु उसमें गंभीरता और दृढ़ता थी । उस ध्वनि में विक्षोभ का भैरव गर्जन भले ही न रहा हो, पर उन्मादिनी पशु-शक्ति को ललकारने वाला राग अवश्य था ।" भारतीय इतिहास में गाँधी जी ने एक नये युग 'गाँधी युग' को जन्म ही नहीं दिया बल्कि अपनी अभूतपूर्व साधना से मानवता के इतिहास में नये अध्याय का श्रीगणेश भी किया है ।

बीसवीं शताब्दी की भारतीय विचारधारा पर गाँधी जी का प्रभाव इतना व्यापक है कि किसी न किसी रूप में प्रत्येक भारतवासी उनके विचारों तथा महान व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ है। फरवरी 1916 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के उद्घाटन समारोह में दिए गए उनके ऐतिहासिक भाषण ने अद्भुत रीति से भारतीय जनता का ध्यान अपनी ओर

आकर्षित कर लिया था – ''महात्मा गाँधी ने भारतीय संस्कृति में इतनी अधिक दिशाओं में प्रकाश डाला कि उनके समस्त अवदान का सम्यक् मूल्य निर्धारित करना अभी किसी के लिए संभव नहीं दिखता ।'' उन्होंने अज्ञानावस्था में पड़े हुए उस देश में ज्ञान के कोटिशः दीप प्रज्ज्वलित किए, जिनके आलोक में देश ने नयी दिशाएँ देखीं। वे भारत की सहस्त्राब्दियों की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक गति के उज्ज्वल प्रतीक हैं। भारत ने अपने दीर्घ जीवनावधि में प्रारम्भ से अब तक जो कुछ अर्जन किया है, उन सबका प्रतिनिधित्व करने के लिए ही मानो बापू का अवतार हुआ था । गाँधी जी का जीवन, उनके सिद्धान्त, उनका दर्शन एवं उनके विचार जिसको कोटिशः जनता ने बेहिचक अपनाया । वही साहित्य में 'वाद' बन गया और गाँधी युग 'गाँधीवाद' के नाम से जाना जाने लगा ।

अपनी पवित्र विचार-धारा से सारे संसार में महान क्रांति की गंगा बहाने वाले बापू का प्रभाव ज्ञान के समस्त क्षेत्रों पर पड़ा । साहित्य ने उनके सिद्धान्तों को सिर माथे लगाया। समूचे राष्ट्र ने उन्हें अपना नायक माना । देश के कोने-कोने में गाँधी जी के सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रसार हुआ । गाँधी जी के व्यापक प्रभाव को विलोक कर गाँधी विचारधारा के अनुयायी पट्टाभिसीता रमैय्या ने लिखा है – ''गाँधी जी की शिक्षा से नशेबाज ने नाशा छोड़ दिया, उनके आशीष से वैश्या गृह की वैश्या लक्ष्मी बन गई । .... उनकी जिह्वा के एक अक्षर ने दलितों को उबार लिया । उनकी साँस ने नारी को जो घरेलू चल संपत्ति समझी जाती थी, समाज के विवेकमय और उत्तरदायी सदस्य के रूप में परिवर्तित कर दिया । वे ग्रामों में पुनर्जीवन चाहते थे, पर सभ्यता को आदिम अवस्था की ओर नहीं लौटाना चाहते थे।''

समूचे विश्व ने गाँधी जी को महामानव के रूप में स्वीकार किया । हिन्दी कवियों ने विश्व नायक रूप के साथ ही भारत-भाग्य विधाता एवं राष्ट्र नायक के रूप में गाँधी जी को देखा । कवियों ने उनके सिद्धान्तों को अपनाकर अपनी कविता में उनकी विचारधारा की

आराधना की । हिन्दी के कवियों ने अनुभव किया कि बापू का चरित आधुनिक युग का रामचरित है, उनकी वाणी धर्म वाणी है तथा उनका संदेश शाश्वत जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति है। हिन्दी काव्य गाँधीवाद का विकसित स्वरूप है। कविता में वर्णित ये ऐसे विचार हैं – जिन्हें समान्य से समान्य जन ने भी अपने जीवन में उतारा है। जिसने सुर-भारती के इन गायकों को अमर बनाया ।

गाँधी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व में धार्मिक निष्ठा और भक्ति की पराकाष्ठा पाई जाती है । गाँधी जी के व्यक्तित्व में मुख्यतः आध्यात्मिक, मानवतावादी तथा बुद्धि तत्त्व का समन्वय है । उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व में अविभाज्य अंग के रूप में व्याप्त धर्म-भावना में एक ओर सामाजिक क्षेत्र में नयी चेतना उत्पन्न की है, तो दूसरी ओर राजनीतिक क्षेत्र में, पवित्रता की गंगा बहायी । धार्मिक क्षेत्र को विशाल दृष्टि दी है तो प्रशान क्षेत्र में हृदय शुद्धि का अमृत बहाया है। वे जहाँ गए, वहाँ धर्म की पताका फहराई। उनका जीवन धर्म एवं धर्म उनके जीवन के भीतर छिपा था । उनकी दृष्टि में राजनीति धर्म से हीन नहीं हो सकती। राजनीति को सदैव धर्म की अधीनता में रहना चाहिए । उनकी व्यापक दृष्टि को लक्ष्य कर अमेरीका के पादरी होम्स ने कहा है – ''जब मैं रोलां का ख्याल करता हूँ, तब मुझे टाल्सटाय का ध्यान आता है । जब मैं लेनिन की बात सोचता हूँ, तो मुझे नेपोलियन का ख्याल आता है, पर जब मैं गाँधी का ध्यान करता हूँ तो मुझे क्राइस्ट का ध्यान आता है ।'' गाँधी जी की लेखनी से निःसृत प्रत्येक शब्द उनके हृदय का भाव था। 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' उनकी अमर देन है । 'सत्य का प्रयोग' संसार की प्रसिद्ध आत्मकथाओं में से एक है, जो गाँधी के व्यक्तित्व को दर्शाती है । 'मंगलप्रभात', 'सर्वोदय', 'हिन्द स्वराज' आदि उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं, जो उनके जीवन-दर्शन को दर्शाती हैं ।

गाँधीवाद मूलतः दो शब्दों से बना है – एक गाँधी और दूसरा वाद । गाँधी शब्द स्पष्ट है और वाद का अर्थ है – किसी लक्ष्य या तत्त्व के निर्णय के लिए होने वाला तर्क ।

लेकिन यहाँ वाद का यह अर्थ अपेक्षित नहीं है । वाद का अर्थ है – किसी बात का बौद्धिक निरूपण । इसलिए गाँधी विचारधारा से तात्पर्य – उन सभी सिद्धान्तों से है, जिनका गाँधी जी ने समर्थन एवं प्रयोग किया है । गाँधीवादी चेतना मानसिक चिन्तन की वह सतत् प्रवाहमान धारा है, जो मताग्रहों एवं रूढ़ियों से निरपेक्ष नूतन सर्जनात्मक संकल्पना द्वारा संचरित होती है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है, जो जीवन को विकास की ओर उन्मुख करने के लिए प्रेरित करती है ।

गाँधीवादी चेतना के मूल तत्त्व सत्य एवं अहिंसा हैं । सत्य ईश्वर का पर्याय है । वही जड़ और चेतन में सूक्ष्म एवं समग्र रूप में विद्यमान है। सत्य के साक्षात्कार से सम्यक् दृष्टि और सद् बुद्धि प्राप्त होती है। सद् बुद्धि से अहिंसा का आविर्भाव होता है । अतः सत्य और अहिंसा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। ''सत्य वह शाश्वत सिद्धान्त है – जो विश्व की संरचना को शासित करता है और इसके समस्त घटना-चक्र के पीछे विराजमान है ।'' ''गाँधी जी के लिए अहिंसा विश्व व्यापी नियम है।'' गाँधीवादी चेतना के मुख्य सिद्धान्तों (वर्ग-सहयोग, विकेन्द्रीकरण, ट्रस्टीशिप, हृदय- परिवर्तन, सत्याग्रह) में गाँधी जी का चिंतन है। गाँधी जी ने केवल चिंतन ही नहीं किया, उसे व्यवहारिक रूप भी प्रदान किया ।

गाँधीवादी चेतना के अठारह रचनात्मक सूत्र हैं– साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, मद्य-निषेध, खादी, ग्रामोद्योग, गाँवों की सफाई, बुनियादी तालीम, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्रियों की उन्नति, स्वास्थ्य एवं सफाई की शिक्षा, मातृभाषा प्रेम, राष्ट्रभाषा प्रेम, आर्थिक समानता, किसानों का संगठन, मजदूरों का संगठन, विद्यार्थियों का संगठन, आदिवासियों की सेवा तथा कोढ़ियों की सेवा । गाँधी जी वर्तमान समाज व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं थे। उनका अठारह सूत्रीय रचनात्मक कार्यक्रम इस तथ्य का सूचक है कि वर्तमान दोष पूर्ण समाज व्यवस्था में सुधार तथा उसका पुनर्निर्माण करने के लिए अत्यंत उत्सुक हैं, इस कार्यक्रम को उन्होंने सत्याग्रह का आवश्यक अंग माना । सत्याग्रही के लिए रचनात्मक कार्यक्रम का उतना ही

महत्त्व है, जितना एक सैनिक के लिए कवायद तथा अस्त्र चलाना सीखने का । गाँधी जी के अनुसार – "रचनात्मक कार्यक्रम को पूर्ण स्वराज्य का निर्माण कहना अधिक उपयुक्त होगा, जिसे सत्य एवं अहिंसा के माध्यमों से क्रियान्वित किया जा सकता है ।" डॉ. पट्टाभिसीता रमैय्या ने गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम को गाँधीवाद की सम्पूर्ण तकनीक का प्रकट रूप या क्रिया रूप में परिणत अहिंसा कहा है ।"

आधुनिक काव्य-धारा का द्वितीय उत्थान द्विवेदी युग (1900-1918) के नाम से जाना जाता है। यह युग भारतीय समाज और जन-शक्ति के जागरण का युग था । इस युग को गाँधीवाद का बाल्यकाल कहा जा सकता है । इस युग में महात्मा गाँधी के कर्म-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर काव्य-रचना प्रारम्भ हो गई थी । डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है – "यों तो *गाँधी-दर्शन का प्रभाव इस युग में एक सर्वव्यापी प्रभाव है । .... हिन्दी का कदाचित ही* कोई लेखक इससे अछूता रहा हो । यह वास्तव में हमारा युग-दर्शन है ।"

द्विवेदी युग के प्रमुख कवि एवं काव्य हैं – (मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, यशोधरा, द्वापर, जयभारत, विष्णुप्रिया) ; अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (प्रिय प्रवास, वैदेही वनवास, चुभते चौपदे, रस कलस, प्रेम प्रपंच) ; सियारामशरण गुप्त (बापू, पाथेय, मृणमयी, उन्मुक्त, नोआखाली) ; महावीर प्रसाद द्विवेदी (देवी स्तुती शतक, कान्य-कुब्ज-अबला-विलाप, काव्य मंजुषा, सुमन, द्विवेदी काव्य माला) ; रामनरेश त्रिपाठी (मिलन, पथिक, मानसी, स्वप्न); द्विवेदी-युग के कवि श्रृंगारिकता से राष्ट्रीयता, जड़ता से प्रगति एवं रूढ़ि से स्वच्छन्द विचार अपनाने लगे । महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सम्पूर्ण देश में राजनीतिक चेतना व्याप्त थी। इस युग के कवियों का काव्य राजनैतिक चेतना एवं राष्ट्रीय भावना से सम्पन्न हुआ । मैथिलीशरण गुप्त 'सत्य' का वर्णन करते हुए कहते हैं –

सत्य से ही स्थिर है संसार,
सत्य ही सब धर्मों का सार।

राज्य ही नहीं प्राण-परिवार,

सत्य पर सकता हूँ सब वार।

गाँधीवादी 'अहिंसा' की पूर्ण प्रतिष्ठा सियारामशरण गुप्त के काव्य में हुई है :

हिंसानल से शान्त नहीं होता हिंसानल,

जो सबका है वही हमारा भी है मंगल ।

मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर,

हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।

ट्रस्टीशिप, हृदय परिवर्तन, सत्याग्रह, साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, मद्य निषेध, खादी, स्त्रियों की उन्नति आदि गाँधीवादी सिद्धांतों एवं रचनात्मक सूत्रों की अभिव्यक्ति द्विवेदी युगीन काव्य में हुई है ।

राजनीति में जिन प्रवृत्तियों ने गाँधीवाद को जन्म दिया, करीब-करीब वैसी ही प्रवृत्तियों द्वारा साहित्य में छायावाद (1918-1936) का प्रादुर्भाव हुआ। दोनों की मूल वर्तिनी में भावना एक है – स्थूल के विरूद्ध सूक्ष्म की प्रतिक्रिया अर्थात् स्थूल से हटकर सूक्ष्म की ओर बढ़ने और उसको प्राप्त करने का प्रयत्न, गाँधी जी के साथ आत्म की वस्तु बनकर यह प्रवृत्ति आध्यात्मिक बन गई। छायावाद युग के प्रमुख कवि एवं उनके काव्य हैं – जयशंकर प्रसाद (कानन कुसुम, इन्दु, प्रेमपथिक, झरना, कामायनी) ; सुमित्रानंदन पंत (वीणा, पल्लव, गुंजन, युगान्त, युगवाणी) ; सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला (अनामिका, प्रेयसी, रेखा, सरोज स्मृति, राम की शक्ति पूजा) ; महादेवी वर्मा (नीहार, रश्मि,नीरजा, सान्ध्या गीत, दीप शिखा) ; सुभद्रा कुमारी चौहान (त्रिधारा, मुकुल, झाँसी की रानी) ।

गाँधीवादी विचारधारा के व्यापक प्रभाव के फलस्वरूप छायावाद युग में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति विश्व मानवतावाद की भूमिका पर हुई । गाँधीवाद के प्रभाव से छायावाद आध्यात्मिक बना । कठोरता के प्रति कोमलता की प्रतिक्रिया वाली भावना गाँधीवाद से ही

छायावाद को मिली। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है – ''छायावाद के जन्म में गाँधीवाद का अत्याधिक प्रभाव है और छायावाद को गाँधीवाद ने सर्वाधिक प्रेरणा प्रदान की है।'' पुनर्जागरण के वातावरण में इस युग के कवियों ने पलायनवादिता और नैराश्य को छोड़ व्यक्ति, जाति और मानव मात्र के जीवन का भावात्मक पक्ष भी लिया । साम्प्रदायिक एकता को दृढ़ करते हुए पंत कहते हैं :

तो अच्छा छोड़ दें अगर
हम हिन्दू मुस्लिम और ईसाई कहलाना
मानव होकर रहें धरा पर
जाति वर्ण धर्मों से ऊपर
व्यापक-मनुष्यत्व में बँधकर।

वर्ग-भेद को मिटाते हुए डॉ. राम कुमार वर्मा लिखते हैं –

जाति भेद नहीं, वर्ग भेद भी नहीं,
शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी हैं ।

गाँव की सफाई, बुनियादी तालीम, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्रियों की उन्नति, स्वास्थ्य एवं सफाई की शिक्षा आदि का वर्णन हुआ है । इस प्रकार छायावाद गाँधी-युग का ही प्रतिरूप है।

सन् 1936 के आस पास की अवधि में निर्मित सामाजिक चेतना और यथार्थवादी प्रवृत्ति के कारण यह युग प्रगतिवादी युग कहलाया । इस समय भारतीय राजनीति में यदि एक तरफ गाँधीवाद जोर पकड़ रहा था, तो दूसरी ओर कांग्रेस आन्दोलनों का प्रभाव था । कांग्रेस द्वारा चलाए जा रहे आंदोलन हिंसात्मक होने पर स्थगित किए जा रहे थे । इनकी प्रतिक्रिया जनता में भी हो रही थी । राजनीतिक दासता के बीच एक ओर पूँजीवादी शक्ति बढ़ रही थी, तो दूसरी ओर गरीबी, अशिक्षा, युद्ध, बेकारी, आर्थिक विषमता और अकाल से संत्रस्त जनता पर कम्यूनिज्म का प्रभाव पड़ रहा था । इस परिस्थिति में प्रगतिवादी साहित्य जनता में

एक नया दृष्टिकोण लेकर आया । उसने सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को ही रचना का उद्देश्य माना और सौन्दर्य को नये दृष्टिकोण से देखा। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार – ''यह नाम उस काव्यधारा का है जो मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भाव-बोध को अपना लक्ष्य बनाकर चली ।''

प्रगतिवादी युग के प्रमुख कवि एवं उनके काव्य हैं – रामधारी सिंह दिनकर (कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, उर्वशी, नीलकुसुम, रसवन्ती) ; भवानी प्रसाद मिश्र (सतपुड़ा के जंगल, सन्नाटा, गीत फरोश, कमल के फूल, वाणी की दीनता) ; शिवमंगल सिंह सुमन (क्रान्ति, जीवन के गान, प्रलय सृजन, आज देश की मिट्टी बोल उठी है, मेरा देश जल रहा) ; त्रिलोचन (धरती, गुलाब और बुलबुल, दिगत, गीत गंगा) ; सोहनलाल द्विवेदी (पूजा गीत, विषपान, युगाधार, वासन्ती, चित्रा) ; इस युग की कविता अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना, मिथ्या धार्मिक उपचार पर प्रहार एवं वर्ग-रहित समाज की परिकल्पना से मण्डित है । समाज की आर्थिक एवं सामाजिक दशा के प्रति गाँधी जी के समान ही ये कवि भी संवेदनशील रहे । भारतवासियों के आत्मसम्मान को जगाने में जितना सक्रिय हाथ गाँधी जी का रहा, उतना ही सक्रिय इन कवियों का । गाँधी की वर्ग रहित दृष्टि का संदेश 'दिनकर' जी इस प्रकार देते हैं –

> शान्ति नहीं तब तक जब तक
> सुख भाग न नर का सम हो,
> नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
> नहीं किसी को कम हो ।

मातृ भाषा प्रेम, राष्ट्र भाषा प्रेम, आर्थिक समानता, किसानों का संगठन, मजदूरों का संगठन आदि गाँधीवादी रचनात्मक सूत्रों की अभिव्यक्ति प्रगतिवादी युगीन काव्य में हुई है ।

प्रयोगवादी (1943-1950) कवियों ने प्रयोगों को साधन के रूप में स्वीकार कर,

कहीं भाव में, तो कहीं रस में, कहीं वाद विशेष के प्रतिपादन में, तो कहीं अभिव्यंजना और कहीं शैली में नये प्रयोगों के द्वारा वैचित्र्य उत्पन्न किया है । छायावाद की अतिकाल्पनिकता, एकान्तिक कोमलता आदि की प्रतिक्रिया यदि प्रगतिवाद में हुई तो प्रगतिवाद की इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया प्रयोगवाद में हुई । डॉ. नगेन्द्र के अनुसार – "प्रयोगवादी कवि बौद्धिकता को स्वीकार करते हैं । ये कवि मध्यवर्गीय व्यक्ति जीवन की सभी जड़ता, कुण्ठा, अनास्था, पराजय और मानसिक संघर्ष के सत्य को बड़ी बौद्धिकता के साथ उद्घाटित करते हैं ।"

प्रयोगवाद युग के प्रमुख कवि एवं उनके काव्य हैं – अज्ञेय (भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम, हरी घास पर क्षण भर, बाबरी अहेरी, समुद्रमुद्रा) ; भारत भूषण अग्रवाल (कवि के बंधन, जागते रहो, मुक्तिमार्ग, अप्रस्तुत मंत्र, अनुपस्थित लोग, किसने फूल खिलाये) ; शमशेर बहादुर सिंह (कुछ कविताएँ, कुछ और कविताएँ) ; गिरिजा कुमार माथुर (मंजरी, नाश और निर्माण, धूप के धान, जो बंध नहीं सका) आदि प्रयोगवादी कवियों ने गाँधीवाद के सभी विषयों पर लेखनी चलाई है – सत्य, अहिंसा, साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, ग्रामोद्योग विद्यार्थियों का संगठन, आदिवासियों की सेवा, कोढ़ियों की सेवा आदि । कुण्ठा एवं हीन भावना से ग्रसित होने पर भी इन कवियों ने मानवीय चेतना नहीं त्यागी। इनकी अन्तरात्मा पर युग पुरुष गाँधी के विचारों की छाप स्पष्ट है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने हरिजन की दशा का हृदय स्पर्शी वर्णन इस प्रकार किया है :

यह हरिजन था, इसे जिन्दा जला दिया गया,
यह अनपढ़ गरीब था,
इसे देवी की बलि चढ़ा दिया गया,
यह आस्थावान धर्म गुरुओं की कोठियों में मरा,
यह अनजानी ऊँचाइयाँ छूना चाहता था,

छत की कड़ी से झूल गया ।

भारत ने आजादी की लड़ाई गाँधीवादी जीवन मूल्यों के आधार पर लड़कर स्वतंत्रता प्राप्त की । भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के महानायक गाँधी ने रामराज्य का सपना देखा था - जिसमें स्वतंत्र भारत में कोई भी दुःखी एवं पीड़ित नहीं होगा । परस्पर आस्था एवं विश्वास, सर्वधर्म समभाव, नैतिकता, सांस्कृतिक एकता एवं मानवीय मूल्यों के आधार पर देश आगे बढ़ेगा । किन्तु हमने आज गाँधी द्वारा बताए गए जीवन मूल्यों को छोड़ दिया है । देश में अलगाववादी शक्तियाँ सिर उठाने लगी हैं । धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर उठने वाले विवादों तथा बदलते मूल्यों ने इस संकट को और भी गहरा दिया है । ऐसी स्थिति में गाँधीवादी चेतना सर्वाधिक उपयोगी एवं प्रासंगिक है ।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

संदर्भ ग्रंथ-सूची

उपजीव्य ग्रंथ :

1. कुरुक्षेत्र : रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयांचल प्रकाशन, पटना, 1940 ई.
2. कुणाल : सोहन लाल द्विवेदी, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1953 ई.
3. क्वासि : बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1952 ई.
4. गाँधी पंचशती : भवानी प्रसाद मिश्र, सरला प्रकाशन, दिल्ली, 1969 ई.
5. चिदंबरा : सुमित्रानंदन पंत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1966 ई.
6. जीवन के गान : शिवमंगल सिंह 'सुमन', भारती प्रकाशन, उज्जैन, 1941 ई.
7. द्वापर : मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी), 1961 ई.
8. नहुष : मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी), 1967 ई.
9. नोआखाली : सियारामशरण गुप्त, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी), 1957 ई.
10. प्रभाती : सोहनलाल द्विवेदी, साहित्य भवन, प्रा. लि., इलाहाबाद, 1961 ई.
11. बापू : सियारामशरण गुप्त, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी), 1960 ई.
12. भैरवी : सोहनलाल द्विवेदी, इंडियन प्रेस लि., इलाहाबाद, 1951 ई.
13. मृण्मयी : सियारामशरण गुप्त, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी), 1936 ई.
14. युगपथ : सुमित्रानंदन पंत, भारतीय भंडार लीडर प्रेस, प्रयाग, 1949 ई.
15. विश्व-वेदना : मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी), 1964 ई.
16. वैदेही-वनवास : अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, 1950 ई.
17. सिद्धराज : मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी), 1963 ई.
18. सेवाग्राम : सोहनलाल द्विवेदी, इंडियन लि. प्रेस, इलाहाबाद, 1946 ई.
19. हम विषपायी जन्म के : बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1965 ई.

उपस्कारक ग्रंथ :

1. अकाल पुरुष गाँधी : जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1976 ई.
2. आधुनिक हिन्दी काव्य और नैतिक चेतना : डॉ. राजबाला, फ्रैंक ब्रदर्स एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 1969 ई.
3. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ : डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1966 ई.
4. कांग्रेस का इतिहास : डॉ. पट्टाभिसीता रमैय्या, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1948 ई.
5. गाँधीवाद की रूपरेखा : रामनाथ 'सुमन', साधना-सदन प्रकाशन, दिल्ली, 1948 ई.

6. गाँधी और गाँधीवाद : डॉ. पट्टाभिसीता रमैय्या,अग्रवाल एण्ड कम्पनी प्रा. लि., आगरा, 1957 ई.
7. गाँधी-दर्शन एवं साहित्य : डॉ. शिव गोविन्द द्विवेदी, गाँधी विचार केन्द्र, कानपुर, 1961 ई.
8. गाँधी-दर्शन का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव : डॉ. लक्ष्मी नारायण दुबे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1971 ई.
9. गाँधी-विचार दोहन : किशोरी लाल मशरूवाला, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1959 ई.
10. गाँधी विचारधारा का हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव : डॉ. अरविन्द जोशी, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1973 ई.
11. दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास : महात्मा गाँधी, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1949 ई.
12. पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त : रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल प्रकाशन, पटना, 1965 ई.
13. भारतीय नेताओं की हिन्दी सेवा : डॉ. ज्ञानवती दरवार, रंजन प्रकाशन, दिल्ली, 1961 ई.
14. माखन लाल चतुर्वेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व : डॉ. प्रेम नारायण टंडन, नंदन प्रकाशन, लखनऊ, 1970 ई.
15. मेरे सपनों का भारत : महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1960ई.
16. मंगल-प्रभात : महात्मा गाँधी, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1953 ई.
17. मैथिलीशरण गुप्त : डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972 ई.
18. मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य : डॉ. कमला कान्त पाठक, रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली, 1960 ई.
19. मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता : डॉ. उमाकान्त गोयल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1958 ई.
20. सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय : प्रकाशन विभाग, दिल्ली, 1959 ई.
21. सर्वोदय : महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, 1960 ई.
22. सत्य के प्रयोग : महात्मा गाँधी, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, 1951 ई.
23. सियारामशरण गुप्त : डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1965 ई.
24. सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. शिव प्रसाद मिश्र, कमल प्रकाशन, भोपाल, 1969 ई.
25. हिन्दी स्वराज्य : महात्मा गाँधी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1962 ई.
26. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी संवत् 2056 वि.

संस्कृत ग्रंथ :

1. अथर्ववेद भाष्य : भा. क्षेमकरण दास त्रिवेदी, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली, 1946 ई.
2. एकादशोपनिषद् : सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, कृष्णा प्रकाशन, दिल्ली, 1988 ई.
3. काव्यादर्श : दण्डी, ओरियंटल बुक डिपो, दिल्ली, 1958 ई.
4. काव्य प्रकाश : व्या. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1965 ई.
5. साहित्य दर्पण : पं. शालिग्राम शास्त्री, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली, 1951 ई.

अंग्रेजी ग्रंथ :

1. Gandhi and Social thought : S.R. Bakshi, Criterior Publication, New Delhi, 1960
2. Gandhi and Ideology of Swadeshi : S. R. Bakshi, Reliance Publishing House, New Delhi, 1965
3. In Gandhiji's mirror : Sushila Nayar, Oxford University Press, New York, 1991
4. The Removal of Untouchability : M.K. Gandhi, Navajivan Publishing House, Ahmedabad, 1950
5. Women and Social injustice : M.K. Gandhi, Navajivan Publishing House, Ahmedabad, 1945

कोश :

1. अमर कोश : संशोधित रामेश्वर भट्ट, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1980 ई.
2. मानक हिन्दी कोश : सं. रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1966 ई.
3. संस्कृत-हिन्दी कोश : वामन शिवराम आप्टे, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1991 ई.
4. हिन्दी शब्द-सागर : डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल लि. वाराणसी, संवत् 2014 वि.
5. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 1) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल लि. वाराणसी, 1985 ई.
6. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल लि. वाराणसी, 1986 ई.

पत्रिकाएँ :

1. गाँधी मार्ग
2. भाषा
3. यंग-इण्डिया
4. वर्तमान साहित्य
5. सम्मेलन
6. साहित्य अमृत
7. हरिजन
8. हिन्दी अनुशीलन
9. हिन्दी नव-जीवन

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम	:	राजीव कुमार
शिक्षा	:	एम. ए. (हिन्दी)
विभाग	:	हिन्दी
शोध-प्रबंध का शीर्षक	:	आधुनिक हिन्दी काव्य में गाँधीवादी चेतना (द्विवेदी युग से प्रयोगवाद तक)
प्रवेश शुल्क का भुगतान की तिथि	:	28 अगस्त, 2003
शोध प्रस्ताव की संस्तुति	:	
(i) बी. पी. जी. एस	:	8.10.2003
(ii) स्कूल बोर्ड पंजीयन संख्या एवं तिथि	:	777 16.10.2003

...U LIBRA...
104009
10-1-11

अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलाँग